पारसभाग का आलोचनात्मक अध्ययन

(सेवापंथ और सेवापंथी साहित्य के विशिष्ट सन्दर्भ मे)

A Critical Study of Paaras Bhaag with Special Reference To Sevaa Panth and to Hindi Literature Cultivated under the Aegis of Sevaa Panth

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ की पी. एच.-डी. उपाधि के
लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध
1974

निर्देशक :
डॉ. मैथिली प्रसाद भारद्वाज,
रीडर,
हिन्दी विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्त्री :
(श्रीमती) कान्ता शर्मा

निवेदन :--

प्रस्तुत प्रबन्ध को टंकित कराते समय मुझे हिन्दी के 'टंकरण यंत्र' से घोर निराशा हुई। कितने ही चिन्ह तथा अक्षर तो उसमें हैं ही नहीं। कई अक्षर इतने अस्पष्ट और भ्रामक हैं कि 'घर' को 'धर' और 'भर' को 'मर' पढ़ने की पूरी सुविधा है।

इन मशीनी और तकनीकी विवशताओं तथा शुद्धता के प्रति मेरी उत्कट अभिलाषा में निरंतर संघर्ष चलता रहा। एक 'टंकक' के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा टंकक' आता गया और इस तरह तीन 'टंककों' ने इस प्रबन्ध को तीन बार अलग अलग टाइप किया। अंतिम रूप आपके सामने है। मशीनी और तकनीकी असुविधाओं के अतिरिक्त 'टंककों' की भाषा सम्बन्धी अक्षमता तथा इस प्रकार की सामग्री को सुचारु रूप से प्रस्तुत न कर पाने की विवशता भी मेरी ही विवशता रही है।

घ, ध, भ, म, ब तथा व प्रायः अस्पष्ट और भ्रामक रूप में टंकित हुए हैं। 'ङ' और 'ञ' के लिए तो 'कुंजियां' ही वहाँ नहीं हैं। मात्राओं में े, ें, ै, ैं, ो, ौ, ों, ौं ये चिन्ह स्पष्ट नहीं हैं। संयुक्त और द्वित्त अक्षरों को भी स्पष्ट तथा शुद्ध रूप में टंकित करना संभव नहीं है।

पाण्डुलिपियों के आकार की सूचना देते समय +, × इन दो चिन्हों की भी आवश्यकता थी। परन्तु 'मशीन' में इनका भी अभाव था। उद्धरण ("   ") चिन्हों का अभाव भी कदम कदम पर खटकता रहा।

अनवरत संशोधन के बावजूद 'टंकरण-यंत्र' तथा 'टंकक-गण' की इन सीमाओं से उबर पाना मेरे लिए सर्वत्र संभव नहीं हो सका है। इसका मुझे खेद है।

21.9.76 कांता शर्मा

भूमिका

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब का हिन्दी साहित्य जितना मलीन है उतना ही उपेक्षित भी रहा है। पंजाबी भाषा और साहित्य के इतिहासकार प्राय: इस विशाल साहित्य--- विशेषत: इसके प्रकाशन आदि------को पंजाबी के लिए एक 'खतरा' ही समझते रहे। क्योंकि पंजाबी के इतिहास में हिन्दी (अथवा ब्रज भाषा) की ये गद्य-पद्य रचनाएं कदाचित् विशुद्ध पंजाबी की रचनाओं से बहुत प्राचीन हैं। फलत: इस साहित्य के प्रकाश में आने से पंजाबी का इतिहासिक पक्ष इन इतिहासकारों को कमज़ोर पड़ता दिखाई दिया। यही कारण है कि यह साहित्य 'गुण' और 'परिमाण' दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण होते हुए भी उपेक्षित ही पड़ा रहा।

इस उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि इस साहित्य की अनेक विभूतियां धीरे धीरे लुप्त होती चली गईं। डा० लाइटनर ने पंजाब की कुछ 'पाठ्य' पुस्तकों तथा इनके पूर्णत: व्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन का विवरण अपनी पुस्तक 'इंडीजीनस सिस्टम आफ एजुकेशन' में दिया था (1882 ई०)। आज उन पुस्तकों में से बहुत सी पुस्तकें हम सदा सदा के लिए खो चुके हैं। पंजाब-विभाजन(1947) के परिणाम स्वरूप इस साहित्य की न जाने कितनी मूल्यवान् कृतियां नष्ट-भ्रष्ट हो गईं या फिर पाकिस्तान में ही रह गईं। हमारी भाषा और हमारे साहित्य के इतिहास में यह क्षति शायद कभी पूरी न हो सके।

पंजाबी के इतिहासकार की इस उपेक्षा से पंजाबी भाषा और साहित्य का ही मूल्य और महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि हिन्दी भाषा और उसके इतिहास की विभिन्न कड़ियों को ठीक से जोड़ पाना हिन्दी के इतिहास लेखक के लिए भी कभी संभव न हो सका।

पं० रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आज तक हिन्दी के इतिहास लेखक पंजाब के इस हिन्दी साहित्य से प्रायः अपरिचित ही रहे। राष्ट्र-भाषा हिन्दी और इसके साहित्य का इतिहासकार पंजाब के अन्तर् में शताब्दियों से अलक्षित रूप में बह रही इस 'सरस्वती' का साक्षात्कार आज तक न कर पाया, इसे दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। यही कारण है कि हिन्दी के इतिहास-लेखक न तो पंजाब की एक वाङ्मयी कृति-योग वासिष्ठ- को ठीक से ऐतिहासिक संदर्भ ही दे पाए और न ही इसका समुचित मूल्यांकन ही उनसे आज तक बन पड़ा है।

फलतः योग वासिष्ठ भाषा जैसी पंजाब की कितनी ही अन्य महनीय हिन्दी रचनाओं को हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में समुचित स्थान न देकर हमारे इतिहासकार हिन्दी के इतिहास को अपेक्षित ऐतिहासिक आयाम न दे पाए।

स्पष्ट है कि पंजाब और हिन्दी के इतिहास लेखकों, भाषा-शास्त्रियों तथा अनुसन्धाताओं की इस उपेक्षा से इन दोनों भाषाओं और इनके साहित्य को अपनी एक बहुमूल्य 'थाती' से अकारण ही वंचित होना पड़ा। साथ ही इस 'थाती' को खोकर---- भाषा तथा साहित्य दोनों ही दृष्टियों से----- पंजाबी और हिन्दी का इतिहास सम्पन्न होते हुए भी दरिद्र सा दिखाई पड़ने लगा।

हर्ष का विषय है कि विगत लगभग दो दशकों में पंजाब के इस हिन्दी साहित्य की कुछ कृतियां सम्पादित अथवा 'चर्चित' रूप में हिन्दी जगत् के सामने आई हैं। इसी परम्परा में पंजाब की एक अद्भुत कृति 'पारसभाग' का 'प्रारंभिक अध्ययन' इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

पारसभाग :

'पारसभाग' अल-ग़ज़ाली की विश्वविश्रुत फ़ारसी-कृति 'कीमिया-ए-सआदत' का 'भाषा' रूपांतर है। 'कीमिया-ए-सआदत' मूलतः ग़ज़ाली की

अप्रतिम अरबी कृति 'इह्या उल-उलूम' का अनुवाद है। स्पष्ट है कि पारसभाग ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में एकमात्र ऐसी कृति है जिसका सीधा संबंध फारसी और अरबी भाषाओं की सर्वाधिक चर्चित दो प्रमुख कृतियों के साथ है। फलतः पारसभाग का आलोचनात्मक अध्ययन मात्र एक बौद्धिक विलास न होकर हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण अध्ययन कहा जा सकता है।

पारसभाग : सार्वभौम दृष्टि :

पारसभाग ही संभवतः हिन्दी साहित्य में एकमात्र ऐसी कृति है जिसका संबंध भारत के तीन विभिन्न धर्मों (सम्प्रदायों) के साथ बहुत घनिष्ठ रूप से रहा है। सेवापंथ (सिक्ख-धर्म) की परिधि में तो इसकी रचना ही हुई और अपने नागरी रूप में इसे वैष्णव सम्प्रदाय ने भी समुचित सम्मान दिया। इसके साथ ही अपने मूल (अरबी।फारसी) रूप में पारसभाग को इस्लामी और सूफी जगत् में सर्वोच्च सम्मान पिछले एक हज़ार सालों से मिलता आ रहा है। इसके अतिरिक्त पश्चिम में कितने ही विचारकों ने अल-गज़ाली और उनकी 'इह्या' अथवा 'कीमिया' जैसी कृतियों का प्रभाव ईसाई धर्म पर भी स्वीकार किया है। देश-काल की सीमाओं के साथ साथ साम्प्रदायिक आग्रहों से भी ऊपर उठ सकना पारसभाग की आंतरिक क्षमता तथा इसकी सार्वभौम दृष्टि का प्रमाण है।

इस्लामी दृष्टि:साधना :

इस्लामी (सूफी) दृष्टि और साधना से संबंधित प्रामाणिक कृतियों का अभाव हिन्दी में आज तक बना हुआ है। एक दो छिट पुट प्रयासों के अतिरिक्त 'कुरान' और 'हदीस'- साहित्य के गंभीर पर्यालोचन के सुदृढ़ आधार पर लिखी गई इस्लाम-संबंधी एक भी प्राचीन या नवीन पुस्तक हमारे पास नहीं है।

पारसभाग के अनुवादक ने लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व इस्लामी दृष्टि

और साधना का जो प्रामाणिक विवरण हिन्दी में प्रस्तुत किया गया, वही विवरण आज भी हिन्दी में इस्लामी दृष्टि का एकमात्र प्रामाणिक विवरण कहा जा सकता है। निश्चय ही पारसभाग की क्रान्तदर्शिता का यह सबसे बड़ा निदर्शन है। परन्तु इसके साथ ही हमारे लेखकों की घोर 'एकांगिता' का भी यह एक सीमांत उदाहरण है।

सांस्कृतिक मूल्य:

आर्य-संस्कृति की 'सर्वतोग्राही' दृष्टि प्रत्येक युग में परिलक्षित की गई है। अरब लोगों के ज्ञान-विज्ञान को भारतीय विद्वान सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही आत्मसात् करने लगे थे। इसके बाद यह प्रवृत्ति विकसित न हो सकी। फिर भी यत्र तत्र कुछ छिटपुट प्रयत्न इस संबंध में होते रहे।

'पारसभाग' इस प्रकार के सांस्कृतिक समन्वय-मूलक प्रयत्नों का अन्तिम रूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस्लाम के साथ सामान्यतः जुड़ी कट्टरता, अनुदारता तथा असहिष्णुता से पूर्णतः बचते हुए पारसभाग हिन्दी-भाषा के सामने 'कुरान' के प्रतिपाद्य को बौद्धिक स्तर पर मानव-मात्र के लिए ग्राह्य, सुपाच्य एवं व्यवहार्य ~~एवं व्यवहार्य~~ रूप में प्रस्तुत करता है।

सेमेटिक-ग्रीक विचारधारा

हज़रत मुहम्मद ('महापुरुष') और उनकी पत्नी 'आयशा' तथा उनके उत्तराधिकारी 'खलीफा', उनके कृपालु भक्तों एवम् उनके अनुयायी साधकों की दृष्टि विशेषतः उनकी चर्या का एक जीवंत चित्र पारसभाग में मिलता है। इस जीवंत चित्र की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। क्योंकि इस प्रकार की सामग्री इस्लाम के प्राचीन तथा प्रामाणिक साहित्य ('हदीसों' तथा जीवन चरितों 'तज़किरात') से ली गई है।

हज़रत मुहम्मद के पूर्ववर्ती पैगंबरों--हज़रत नूह और हज़रत मूसा-तथा यूनानी `फलासफे` के `हकीमों`- लुकमान- सुकरात - और `सुलेमान` की दृष्टि का प्रामाणिक तथा प्राचीनतम विवरण हिन्दी में देने का श्रेय केवल पारसभाग को ही है। सेमेटिक और `ग्रीक` विचारों का इतना विशाल तथा प्राचीन संग्रह पारसभाग के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता।

भक्ति :

इस्लामी साधना भयमूलक है। यह भय मृत्यु, परलोक और `खुदाई ख़ौफ़` से जुड़ा हुआ है। परन्तु पारसभाग में वर्णित साधना भारतीय भक्ति के समकक्ष है। वही `नाम परायणता` वही `कीर्तन`, वही प्रभु की माता-पिता के रूप में स्वीकृति और नाम से बढ़ कर निरंतर `रुदन` पारसभाग की साधना को भक्ति की सर्वोच्च भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। कुल मिला कर इस्लामी साधना और दृष्टि को पारसभाग में --अल-ग़ज़ाली के मूल लेखन के अनुरोध पर ----सार्वभौम रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भाषा: क्षमता:

प्रतिपाद्य की इस महिमा के अतिरिक्त पारसभाग की भाषा अपने प्राचीन `रूपों` और प्रयोगों के साथ साथ अपनी आन्तरिक क्षमताओं और संभावनों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सामान्यतः प्राचीन `भाषा`--कृतियों की भाषा में गम्भीर चिन्तन को अभिव्यक्ति देने की क्षमता नहीं पाई जाती। परन्तु भाषा के इसी प्राचीन रूप के माध्यम से पारसभाग के रचयिता ने अल-ग़ज़ाली के गम्भीर दार्शनिक चिन्तन, उसकी तार्किक उपपत्तियों तथा सबसे बढ़कर उसकी अनेक `क्रान्तिकारी` मान्यताओं को अभिव्यक्ति देने का एक प्रयास किया है।

पारसभाग चूंकि इस्लामी साधना दृष्टि और मान्यताओं के एक

आकर ग्रंथ ('कीमिया') का अनुवाद है, इस लिए पारसभाग के रचयिता के सामने इस्लामी साधना और दृष्टि सम्बंधी अरबी (फारसी) की विशाल शब्दावलि को 'भाषा' रूप देने की भी एक अनिवार्य आवश्यकता थी।

भाषाई विवेक :

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए पारसभाग के अनुवादक ने संस्कृत-मूलक शब्दावलि के अतिरिक्त पंजाबी और कभी कभी अरबी (फारसी) शब्दावलि को---तत्सम अथवा तद्भव रूप में-भी निस्संकोच भाव से ग्रहण किया है।

'रोजह' के लिए 'व्रत', 'ज़कात' के लिए दान, 'नमाज़' के लिए भजन जैसे संस्कृतमूलक, शैतान के लिए 'माइआ' (माया) द्वैत के लिए 'दूसरतु' जैसे नव-निर्मित पंजाबी तथा 'सबरु' (सब्र) और 'शुकरु' (शुक्र) जैसे अरबी शब्दों का प्रयोग पारसभाग के 'भाषाई' विवेक का साक्षी है। स्पष्ट है कि न केवल दृष्टि और साधना के क्षेत्र में ही बल्कि भाषा के क्षेत्र में भी पारसभाग एक महनीय कृति है।

काव्य माधुरी :

अल-ग़ज़ाली जन्मत: ईरानी था और ईरान को अपने मधुर काव्य के लिए विश्व-स्तर का सम्मान मिला है। शेख़ सादी, फिरदौसी और उमर ख़ैयाम जैसे ईरानी कवियों ने कविता के क्षेत्र में अक्षय कीर्ति अर्जित की है।

ईरान के इस कवि-परिवेश ने अल-ग़ज़ाली के इस गद्य को बहुत व्यापक रूप से तथा बड़ी गहराई के साथ प्रभावित किया है। अल-ग़ज़ाली का गद्य स्थान स्थान पर काव्य की सुषमा से मण्डित है। उपमा और रूपक का विस्तार देते समय अल-ग़ज़ाली कालिदास और तुलसीदास की ऊंचाइयों को छू लेता है। ग़ज़ाली के गद्य की 'बिम्बमत्ता' को भी उसके सभी अध्येताओं ने मुक्त-कण्ठ से सराहा है।

निश्चय ही गुजराती के फारसी-गद्य का अलंकृत रूप तो पारसभाग भाषा की पकड़ से बाहर है। परन्तु पारसभाग के अनुवादक ने अनावश्यक अलंकरण से प्राय: बचते हुए 'कीमिया' के कितने ही कवित्वमय गद्य-अवतरणों, कितनी ही अनूठी उपमाओं और कितने ही रुचिर रूपकों को मूल के अनुरोध पर अपने पाठकों तक सफलतापूर्वक पहुंचाया है। पारसभाग की व्यावहारिक दृष्टि और उसके सतत जागरूक 'विवेक' का यह उत्तम निदर्शन है।

पारसभाग : 'पाठ'

पारसभाग पिछली दो तीन शताब्दियों से---- संभवत: अपने रचना काल से ही ---- पंजाब की एक लोक प्रिय रचना रही है। फलस्वरूप अनेक लिपिकों ने समय समय पर विभिन्न स्थानों पर पारसभाग की अनेक प्रतिलिपियां तैयार कीं। इन प्रतिलिपियों में वर्तनी, ध्वनि तथा व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से बहुत वैषम्य पाया जाता है। प्राय: उत्तर-वर्ती लिपिक प्राचीन भाषा को सुरक्षित न रख पाए।

पारसभाग के मुद्रकों और प्रकाशकों ने भी पारसभाग की भाषा और इसके पाठ के साथ मनमानी की है। इसके अतिरिक्त मूल पाठ में यत्र तत्र प्रक्षिप्त अंश डाल देने का लोभ भी लिपिक (प्रकाशक) प्राय: संवरण न कर सके। फलत: आज पारसभाग का सही पाठ निश्चित कर पाना एक समस्या बन गई है। इस समस्या का एक मात्र समाधान पारसभाग का तुलनात्मक पद्धति से पाठ-निर्धारण और इस निर्धारित पाठ का समुचित सम्पादन और प्रकाशन ही है। पारसभाग के प्रामाणिक पाठ का अभाव प्रस्तुत अध्ययन के लिए आवश्यक सामग्री संकलित करते समय एक विकट समस्या के रूप में उभरा।

सामग्री : संकलन

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की आधारभूत सामग्री प्राय: 'अहिन्दी' स्रोतों से ली गई है। मुख्यत: गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथों से इस शोध

प्रबन्ध के लिए आवश्यक सामग्री जुटाई गई है। हस्तलिखित ग्रंथों के अतिरिक्त पंजाबी में प्रकाशित सामग्री से भी पर्याप्त सहायता ली गई है। सेवापंथ के इतिहास-विकास की गाथा पंजाबी की ऐसी कितनी ही कृतियों के माध्यम से कहने का प्रयास किया गया है।

इस्लाम, सूफी-दृष्टि और साधना तथा अल-ग़ज़ाली संबंधी सभी विवरण अंग्रेजी की प्रामाणिक कृतियों से लिए गए हैं। 'अल-कुर्आन' तथा 'हदीस' साहित्य के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी अनुवादों की सहायता के बिना इस शोध-प्रबन्ध के कितने ही विवरण अधूरे ही रह जाते।

अरबी-फारसी तक अपनी पहुंच न होने के कारण केवल अंग्रेज़ी में उपलब्ध इस्लामी सामग्री पर ही अधिक निर्भर रहना पड़ा। अरबी-फारसी के विद्वानों, इस्लामी अध्ययन-अध्यापन तथा शोध केन्द्रों के अधिकारी विद्वानों के साथ इस्लामी 'नुक्तों' पर हुई विचार-चर्चा से भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए आवश्यक सामग्री जुटाई गई है। इस प्रकार विगत लगभग आठ वर्षों के अनवरत अध्ययन, मनन और शोध के फलस्वरूप यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

आंतरिक संरचना :

विषय-वस्तु की दृष्टि से इस 'शोध-प्रबन्ध' को 'बहु-आयामीय' अध्ययन कहा जा सकता है। इस अध्ययन के तीन प्रमुख आयाम ये हैं :-

1. सेवापंथ (इतिहास-विकास)।
2. इस्लाम(सूफी): दृष्टि और साधना।
3. इस्लामी दृष्टि और साधना का सार्वभौम रूप।

इन विभिन्न आयामों में अध्ययन सम्बंधी एकसूत्रता बनाए रखना सरल नहीं है। अर्थात् पारसभाग सम्बंधी चर्चा की अवतारणा करने से पूर्व सेवापंथ और सेवापंथ का विवरण देने से पूर्व सिक्ख सम्प्रदाय के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण देना अनिवार्य था।

इस विवरण के बाद पारसभाग की उपजीव्य कृति `कीमिया-ए-सआदत` का परिचय और इसी संदर्भ में `कीमिया` के रचयिता अल-गज़ाली के लेखन का परिचय देना भी अनिवार्य था ।

इन अनिवार्यताओं के अनुरोध पर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को दो भागों- पूर्वार्ध और उत्तरार्ध-- में विभाजित किया गया है ।

पूर्वार्ध में पारसभाग के भारतीय परिवेश तथा पारसभाग के मूल (`कीमिया`) के इस्लामी परिवेश का विवरण दिया गया है । तब कहीं जाकर उत्तरार्ध में पारसभाग के प्रतिपाद्य पर कुछ कहने का अवकाश मिला है । यद्यपि इस जटिल संरचना-क्रम से बचने के लिए अन्य `क्रमों` पर भी विचार किया गया, परन्तु इस `बहु-आयामीय` अध्ययन को कोई दूसरा संरचना - क्रम दे पाना संभव नहीं हुआ ।

इसके अतिरिक्त पारसभाग के अनुवादक ने जो क्रम अपने प्रतिपाद्य को दिया है, उस क्रम को भी पूर्णत: अपना लेना संभव न हो सका । पारसभाग के अनुवादक ने भी अपनी उपजीव्य कृति के क्रम का सर्वत्र निर्वाह नहीं किया और साथ ही बहुत से विशुद्ध इस्लामी तत्वों को भी उसने बिना छुए ही छोड़ कर अपने विवेक का परिचय दिया है ।

`संकलन` और `संचयन` की इसी विवेक-प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पारसभाग के अंतिम `नमोक्ष` (मुमुक्षु) प्रकरण के प्रतिपाद्य को `विधि-पक्ष` इस नए शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है । इस `विधि-पक्ष` को अन्तरंग और बहिरंग इन दो उपवर्गों में-- विवेचन-विश्लेषण की सुविधा के लिए-- विभाजित किया गया है ।

पारसभाग के तीसरे (`विकार-निषेध`) प्रकरण के प्रतिपाद्य को प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के उत्तरार्ध में अंतिम तौर पर `निषेध-पक्ष` इस नए शीर्षक

के अन्तर्गत रखा गया है। इस 'निशीथ' के भी अन्तरंग और बहिरंग ये दो उपवर्ग बनाए गए हैं।

पारसभाग: प्रतिनिधि अंश

इस प्रकार पारसभाग के प्रतिपाद्य और उसकी मूल-दृष्टि को यथा संभव संक्षेप से इस प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। पारसभाग जैसी 'आकर' कृति की इस संक्षिप्त सी रूप रेखा में शायद पारसभाग का कुछ मूल्यवान् अंश न भी आ पाया हो। इस प्रारंभिक अध्ययन की यह एक सीमा हो सकती है परन्तु अपनी ओर से यह भरसक प्रयत्न किया गया है कि भाषा से लेकर प्रतिपाद्य तक पारसभाग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले अंश इस प्रबन्ध में संकलित हो सकें।

इन संकलित अंशों का विवेचन और विश्लेषण --कहीं कहीं तुलनात्मक दृष्टि से-- भी करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार पारसभाग की सामग्री को यथा संभव रूप से 'विवेक और शोध' की कसौटी पर कसने के बाद ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

पाद टिप्पणियां :

इस प्रबन्ध में संकलित विवेचित और विश्लेषित सामग्री का मूल अथवा 'आधार' पाद-टिप्पणियों के कलेवर में रख दिया गया है। साथ ही इन पाद-टिप्पणियों को प्रत्येक अध्याय के अन्त में क्रमिक रूप से रखा गया है।

उत्तरार्ध के अंतिम चार अध्यायों में पाद-टिप्पणियां देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। क्योंकि इन अध्यायों की सामग्री मुख्यत: पारसभाग की ही सामग्री है और इस सामग्री को अधिक से अधिक यथावत् रूप में प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य रहा है। फलत: पाद-टिप्पणियों की आवश्यकता समाप्त होते ही इन्हें 'अलविदा' कह कर उनका विस्तार मूल के चुने हुए अंशों को अर्पित कर दिया गया है।

अन्त में, इस शोध-प्रबन्ध के लिए जिन जिन विद्वानों, विचारकों और अनुसन्धाताओं के लेख तथा विचारों से दिशा-निर्देश मिला है, उन सब का आभार स्मरण हमारा पवित्र और प्रिय कर्तव्य है। डा० मैथिली प्रसाद भारद्वाज इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक रहे हैं। उन्होंने जिस उदारता से हमें 'विचार' और 'पद्धति' की पूर्ण स्वतंत्रता दी, उसके लिए उनका आभार प्रदर्शित करना भी हमारा कर्तव्य है।

लोकमान्य शर्मा

21.10.98

पूर्वार्ध

पृष्ठ

अध्याय: 1

सेवापंथ : इतिहास : (18वीं शती से 20 वीं शती तक)
(1) भाई कन्हैया राम (2) भाई सेवा राम
(3) अड्डणशाह (4) सहजराम। सेवापंथ: संगठन।
नए केन्द्र। महंत-प्रथा। नियमावली। पाद टिप्पणियां। 1-29

अध्याय: 2

सेवापंथ: आस्था: विश्वास:
इष्ट, गुरु 'बख्शीश'। नानक-मर्यादा।
पंथ: प्रतिबद्धता। आदिग्रंथ: धर्म पुस्तक।
साधना : अखण्ड ब्रह्मचर्य, भक्ति, 'दासाभाव', कीर्तन, अपरिग्रह, अतीत भाव।
अद्वैत-दृष्टि: ब्रह्म-कारण, जगत-अध्यास।
प्रमुख मान्यताएं: भेष व्यर्थता, जाति पांति विरोध, तीर्थाटन-विरोध।
दिनचर्या : 'किरत': वृत्ति, कथा, सात्विक-भोजन, पशु-पक्षी-परिचर्या।
साहित्य सर्जन : ग्रंथ लेखन, मौलिक-अनूदित ग्रंथ। पारसभाग। सेमेटिक-यूनानी फलसफा। पाद टिप्पणियां। 30 - 64

अध्याय : 3

पारसभाग : कर्तृत्व
पारसभाग: रुचिकर कथा। पारसभाग : कर्तृत्व :
भाई मंगू-गाड्डु, दशम गुरु अड्डणशाह।
पारसभाग: सूफी स्रोत, फारसी कृतियों की परम्परा-

(1) फ़ानबी भाषा, (2) परबी राइका जी की
(3) परबी मनसूर जी की, (4) `सुभान` (`तफ़्क`)
साहित्य, (5) पंजाबी उपनिषद भाषा ।
पारसभाग: उपजीव्य कृतियां । `इह्या`: आंतरिक संरचना, कीमिया: आंतरिक संरचना। पारसभाग: हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियां ।पाद टिप्पणियां । 65-9[illegible]

अध्याय : 4

अल-ग़ज़ाली : व्यक्तित्व: कृतित्व :

व्यक्तित्व : `इस्लाम का विवेक`, अद्वैतवादी, प्रतिगामी विचार-धारा, अन्तर्विरोध ।
अल-ग़ज़ाली-चिन्तन धारा । संशयवादिता, सूफ़ी-चिन्तन, `सुन्नत` पर पुनर आस्था । अल-ग़ज़ाली: इस्लामी दुनिया।
ग़ज़ाली: कृतित्व : इह्या-उल-उलूम, इह्या: प्रतिपाद्य, इह्या: सार्वजनीनता । पाद टिप्पणियां 93-1[illegible]0

उत्तरार्ध

अध्याय : 1

पारसभाग : अध्यात्म चिन्तन :

आत्म-अनात्म विवेक: आत्मन् : इस्लामी चिन्तन ।
जीव: सूक्ष्म रूप, आत्म-विवेक, आत्मन्: `अबीआई`, `रब्ब` का फ़रमान, जीव: ईश्वर-कृत, जीव: ईश्वर-प्रतिबिम्ब, जीव: राजा, हृदय: आत्म-प्रतिष्ठान, परलोक वर्णन ।
अल्लाह: इस्लामी परम्परा: अल्लाह: विशेषण, अल्लाह: परिभाषा, अल्लाह: स्वरूप ।
`भगवंत की पहचाण`, चिन्दु: सृष्टि । `इच्छा` पहचान ।
`निरलेपता` `सुधता` पहचान । भगवंत : पातशाही । भगवंत:

आज्ञा । भगवंत : स्वरूप । जगत्-कर्तृत्व । भगवंत: स्मरण।
भगवंत: दर्शन । ईश्वर : भगवंत ।
ग़ज़ाली: नास्तिकवाद : इस्लाम : नास्तिक वाद । भगवंत-
निषेध । निराकरण। निष्कर्ष । पाद टिप्पणियां 101-155

अध्याय : 2

साधना (अन्तरंग) पक्ष :

अध्ययन मूलक साधना । साधना: सार्वभौम रूप । विधि
निषेध । अन्तरंग : बहिरंग ।
विधि (अन्तरंग) पक्ष : तौबह । तौबह : पापत्याग,
पाप: इस्लामी - मान्यता ।
सब्र : परिभाषा, कुरान : सब्र, सब्र : गज़ाली, सब्र: महिमा,
सब्र: रूप, सब्र: अंग, सब्र: इस्लामी-इतिहास ।
शुक्र : शुक्र: महिमा, शुक्र स्वरूप, शुक्र: हज़रत मूसा,
शुक्र: इस्लामी परम्परायें ।
मुहब्बत, शौक, रिदा, भगवंत प्रीति : इस्लाम । प्रीति:
स्वरूप । 156-182

अध्याय : 3

विधि (बहिरंग) पक्ष

दान : (ज़कात) इस्लामी परम्परा । दान: पापत्याग ।
फ़कीरी (अपरिग्रह), व्रत: पापत्याग । (कुरान) पाठ
(तिलावत), पवित्रता, मैं, (तौफ़)   183-199

अध्याय : 4

निषेध (अन्तरंग) पक्ष

'प्रकरण विकार निषेध' । 'भले सुभाव: उत्पत्ति' ।
'भला सुभाव :' रूप विकार मुक्त-विधा, 'रिज़ादा' ।

पृष्ठ

क्रोध: मर्यादित रूप । लोभ: मर्यादित रूप । काम: 'विघ्न'। क्रोध: 'विघ्न', कारण: आवश्यकता । दम्भ: स्वरूप, प्रकार, उपयोगिता । [illegible]-214

अध्याय : 5

निषेध (बहिरंग) पक्ष

'माइआ': 'माइआ': स्वरूप ।

'माइआ' : अनिवारिता । 'माइआ': अनंत रूप ।

अति आहार, अल्प आहार, सात्विक भोजन ।

धन-निषेध । रसना: वैशिष्ट्य, संयम, 'विघ्न'।

निंदा: स्वरूप, कारण, प्रकार । 215-231

अध्याय : 6

पारसभाग : भाषा

भाषा : प्रवाह, सुबोधता, चित्रमयता, तार्किकता, सहज-स्निग्धता ।

भाषा-शास्त्रीय सर्वेक्षण : भाषाई-परिपार्श्व, भाषा के तीन स्तर, ध्वनि-परिवर्तन (स्वर), ध्वनि-परिवर्तन (व्यंजन)।

भाषा रूप : विवेचन : उकार बहुलत्व, बहुवचन रूप ।

सर्वनाम (6 प्रकार), विशेषण (4 प्रकार), भाववाचक (4 प्रत्यय), क्रिया कृदन्त रूप । भविष्यत् रूप । विधि संभावनार्थ रूप । संबंधवाची रूप । संयुक्त क्रिया । अरबी-फारसी शब्दावलि । 232-253

उपसंहार : 254-256

संदर्भित पुस्तकें 257-265

पुर्वार्ध

अध्याय-1

सेवापंथ : इतिहास

(18वीं शती से 20वीं शती तक)

1. भाई कन्हैया राम

2. भाई सेवा राम

3. भाई अड्डणशाह

4. भाई सहज राम

(पाद-टिप्पणियां)

<u>'सेवा': भावना :</u>

' जा के मस्तक भाग, सो सेवा लाइआ'

(आदिग्रंथ)

गुरु नानक ने अपनी दृष्टि के केन्द्र में भक्तिमूलक 'सेवाभाव' को रखा है। इस 'सेवाभाव' को साधक पहले सद्गुरु के चरणों में और फिर सद्गुरु के माध्यम से भगवान् के चरणों में अर्पित करता है। दूसरी ओर इस भक्तिमूलक 'सेवाभाव' की उपलब्धि साधक को सद्गुरु की कृपा से ही संभव है। गुरु नानक कहते हैं :-

'गुरमति पाए सहजि सेवा'

(रागु आसा)

इस प्रकार भगवद् - भक्ति सद्गुरु के माध्यम से मानव-सेवा के साथ जुड़ जाती है और इस विशिष्ट 'सेवाभाव' से 'राम' अपने सेवक पर प्रसन्न होते हैं। गुरु नानक कहते हैं :-

'सो सेवकि राम पिआरी'

(रागु रामकली)

इसी 'सेवाभाव' से जीव को प्रभु 'निहाल' करते हैं :-

'सेवकु कउ नै सदा निहालु'

(सुखमनी)

गुरु नानक के अनुसार यही 'सेवाभाव' मानव के लिए साध्य है :-

'आराधि सुर-नर-मुनि-जन सेव'

(जपु)

इस 'सेवाभाव' का आत्म-बलिदान-मूलक सर्वोत्कृष्ट रूप गुरु नानक ने भक्ति के संदर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

'साधु वडे करि वेसणु दीजै, विणु सिर सेव कराजै '

(रागु वडहंस)

गुरु नानक के उत्तराधिकारी गुरुओं ने भी `सेवाभाव` की प्रतिष्ठा स्थान स्थान पर की है। गुरु रामदास के अनुसार किसी भाग्यशाली को ही इस `सेवाभाव का उपलब्धि होती है :-

`सेवक भाइ मिले वडभागी`

(वडहंस `छंत`। महल्ला 4)

गुरु अर्जुन ने इस `सेवाभाव` की अनन्त युगों तक कामना की है :-

`मैं जुग जुग दये सेवड़ी`

(सेवड़ी - सेवा। श्री राग। महल्ला 5)

वस्तुत: `सेवाभाव` गुरु नानक की साधनापद्धति का एक अनिवार्य अंग बन गया है। गुरु नानक की `धरम साल` एक ओर जहां मन और मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करती थी, वहां शारीरिक आवश्यकताओं की भौतिक दृष्टि से पूर्ति करना भी `धरमसाल` का एक आवश्यक कार्य-क्रम बन गया। मिहरि बानु ने `राजे जनक` की `धरमसाल` में `सेवाभाव` का यह चित्र प्रस्तुत किया है :-

`अठे[1] पहर सिमरनि धिआनि[2] महि रहै। देखै[3] सो धिआनु। बोलै सो गिआनु। पर दुख निवारनु राजा जनकु। धरमसाला राजे जनक की आं बरहिं संसार[4] कै विखे। पाणी की धरमसाला चले पिआसा होइसि पावै। अनाज की धरमसाला चले जि भुखा होइसि खाइ। कपड़े की धरमसाला चले कि नागा[5] होइसि पहिरै। ऐसा धरमिआतमा राजा जनकु। नामु दानु इसनानु सीलु संजमु कमावे राजा जनकु`।

(पोथी चतुर्भुज)

सेवापंथ: इतिहास

गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित इस `सेवाभाव` - विशेषत:[6] मानव-सेवा- के विविध आयामों को `साधना` का एक मात्र उद्देश्य मान कर पंजाब में एक `साधुसंघ` की स्थापना हुई। इस संघ को उत्तरवर्ती लेखकों तथा इस संघ के अनुयायियों ने `सेवापंथ` यह एक सार्थक नाम दिया।

हिन्दी-क्षेत्रीय साधु-समाज के पिछले पूरे इतिहास में केवल मानव-सेवा के प्रति पूर्णतः समर्पित इस प्रकार का कोई भी संगठन कदाचित् नहीं है। मानव-सेवा से भी आगे बढ़ कर प्राणिमात्र की सेवा[7] को अपनी चर्या और साधना का अनिवार्य तत्व बना कर चलने वाले 'सेवापंथ' का प्रारंभिक इतिहास आज केवल अनुमान का ही विषय है। भारत-विभाजन के साथ सेवापंथी संगठन और इस संगठन की सेवा-संस्थाएं लगभग समाप्त हो गईं। प्राचीन तथा प्रामाणिक सामग्री के अभाव में 'सेवा पंथ' का इतिहास अन्तिम रूप से लिख पाना आज सरल नहीं है। उधर परम्पराओं और अनुश्रुतियों की सहायता से इस संबंध में जो कुछ लिखा गया है उस पर पूरी तरह विश्वास कर पाना भी संभव नहीं है। सेवापंथी डेरों की 'वंशावलियों' तथा अन्य कृतियों के आधार पर 'सेवापंथ' के इतिहास की रूप-रेखा बनाने से पूर्व 'सेवापंथ' के इतिहास से संबंधित इस प्रामाणिक सामग्री का संक्षिप्त सा परिचय दिया जा रहा है :-

<u>1. संतरत्नमाल:</u> (रचनाकाल: 1818 संवत्)

'वंशावलियों' के अतिरिक्त सेवापंथी कृतियों में सब से महत्त्वपूर्ण है संत लाल चंद कृत 'संतरत्नमाल'[8]। संत लाल चंद के बारे में केवल यह सूचना मिली है कि वह नूरपुर का रहने वाला था। उसे 'जिगिआसु' नाम से भी पुकारा जाता था। सेवापंथी सन्तों महन्तों की प्रार्थना पर महात्माओं की 'साखिआं' लिखना उसने स्वीकार किया और संवत् 1818 में उसने यह रचना समाप्त की :-

> 'उदम दुआर मास समत ग्रह ससि नाग बिंद
> मोखद पुर राम दास, फाग पंचमी इति सिरी'[9]

'उदम' के स्थान पर 'उदध' पाठ कदाचित् उत्तम है। मोक्षदायिनी रामदास (अमृतसर) नगरी में यह रचना समाप्त हुई[10]। लाल चंद के इस साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि 'संतरत्नमाल' में दी गई 'साखिआं' और विविध घटनाएं लाल चंद को परम्परा- मौखिक अथवा लिखित रूप से प्राप्त हुई थीं[11]।

विभिन्न संस्करण :- `संतरत्नमाल` का पहला संस्करण संवत् 1981 (सन् 1924) में छपा। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् 1954 में छप कर तैयार हुआ। महंत हीरा सिंह ने इस संस्करण में बहुत परिवर्तन और संशोधन किए। फलस्वरूप इस नए संस्करण में :-

क- `महापुरुषों की `साखीआं` एक ही स्थान पर आ गई हैं`।

ख- `संवत् लिखे गए। कुछ संवत् अनुमान के आधार पर भी दिए गए हैं।`

ग- `साखीओं` के शीर्षक भी बनाए गए।

इस `पोथी अमोलक रतन` का तीसरा संस्करण जुलाई 1963 में निकला। यह संस्करण द्वितीय संस्करण का पुनर्मुद्रण मात्र है। परन्तु `संतरत्नमाल` के उत्तरवर्ती संस्करणों में बहुत सी सामग्री पूर्वभाग में ही लगातार डाली जाती रही।

शैली :- `संतरत्नमाल` `साखी` (कथा) शैली में लिखा गई है। फलत: इस रचना का ताना-बाना संवादों, उपदेशों और धार्मिक उक्तियों के माध्यम से कुशलतापूर्वक बुना गया है। कथा में विभिन्न प्रसंगों की योजना से इस कृति का ऐतिहासिक मूल्य और महत्व तो बढ़ा ही है, साथ ही इतिहास, कथा तथा उपदेश की त्रिवेणी ने भी इस रचना को महनीय बनाया है।

शैली की दृष्टि से इस रचना की महत्वपूर्ण उपलब्धि है लेखक का भाव-विगलित अन्तस्। सेवा पंथी सन्तों का यशोगान तो उसने बहुत भावुक होकर किया ही है, साथ ही गुरु नानक तथा उनके उत्तरवर्ती गुरुओं एवम् `आदिग्रंथ` के प्रति लेखक ने अपनी असीम श्रद्धा को भी श्रद्धा-सहस्रधा प्रकट किया है।

प्रतिपाद्य :- इस रचना में अनेक प्राचीन कथाएं, अनुश्रुतियां, ऐतिहासिक तथा अर्ध-ऐतिहासिक घटनाएं सेवापंथ के संबंध में दी गई हैं। फलस्वरूप सेवापंथ के इतिहास के साथ साथ 18 वीं तथा 19 वीं शती के समाज का एक चित्र भी इस कृति में विभिन्न स्थलों पर उभरा है।

संत-जीवनियों के अन्तर्गत यथावसर विभिन्न दार्शनिक और साधना संबंधी प्रश्नों पर बहुत ही मूल्यवान् सामग्री इस कृति में संकलित की गई है। उत्तरी भारत के संत-साहित्य में इस प्रकार की कृति संभवत: 'संतरतनमाल' के अतिरिक्त दूसरी नहीं है।

2. पोथी आसावरीआं[12] :- (समय अनिश्चित। संभवत: 18वीं शती का मध्यभाग)

सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार यह रचना 'भाई सहज राम कृत'[13] है। सहज राम सेवापंथ के महान लेखकों में से थे। सेवापंथ के प्रवर्तकों - भाई कन्हैया राम, भाई सेवाराम तथा भाई अड्डणशाह - की जीवनियां 'प्रचीआं' (पर्चीआं') आप की रचनाएं बताई जाती हैं। अभी तक ये सभी रचनाएं हस्तलिखित रूप में ही उपलब्ध हैं। लेखन- विशेषत: 'पर्ची' (जीवनी) लेखन- सहज राम की जीवन चर्या का एक प्रमुख अंग था। 'संतरतनमाल' में भाई सहजराम के लेखन की पुष्टि इन शब्दों में की गई है :-

'संतां कीआं परचीआं सैतीआं बनावते हैं'

(पृष्ठ 31)

विषय-वस्तु :- 'पोथी आसावरीआं' में सेवापंथी 'रहत' तथा दृष्टि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। भक्ति, दास्यभाव तथा अद्वैत - दृष्टि का समन्वय इस कृति में स्थापित करने का प्रयास किया गया है। कथा 'कीर्तन' की उपयोगिता, सेवा-भावना की पुष्टि तथा गुरु (प्रभु) परायणता इस कृति का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

शैली :- शैली की तार्किकता इस कृति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है। युक्ति-प्रमाणों की योजना तथा स्थान स्थान पर विभिन्न छन्दों, रागों (विशेषत: आसावरी राग) तथा अन्य पद्य-रूपों (रेखता', 'बहर' आदि) की योजना से इस कृति का महत्व बढ़ गया है।

'पोथी आसावरीआं' तथा अन्य 'पवीआं' के अतिरिक्त सहज राम का नाम भी 'कीमीआ-ए-सआदत' के अनुवाद (पारस भाग) के साथ जोड़ा जाता है। इस संबंध में यथावसर विस्तार से विचार किया जाएगा।

इस में सन्देह नहीं कि भाई सहजराम सेवापंथ के प्रवर्तकों - भाई सेवाराम तथा भाई अड्डणशाह- के निकटतम सम्पर्क में आए। फलस्वरूप भाई सहज राम की दृष्टि और उनकी चर्या सेवापंथ के लिए आदर्श बन गई और इस आदर्श का मूर्त रूप 'पोथी आसावरीआं' में देखा जा सकता है।

इन रचनाओं[14] तथा कुछ प्रामाणिक 'वंशावलियों[15]' के आधार पर सेवापंथ का इतिहास तथा इस पंथ के ऐतिहासिक पुरुषों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है :-

1. भाई कन्हैया राम :-

करुणामयता :- संतरत्नमाल के अनुसार सेवापंथ के संस्थापक भाई[16] कन्हैयाराम थे। इन्हें 'आदि संत' या 'आदि भाई' प्रभृति विशेषणों के साथ याद किया है। बताया जाता है कि भाई कन्हैया राम नवम गुरु तेगबहादुर की सेवा में उपस्थित हुए (1723 संवत्) गुरु तेगबहादुर की प्रेरणा से भाई कन्हैया ने लाहौर से लेकर पेशावर तक के मार्ग पर प्राणी-मात्र के उपकार के लिए धर्मशाला, जल तथा विश्राम आदि की व्यवस्था की। उनकी करुणामयता सेवापंथी कृतियों में अनेकशः परिलक्षित की गई है।[17]

कहा जाता है कि जब दशम गुरु तुर्कों के साथ युद्ध कर रहे थे तो भाई कन्हैया अपने तथा शत्रुओं के सैनिकों की भी यथोचित सेवा करते थे।[18] इस निस्वार्थ सेवाभाव के कारण दशम गुरु ने इन्हें अपना आशीर्वाद (बख्शीश) देकर प्राणीमात्र की सेवा के लिए नियुक्त किया। अपनी इस करुणामयता,

सक्रिय-उपकार-प्रवृत्ति तथा नाम-परायणता के कारण दशम गुरु ने इन्हें 'बख्शीश' दी :-

'बहुड़ गुरु जी भाई कनैय्या जी को हुकम देते भए, कि तुसीं (तुम) जाइके देस दिसांतर में (में) सरब जीवां को सुख देवो, अर परसनता लेवो, इसी बीच हमारी परसनता है तुमारे पर । अर तुमारा पंथ भी होगा सारे संसार बीच, अर सरब कउ गुरमत का उपदेस देवो । ऐसे भाई कनैय्या जी गुरों की आगिआ ले कर सरब देस बीच गुरमत देते हुए विचरे हैं जी ।'

(संतरतनमाल: पृष्ठ 14)

स्पष्ट है कि भाई कन्हैया 'गुरुमत' के प्रचार के साथ साथ सार्वजनिक सेवा-कार्य के प्रति कृत-संकल्प हुए ।

समदर्शिता:रहत :- भाई कन्हैया की 'रहत' को नज़दीक से देख कर उनके अनन्य शिष्य भाई सेवा राम बहुत प्रभावित हुए :-' ते आणिआ जी इह हरख, सोक (शोक) दुख, सुख ते (और) मान अपमान विच (में) सदा समदरसी हैं ।'

(संतरतनमाल : पृष्ठ 15)

अपने इन्हीं दिव्य गुणों के कारण भाई कन्हैया सेवा पंथ के 'आदि पुरुष' कहे जाते हैं ।

2. भाई सेवाराम :

संतरतनमाल[17] के लेखक ने किसी 'परची' के आधार पर इनका 'अवतार' 'दखण देस'[20] में हुआ बताया है । संयोग से यह भाई कन्हैया राम के सम्पर्क में आए । कहा जाता है कि भाई कन्हैयाराम ने इन्हें किसी 'सिकदार' (सरदार: हाकिम) की कैद से छुड़ाया था । संतरतनमाल में लिखा है :-

`भाई कनैय्या जा ने पाहलों तां सेवा राम जा नूं (को) सरीर दी ( की ) केद तों छुड़ाया, ते फेर मन दी केद तों नाम विच रंग के आज़ाद कीता। सेवाराम जा ने वी (भी) सेवा अजेही ( ऐसी ) कीती (की) कि आने नाम नूं सचीमुची ( सचमुच) सफल कर दिखाया` ।

(पृष्ठ 12)

<u>कठोर-जीवन चर्या :-</u> भाई कन्हैया राम के साथ सेवा राम देशाटन को निकले । भाई कन्हैया ने इस देशाटन की योजना से पूर्व एक कठोर दिनचर्या का विधान किया । इस देशाटन में भोजन-संबंधी मर्यादा का विधान तथा उसका पालन भाई कन्हैया ने बड़ी सख्ती से किया । इस देशाटन के बाद भाई कन्हैयाराम सेवाराम को साथ लेकर `कव्वा` नामक स्थान में अपनी `धरमसाल` पर वापिस आए ।

<u>मार्मिक व्याख्याता :-</u> सेवाराम जी संत-वृत्ति सम्पन्न महात्मा तो थे ही, साथ ही वे गुरु-वाणी के मर्मज्ञ भी थे । गुरुवाणी की व्याख्या करते समय उनका अद्भुत रूप प्रायः सामने आता था ।

`मछुली विछुंनी नैणा रुंनी जाल बधक पाइआ`

`आदिग्रंथ` की इस पंक्ति की सुन्दर व्याख्या भाई सेवाराम ने इस प्रकार की है :-

`प्रथम जब संमुद्र ते मछुली विछुरी, अर नाले व अल्प नदी में प्रवेश भया । तब रुंनी, (रोई) जो अब मुझे बधक ने जाल पाइआ, तातपरज (तात्पर्य) यदि जो पीछे जीव अचेत भइआ है विखिआं (विषयों) में । प्रथम याहु भी बिछुरे ते रोवता था, जो अब काल रूपी बधक मुझे जाल पाइआ, जो ब्रह्म से बिछुर के जावत पद पाइआ (तो जैसे साखा है भाई गुरदास जी की - `उह रोवे लाल गवाइके ।`

जब ऐसा बचन भाई सेवाराम जी का सुनिआं, तब सारी सभा बुधिवानों को कहा, 'साध: साध:' (साधु: साधु: संतरतनमाल: पृष्ठ 35)

<u>भेष व्यर्थता :-</u> भाई सेवाराम भेष धारण की अपेक्षा गृहस्थ का पालन करना अधिक उचित समझते थे। संतरतनमाल के अनुसार 'भाई सन्तोषा' को उन्होंने कहा था :-

'तब भाई जी बचन कीआ, कि तुम ईहां ग्रिह में ही रहो। अर भेष धारने में किआ (क्या) है। यहि तो तूड़ी (' पुआल: पंजाबी) के गाल्नवत बिअर्थ कतन है। तुम सार को ही ग्रहण करो। अर ग्रिह में ही सावधान (स्थित) रहो। हान-लाभ, हरख-सोग, मान-अपमान तुल जानो। तुम को ग्रिह बन तुल होवेगा।' (संतरतनमाल: पृष्ठ 44

<u>आहार-संयम :-</u> भाई सेवाराम ने अपने साधुओं के सामने भोजन संबंधी संयम का एक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया। सामने परोसे हुए अनेक व्यंजनों में से अपने लिए केवल 'साग-फुल्का' (चपाती) ले कर सेवाराम ने सेवापंथी साधकों को मिताहार के साथ साथ सात्विक भोजन करने का भी उपदेश किया।

भाई सेवाराम ने नूरपुर [illegible] नामक 'नगर' में अपनी मुख्य 'धरमसाल' बनाई, और लोगों को पानी का कष्ट देख कर वहां एक कुआं भी खुदवाया। इस 'धरमसाल' के अतिरिक्त दो एक अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार की सार्वजनिक संस्थाएं स्थापित कीं तथा कुछ अन्य 'सार्वजनिक सुविधाओं' की भी व्यवस्था की।

भाई सेवाराम की समस्त जीवन-दृष्टि और उनकी साधना को इन शब्दों में रूपायित किया गया है :-

'अर् ऐडे सांति (शान्ति) आतमा धीरज की गिआन (ज्ञान) महातमां पुरष हैं। जिन कउं सत्रू (शत्रु) मित्र समान है, हरष सोग, मान अपमान समान है, सोना माटी समान है। प्रम (परम) निरबाहा (निस्पृह), पर-उपकारी, ऐसे महातमां पुरष हैं।'

(संतरत्नमाल: पृष्ठ 38)

3. अड्डणशाह :

'निरबाहता साधु दा गहणा है'।

(अड्डणशाह)

भाई सेवाराम के अनेक शिष्य थे। इन में मुख्य हैं अड्डणशाह। अड्डणशाह का जीवन-वृत्त पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है उनकी जन्म-तिथि भी अज्ञात है। हां, अड्डणशाही परम्पराओं के अनुसार इनका देहान्त वैसाख सुदी 8 संवत् 1884 विक्रमी तदनुसार 26 अप्रैल, 1737 ई० को हुआ।[23] प्रो० प्रीतम सिंह का अनुमान है कि अड्डणशाह का जन्म 1680 ई० के आसपास हुआ होगा।[24] जन्म और मृत्यु की इन तिथियों से यह अनुमान किया जा सकता है कि अड्डणशाह का रचना काल 18 वीं शती का पूर्वार्ध ही रहा होगा।

भाई सेवाराम के शिष्य बनने से पूर्व अड्डणशाह एक नाम-परायण और तपस्वी महात्मा के रूप में प्रसिद्ध थे। भाई सेवाराम के साथ उनका प्रथम परिचय संवत् 1770 में बताया गया है। यह भी प्रसिद्ध है कि भाई सेवाराम का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद वे भाई कन्हैया और भाई सेवाराम दोनों की सेवा करते रहे। इन दोनों 'गुरुओं' का पूरा शिष्य-मण्डल भाई अड्डण को ही अपना अधिष्ठाता मानने लगा।[26] यहां तक कि कालांतर में अड्डणशाह के जीवन के साथ कितनी ही 'करामाती' घटनाएं भी जुड़ गईं। इस प्रकार की एक घटना संतरत्नमाल (पृष्ठ 78) में दी गई है। यद्यपि 'करामातों' का विरोध अड्डणशाह की दृष्टि के अनुरूप था, फिर भी इस प्रकार की करामाती

कहानियां सेवापंथी रचनाओं में अड्डणशाह आदि संतों के जीवन से जोड़ दी गई हैं।

व्यक्तित्व :- सेवापंथी साहित्य के अध्ययन से अड्डणशाह के जीवन का जो चित्र सामने उभरता है वह है एक वीतराग, शम-दम-अपरिग्रह आदि विभूतियों से समन्वित, सर्वभूतानुकम्पी, एवं मूंज कूट कर, रस्सियां बना कर, अपना लोक-यात्रा साधन करने वाले अप्रतिम तपस्वी और उद्भट विचारक का।

कृतित्व :- भाई अड्डणशाह के व्यापक अध्ययन और प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय 'पारसभाग' के अतिरिक्त 'विवेकसार' या 'अड्डणशाह-दयाराम प्रश्नोत्तरी'[27] जैसी कृतियों से मिलता है। भाई दयाराम के अनेक प्रश्नों का समाधान भाई अड्डणशाह ने अपनी शास्त्र-निष्ठ दृष्टि से किया है। जीव-प्रकृति, ब्रह्म-आत्मा एवं साकार-निराकार आदि जटिल समस्याओं पर उनके विचार बहुत सुलझे हुए एवं पर्याप्त प्रामाणिक हैं।

'संतरत्नमाल' के अनुसार मुसलमान दरवेशों, सूफियों और मौलवियों के साथ भी अड्डणशाह के घनिष्ठ संबंध थे। इनके साथ अड्डणशाह की ज्ञान-चर्चा भी चलती रहती थी। इस प्रकार अड्डणशाह की दृष्टि भारतीय-चिन्तन धारा के साथ साथ इस्लाम-विशेषतः सूफी विचारधारा - से भी जुड़ी हुई थी। उनका समस्त कृतित्व भारतीय और इस्लामी साधना पद्धतियों का एक अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है।

'भेष निशानी' :- सामान्यतः यह माना जाता है कि भाई अड्डणशाह ने ही सेवापंथ को 'भेष' के रूप में संगठित किया और सेवापंथ को एक विशिष्ट वेश-भूषा भी प्रदान की। इस सम्बन्ध में एक रोचक प्रसंग संतरत्नमाल में दिया गया है :-

`एक बेर (वार) भाई अड्डण जी शहुदरे (`शाहदरे`) थे। अर साध जो भाई पास रहिते थे, सो सिर पर स्वेत साफे बांध छोड़ते थे, अर मैले लीड़े (कपड़े) किसी किसी के होवहिं। जो बैरागवान शौक वाले थे, अर जंगल जाते आवते कोई परदेसी सिपाही `बेगार` में पकड़ लेवें। अर पोट (सामान) चुकाइ देवें। तब साध आगे ते बोलें कछ नहीं, अर तिसकी पोट पहुंचाइ आवें। तब इह बात सभ किसी सुणी जो जो साधां को बेगार में सिपाही पकड़ लैते हैं। अर साध भी ते एता (इतना) बचन भी नहीं कहिते हैं जो हम तो साधु हैं, पोट चुक (उठा: पंजाबी) के पहुंचाइ देते हैं।`

(संतरतनमाल: पृष्ठ 83)

सिद्धान्त रूप से अड्डणशाह `भेष` धारण करने के विरुद्ध थे। परन्तु अपने पंथ को एक विशिष्ट-इकाई के रूप में संघ-बद्ध करने के लिए उन्हें संभवत: बाध्य होना पड़ा। लाल चंद ने लिखा है :-

`तब भाई अड्डण साहिब जी बचन कीआ, किआ (क्या) भेष बनावणा है। जेता (जितना) दिखाला (दिखावा) करना है सो कपट है। अर इहो प्रमेस्वर जी के आगे पटल है। इस कर सच की प्रापति तो नहीं होती, उलटा सच के आगे पड़दा (परदा) है। साख --

भेष दिखाइ जगत को लोगन को बस कीन
अंत काल काती कटिओ बास नरक में लीन[28]`।

जब `भेष` धारण एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई तब अड्डणशाह ने :-

`साधां के सीस पर टोपिआं पहिराइआं, पर चूधीआं, अर लक (लंक`।कटि) साफा इकहरा या डेढा दीआ`।

`टोपी` संतवेश में गोरख नाथ और कबीर के युग से ही सम्मिलित हो चुकी थी। सिक्ख-मत में भी `सेली टोपी` का वेश पंचम-गुरु अर्जुनदेव

तक रहा बताया जाता है।[30] इस टोपी को सेवापंथ के विशिष्ट चिन्ह के रूप में अड्डणशाह ने स्वीकृत किया। सीधी टोपी के अतिरिक्त एक कटि-वस्त्र की व्यवस्था भी इसी `भेख` मर्यादा के अनुसार स्वीकृत हुई।

4. सहजराम :

भाई सेवा राम के दूसरे शिष्य (अड्डणशाह के गुरुभाई) भाई सहज राम अपनी संतवृत्ति तथा सेवापरायणता के अतिरिक्त अपने साहित्य-सर्जन के कारण भी प्रसिद्ध हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में वे एक महान् भक्त, निष्ठावान् साधक, प्रतिभाशाली कथावाचक तथा अद्भुत `कीरतन कार` थे।

सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार भाई सहजराम एक समर्थ लेखक थे। कहा जाता है कि सेवापंथी परम्पराओं और नियमों को `साखी` शैली में उन्होंने ही लिपिबद्ध किया[31] और कहा तो यह भी जाता है कि `कीमिआ-ए-सआदत` का अनुवाद भी `पारसभाग` नाम से उन्होंने ही किया।

सहज राम एक अद्भुत व्याख्याता थे। उनके `कीरतन` और उनकी व्याख्याकारिता का उत्कर्ष इन अवतरणों में साकार हो उठा है :-

`अनभव ऐसा खुलिआ हुआ था भाई सहजराम जी का। जो जब कीरतन करने बैठहिं तब एक भाव के सलोक अनेक ही कहैं। अर एक ही भाव के सबद गावते जावे वेते`।[32]

आश्चर्यचकित एक श्रोता ने पूछा -

` जो आपको एती (इतनी) सिम्रती कैसे होई जाती है जो एक एक सबद नाल एते प्रमाण देते हो`? भाई सहज राम का यह उत्तर उनकी प्रतिभा तथा उनकी मेधाशक्ति का परिचायक है :-

`जो भाई सेवाराम जी की किरपा कर जब मैं कीरतन करन लागता हाँ, तब संगलीआं बांधके आगे अधिक ही शबद सलोक सनमुख आइ खलोवते (खड़े होते) हैं। वहु कहिता है मुझ को गावो, वहु कहिता है मुझ को गावो` 33

इस प्रकार भाई सहजराम का समग्र-चिन्तन, मनन, उनकी प्रतिभा तथा उनकी संतवृत्ति का एक अविकल चित्र इस प्रकार के अनेक अवतरणों में उभरा है। साधना और चर्या का यही चित्र उत्तरवर्ती साधकों के लिए आदर्श बन गया। उनके संबंध में संतों की `परचीआं` (जीवनियां) लिखने का उल्लेख भी अनेक बार हुआ है :-

`बहुर कथा होवती है तां भाई सहजराम जी अधिक विखिआन (व्याख्यान) करते हैं, अर संतां कीआं, परचीआं केतीआं (कितनी ही) बनावते हैं`।

(संतरतनमाल : पृष्ठ 31)

इसके साथ ही गुरुवाणी के छोटे छोटे `गुटके` लिख कर भी वे श्रद्धालुओं को दिया करते थे। इस तथ्य का उल्लेख भी अनेकशः हुआ है :-

`जो सुखमना साहिब एक ही दिन मैं लिख दीनी`।

(वही : पृष्ठ 30)

साधक: `कसवटी` (कसौटी)

वैराग्यभाव :- सेवापंथी साधुओं में शिष्य बनाने की एक कठोर मर्यादा थी। जगत् से पूर्ण `वैराग्य` और `सेवाभाव` इस मर्यादा के प्रमुख तत्व थे। शिष्य बनने के लिए आए एक दीवान के पुत्र का वैराग्यभाव इस प्रकार चित्रित किया गया है :-

`अर इन दीवान के बेटे की तरह सुख बने हुए थे। सारे देस का हुकम अर माइआ के खजाने (खजाने) रहे हैं जो कुछ अन्त नहीं, अर वैसे तंखह लेना पाई

चढ़ती है। सो सभ हुक्म के अनकूल वरतते हैं। हौर (और : पंजाबी) ग्रिह में जो संबंधी हैं, सो सरब चाहते हैं। जुवा (युवा) अवसथा अर नारीआं ग्रिह में ऐसीआं हैं जो मानो सुरग (स्वर्ग) कीआं सुंदरीआं हैं। ऐसे सरब सुख भोग अनकूल होते हुए जब संतां के बचन सुने, तब ततकाल सभ किछ तिआगके इसथित भइआ। कुछ भी किसी पदारथ में मोह नहीं राखिआ। सो जब पाग (पगड़ी) उतार के परे डार दीनी, तब संतां देखिआ कि बडी 'कथवटी' ते पूरा उतरिआ है। लोकलजा (लज्जा) अर राज का अहंकार अर संबंधि अहुं अर पदारथहुं का मोह तिआग के इसथित है'।34

प्रारंभ में, संभवत:, 'भेख' धारण के प्रति सेवापंथी साधकों की वितृष्णा के कारण सेवापंथ में दीक्षा लेकर शिष्य बनना सरल नहीं रहा होगा। इस तथ्य की पुष्टि इस से भी होती है कि सेवापंथी साधक प्राय: शिष्य बनने वालेको गृहस्थ में रह कर ही जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दिया करते थे।

'भाई बुधर' ने सेवा राम का दासाभाव (शिष्यत्व) ग्रहण करने के लिए बहुत अनुनय विनय की। इस पर भाई सेवाराम ने आदिग्रंथ के -

'ग्रिह बन समसर गुर प्रसादि'

इस वचन को उद्धृत करते हुए आज्ञा की :-

'सुनहो भैया गुरसिखी तो भावना की है। अर बाहर के भेखहुं करके कुछ हाथ नहीं आवता। - - तां ते तुम ग्रिह महि ही भगती करो किउं जो कबीर ते आद (आदि) जो भगत हुए हैं, सो ग्रिहसत में ही रहे हैं। तां ते ग्रिह में बसो मन मांहि निरबास (वासनारहित) निरमोही रहिना'।

(संतरतनमाल: पृष्ठ 53)

इसी प्रकार भाई सन्तोखा को भी भाई सेवाराम ने 'ग्रिह बन तुल' समझने का आदेश दिया।

परन्तु कालांतर में पंथ-विस्तार के साथ एक व्यापक शिष्य वर्ग की आवश्यकता अनुभव की गई और इस प्रकार दीक्षा देते समय पर्याप्त शिथिलता आने लगी ।

संतलालचंद ने लिखा है :-

'जो कोई किसी टिकाणी ते आइ रहै (मिले: पंजाबी) साध बणने नमित, तब तिसको 'भेख'[35] टोपी न देवे । जो इसे काहला (जल्दी: पंजाबी) करने करके सब मिरजादा (मर्यादा) उठ गई है ।'

(संतरत्नमाल: पृष्ठ 7)

विश्व भर में धर्मों -सम्प्रदायों के इतिहास ने अपने को इसी रूप में बार बार दुहराया है और विभिन्न वेश-भूषाओं को अपने अपने अनुयायियों के लिए विहित ठहराया है ।

सेवापंथ : संगठन :

सेवापंथ के आदि पुरुष भाई कन्हैया राम तथा उनके उत्तराधिकारी भाई सेवाराम और उनके शिष्य भाई अड्डणशाह ने अपनी सक्रिय सेवा-भावना तथा नाम-परायणता को आधार बना कर सिक्ख-मत से पृथक् एक इकाई के रूप में सेवापंथ को संगठित किया । इन तीनों महापुरुषों की अपूर्व दिन चर्या तथा उनकी मानवीय दृष्टि के कारण सेवापंथ को जनता से भरपूर सम्मान और सहयोग भी मिला ।

इन तीनों महापुरुषों में से भाई सेवाराम और भाई अड्डणशाह को सेवापंथ की स्थापना का श्रेय दिया जा सकता है । अड्डणशाह के महिमामय जीवन के कारण सेवापंथ इन्हीं के नाम पर 'अड्डणशाही पंथ' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ । 'संतरत्नमाल' में एक स्थान पर लिखा है :-

'एक पंथ दोउ भेद, जो गुर चेले के नाम,
जो जिस देस प्रसिध है, भाषत है अभिराम' ।

(पृष्ठ 424)

इसीलिए इस पंथ को कभी 'सेवापंथ' तो कभी अड्डणशाही पंथ कहा जाता है ।

विश्वास :- विश्वासों की दृष्टि से 'सेवापंथ' सिक्ख-पंथ का ही एक शाखा है । सभी सेवापंथी अपने को सिक्ख ही कहते हैं । उनका साधारण आचार-व्यवहार भी सिक्ख-सम्प्रदाय के अनुरूप ही है । कुछ नगण्य से मतभेद दोनों पंथों में अवश्य हैं । परन्तु मौलिक विश्वासों की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है । परन्तु जीव-रक्षा, मानवीय सहानुभूति, दयालुता तथा कोमलता आदि भावनाओं को व्यावहारिक रूप में अपनाने पर सेवापंथ में अधिक बल दिया गया है ।

संत लाल चंद ने सेवापंथ के इतिहास को एक रूपक में इस प्रकार बांधा है :-

'श्री गुरु तेगबहादर की असीस बीज भयो,
श्री दसमेस क्रिपा जल पछिानीए ।
अंकुर कन्हैया लाल, मूल भाई सेवाराम,
आलबाल संत भाई अड्डण प्रमानीए ।
डाल गुर आइआ राम, भाई भलाराम आदि,
भाई दुखभंजन परसराम जानीए ।
और साथ संत साखा, फूल फल पात आदि
सुजस लगानयो पंथ देवतर जानीए' ।

(संतरतनमाल: पृष्ठ 561)

सेवापंथ: अड्डणशाही पंथ:

संत लाल चंद के अनुसार पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) के जिन जनपदों

में सेवाराम प्रचार करते थे, उन जनपदों में इस पंथ का प्रसिद्ध नाम `सेवापंथ` है तथा जिन अंचलों में अड्डणशाह ने अपने केन्द्र (धरमसाल) स्थापित किए उन अंचलों में `सेवापंथ` `अड्डणशाही पंथ` के नाम से प्रसिद्ध हुआ[36] :-

`सेवापंथी अड्डणशाही,
दुइ किउं कहैं एक है मांही ।
सो अब निरनो नीकी भांति,
सुनिए जां ते विनसे भ्रांति ।
भेहरा मिआनी अरु मुलतान,
सेवाराम विचर सुणगान ।
यां ते तिह पुर नगरन मांही,
सेवापंथी पंथ बताहीं[37] ।`

भावार्थ यह कि `भेहरा` `मिआनी` तथा `मुलतान` के प्रदेशों में इस सम्प्रदाय का नाम `सेवापंथ` है । इसके अतिरिक्त :-

`पुर करतार लाहौर पुर,
नगर शहुदरे मांहीं ।
वड प्रताप युत बसत मे,
संत अड्डण जी तांहीं[38] ।`

अर्थात् लाहौर, शाहदरा तथा करतारपुर (जिला जालंधर) में अड्डणशाही सम्प्रदाय के नाम से यह सम्प्रदाय प्रसिद्ध है । सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार अविभाजित भारत के प्रदेशों में सेवापंथी महात्माओं ने अपने आश्रम बनाए थे ।

सेवापंथ: नए केन्द्र :

सेवापंथ के मुख्य मुख्य केन्द्र विभाजन के बाद पाकिस्तान में रह गए हैं । भारत में `सेवापंथ` को फिर से संगठित करने का पर्याप्त प्रयास किया गया है । अमृतसर में `सेवापंथ` के कई प्राचीन डेरे भी विद्यमान हैं । इनके अतिरिक्त पटियाला और जगाधरी (हरियाणा) तथा हरिद्वार में `सेवापंथ` के

नए केन्द्र स्थापित हुए हैं। इन केन्द्रों का संचालन 'सेवापंथी - अड्डणशाही-सभा' के द्वारा होता है।

सेवापंथ: महंत-प्रथा :

सेवापंथी इतिहास तथा परम्पराओं के अनुसार सेवापंथ के आदि पुरुष भाई कन्हैया राम ने भाई सेवाराम को तथा भाई सेवाराम ने अड्डणशाह को अपना उत्तराधिकारी चुना। परन्तु बाद में सेवापंथी डेरों में उत्तराधिकार, संभवत:, एक जटिल समस्या के रूप में उभरा और समस्या का सरल सा समाधान 'महंत-प्रथा' की स्थापना में ढूंढा गया। वस्तुत: सेवापंथ के महात्माओं ने अपनी संतवृत्ति, सेवापरायणता और भक्ति-भावना के कारण पंजाब में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की और इस लोकप्रियता के कारण 'सेवापंथी-डेरे' स्थान स्थान पर बने। कालांतर में ये 'डेरे' अन्य मठों की भांती सम्पन्न से सम्पन्नतर बनते चले गए।

अन्त में, इन सम्पन्न डेरों को हथियाने के लिए कुछ लोगों ने 'महंती' की ओट ली। निश्चय ही यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण थी। परन्तु मठों और विशेषत: उनकी सम्पत्ति की इतिहासिक नियति यही रही है कि विघटन से पूर्व मठ तथा उनमें संचित सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित हो जाए। जो भी हो, संतलालचंद जैसे कुछ उदार-आशय महात्माओं ने इस महंत-प्रथा को उदाराशयता की कोटि में बनाए रखने के लिए ये आदर्श वाक्य सेवापंथ के सामने रखे :-

'एह बडिआं साधां का रीति है, जो लाइकचंद (लायक) होवै, तिस को डेरे की टहिल देनी। अपना पराइआ छोटा वड्डा चेला, इह भेद कोई कलपना न उठावणी, अते लाइका भी एह न देखणी जो इह माइआ के विवहार में

वतर है। जो सांतकी (सात्त्विक) गुणां कर सोमत है सो नाइकवंद, अर जो भाई सेवाराम जी का मेषधारी सो समके गुर भाई हैं।'

(संतरतनमाल: पृष्ठ 58)

परन्तु ये आदर्श व्यवहार के स्तर पर न कभी पूरे उतरे हैं और न ऐसी कोई आशा ही है।

मंहती-रस्म :

सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार प्रत्येक महंत अपने उत्तराधिकारी महंत की योग्यता तथा सेवावृत्ति के आधार पर चुनता है। इस चुनाव के अवसर पर वृद्ध महंत भावी महंत के सामने एक `भाड़ू` तथा एक `कटोरा` (छन्ना: पंजाबी) रखकर उसे नमस्कार करता है। `भाड़ू` साफ सफाई की सेवा का तथा `कटोरा` अन्न दान का प्रतीक है। भाई दरबारा को महंत बनाते हुए भाई धरम दास ने कहा :-

`असों (हम) तेनूं ( तुझे) काई महंती तां नहीं देणी लागे। इह तां गुरदुआरे की टहिल है भाड़ू की। सो साध संगत की टहिल करहु। तब भाई दरबारा जी हाथ जोड़ के कहिआ, सत बचन मिहरवान। इस प्रकार भाई दरबारा जी टिकाणे की टहिल अंगीकार कीनी, भाई धरमदास जी की प्रसनता के नमित`   (संतरतनमाल: पृष्ठ 197)

परन्तु कालांतर में सभी अवसरों पर इस परम्परा की पवित्र मर्यादा सुरक्षित नहीं रखी जा सकी। एक `बचन` में महंतों के संबंध में कहा गया है :-

` महंत हैं। जैसे टिब्बे (पहाड़ी) का मेघ। जब तीक (तक) मेघ पड़ता रहा तब तीक भागा रहा। जब मेघ हटा पउण (पवन) लागी सूके (सूखे) का सूका है। सो इहां पउण कौन है वासना ही पउण है। सो वासना की फैलती

है सो जगत की प्रभता कर फैलती है । जब दस बीस चेलै होइ गए । महंत जी महंत जी होणी लागा । इतने मैं महंत जी फूल गए । जैसे सावणा माह का गोबर किरमहु कर फूल जाता है बार कणी आं (बूंद) मेघ की आं पड़ने सिउ । सो इहां फूलणा किआ है जो परमेसुर के भजन को छोड़ बैठणा । जिस काम वै लई (लिए) घर छुडे (छोड़े) थे । माता पिता तिआगे थे । देस मुलख तिआगे थे । उह बात कहीं किनारे ही पड़ी रहि गई । अर करणे की (क्या : पंजाबी) लागे ? जो किसी की मुख सिउ निंदा है किसी की उसतति है । जो कोउ पदारथ दे गइआ तिस की उसतति करणे लागे । न दे गइआ उसकी निंदा करी । इसी मैं पड़े स्वास गावणे ।'[39]

स्पष्ट है कि महंत-प्रथा सेवापंथ में भी उसी प्रकार दूषित हो गई जिस प्रकार वह अन्य सम्प्रदायों या मठधारी साधुओं में भ्रष्टाचार में परिणत होती रही है ।

नियमावली :

आस्था और विश्वासों की प्राचीन परम्परा को ध्यान में रख कर सेवापंथ के आधुनिक संगठनों[40] ने अपने अनुयायियों के लिए 14 नियम निर्धारित किए हैं । इन में से मुख्य ये हैं :-

1. 'किरत धरम की करनी, लूड़ींद मूजब (आवश्यकतानुसार), वाणां वाणा वट लेणा, अते जिसका सरीर मुंज न वट सके, सो सीवना करले, पर लूड़ींद मूजब' । अर्थात धर्म की 'किरत' जैसे बाण (चारपाई आदि के लिए) बटना या कुछ और काम करना । परन्तु मात्र निर्वाह निमित्त ।

2. 'पिछली रात उठके दातन देवे । अर इशनान करके, इक मन होइके बाणी पढे ।'

3. ' कथा दे वेले (समय) सारे साथ इकत्र होवन । मुंज वट्टन वाला मुंज बैठा वटे । अर सीवन वाला बैठा सीवे । अर पढ़ने वाला पढ़े । कथा का समां आले पाले न गुमाए (गंवाए) । कथा सुणन नू बड़ा लाभ जाणे । सुणने वेले सुरत (ध्यान) वक्तां वल्ल(तरफ) रखे । जेहड़ा (जो) वचन न समझावे(समझे) सो पुछ लवए । जिउं जिउं वचन सुणाके समझींदा है (समझा जाता है) तिउं तिउं रस अधक आंवदा है'।

4. 'बहुड़ (फिर) राती कीरतन इकत्र होइके करना । सरबत संगति विच रल मिल बैठना, मानो गुरपुरे (पूरे गुरु) कोल (पास) बैठणा होंदा हैं ।

5. ' देवी संपदा अते आसुरी संपति के लछन (लक्षण) अपने पास लिख रखे । अर देवी संपति की ग्रहण करे । अर आसुरी संपति का तिआग करे । तिस का परमारथ ।सत (सत्य), संतोष, दइआ, धरम, जत, सति, विचार, विराग (वैराग्य) आदिक गुणां की द्रिढ करे । अते काम, क्रोध , लोभ, मोह, अहंकार, इरखा(ईर्ष्या), झगाली (झगड़ा: अरुची) आदिक का तिआग करे । ऐसे जाणे, जो साधां वाला सांति सुख मैनूं (मुझे) तद (तब) प्रापति होवेगा जो आसुरी संपति छोड़ांगा ते देवी संपति पकड़ांगा' ।

6. ' इसत्री की संगति नूं ऐवें जाणे । जो इह मेरे धरम, करम, तन, मन, दे नास करन हारी है । भावें (चाहे) सकी (सगी) माउ (मां) होवे, तां भी भै (भय) करे । इकल्ला (अकेला) इसत्री जामे (शरीर) कोल (पास) कदाचित न बहे (बैठे)'।

7. ' जो कोई किसे टिकाणे (स्थान) ते आइ रले (मिले) साथ बनणे नमित । तब तिस को 'कब टोपी' (संन्यास) न देवे' । इत्यादि ।

इस नियमावलि का आधार है वह सत्साहित्य जिसका पारायण तथा जिसके अनुसार आचरण करना सेवापंथी साधकों का मुख्य उद्देश्य रहा है । इस प्रकार के साहित्य में 'पारस भाग' एक महत्वपूर्ण रचना कही जा सकती है ।

पाद टिप्पणियां

(1 से 40)

1- अष्ट से विकसित। `अट्ठ` (पाली : पंजाबी)

2- सविभक्तिक (अधिकरण) प्रयोग।

3- धर्म-साधना का केन्द्र।

4- संसार। तुलना: `सयंसारु` (मिरगावती : [illegible],
-डा० परमेश्वरी लाल 1/67)
सँपाक (स्वयंपाक) लिंग्विस्टिक पेक्युलिरिटीज़ आफ ज्ञानेश्वरी :
पृष्ठ 21 सी

5- नग्न नांगा

6- मानव-सेवा के अन्तर्गत रोगियों की परिचर्या को भी सेवापंथ में महत्वपूर्ण माना गया है। भाई अड्डण के एक शिष्य `भाई भारा` ने पठान-आक्रमणकारियों द्वारा घायल किए गए लोगों की सेवा-सुश्रूषा बड़े मनोयोग से की। कहा जाता है कि भाई भारा उस समय स्वयं भी भयंकर रूप से घायल थे :-

` अर उठ के होर जखमीआं की टहिल में लागा। किसी को जल दीआ, किसी का फट (पट्टी), बांधिआ। - - जो अपणा सीस वढिआ (कटा) है तां भी कछु नहीं जनाइआ। अर होरनां के दुख को निवरत करत भइआ। होर जो कोई रोगी होवे, जिस की घर मे टहिल न होवे, जो दुखा होवे सभ भाई भारे पास मंजिआं (खाटें) ले आवें। अर सभ की टहिल करे, अर परदेसीआं की भी टहिल करे। ऐसो भाई भारा होइआ है पर उपकारी।` (पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 37)

7- इस सेवा को `परमेसर के सिमरन` का रूप सेवापंथी परम्पराओं में दिया गया है :-

"जैसे शुभ करम हैं सो सभ सिमरन रूप हैं - - एक पुरश पर कारज करते हैं। अर जीवों को प्रसनता लेते हैं - - - एक पुरश अभि आगतों की सेवा पडे करते हैं। एक कथा - कीरतन करते हैं, कोई भी सिमरन पड़े करते हैं। - - - असंश (असंख्य) जो भले सुभाव हैं, जिनकी कछु संखिआ नहीं पाई जाती, सो सभ ही सिमरन रूप हैं।"

(पोथी आसावरीआं : पृष्ठ 56- 57)

भक्ति तथा नाम स्मरण को मानव-सेवा से साथ संबद्ध करने का यह सेवापंथी प्रयास सचमुच अनूठा प्रयास है। अड्डणशाह ने इस सेवाभाव का अद्वैत-दृष्टि के साथ समन्वय इस प्रकार किया है :-

"जिस निरभेद पद पाइआ है तिसदा आपा पर का भेद उठ गइआ है। अर जिसने निरभेद पद नहीं पाइआ उसदी बणदा है जो सभ (समस्त) दी (की) सेवा करे सुआमी जाण कर"। (विवेक सार : पृष्ठ 230)

स्पष्ट है कि अद्वैत-भाव की प्राप्ति से पूर्व साधक के लिए 'सेवाभाव' विहित है।

8- सन्तों और भक्तों की जीवनियां लिखने की एक प्राचीन परम्परा पंजाब में पाई जाती है। भाई मनीसिंह (वीर गति संवत् 1794) कृत भाई गुरुदास (देहान्त 1694 संवत्) की 11वीं 'वार' (छन्द विशेष) की टीका 'भगत रतनावली' (भक्तावली) इस प्रकार की एक प्रामाणिक कृति है। भाई मनीसिंह ने अपनी इस कृति में सिक्ख मत के कुछ प्रधान प्रधान भक्तों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त दिया है।

'संतरतनमाल' के अतिरिक्त कुछ 'परचीआं' तथा कुछ अन्य कृतियां भी सेवापंथी सन्तों का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती हैं।

'परची' संभवत: 'परिचयी' शब्द का विकसित रूप है। 'परचई' 'परिचई' जैसे शब्द इस संबंध में अन्यत्र भी मिले हैं।

9- सोरठा : संतरतनमाल : पृष्ठ 50

10- संतरतनमाल: द्वितीय संस्करण : भूमिका पृष्ठ 1

11- इस उल्लेख से पता चलता है कि सेवापंथी साधुओं की `रहणी-बहणी` (`रहत - नामा`) के रूप में यह रचना लिखी गई है।

12- सेवापंथी अड्डणशाही सभा श्री अमृतसर साहिब द्वारा प्रकाशित : 1950 ई

13- इस रचना के अन्तिम पद में कहा गया है :-

`इत असावरी ग्रंथ को सहज राम कृत मान,

संमत उन्नी से सत माहि दुआदस उपर मान` ।

अर्थात् संवत् 1912 (1855 ई०) इस कृति का रचना काल है। परन्तु किसी अन्य स्वतन्त्र तथा प्रामाणिक साक्ष्य के द्वारा इस कथन की शुद्धता परखी नहीं जा सकती ।

14- `संतरतनमाल`, `पोथी आसावरीआं` के अतिरिक्त कितनी ही मुद्रित तथा हस्तलिखित कृतियां सेवापंथी साधना तथा इस पंथ के संबंध में अनेक अनुश्रुतियां प्रस्तुत करती हैं। निश्चय ही इस उत्तरवर्ती सामग्री को पूरे तौर पर प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । ये कृतियां इस संबंध में उल्लेखनीय हैं।

क- साखीआं अड्डण जी : तीसरा संस्करण

रावलपिंडी संवत् 1907(1851 ई)

ख- साखीआं अड्डणशाह जी (हस्तलिखित)

ग- भक्त महांपुरखां दे

संपादक: गोबिंद सिंह लांबा

प्रथम संस्करण : 1973

15- सेवापंथ की कई `वंशावलियां` इस पंथ के डेरों (अमृतसर, पटियाला, जगाधरी) में पाई जाती हैं। इन `वंशावलियों` से सेवापंथी डेरों के महन्तों तथा प्रमुख प्रमुख साधुओं का विवरण मिल जाता है।

16- सिक्ख-मत में उच्च-आचरण सम्पन्न तथा निष्ठावान भक्तों को 'भाई' की पदवी दी जाती थी। 'कन्हैया' और 'कनैया' दोनों नाम प्रचलित हैं।

17- संतरतनमाल में भाई कन्हैया राम की करुणामयता तथा प्राणीमात्र के प्रति विद्यमान उनके सेवाभाव से संबंधित अनेक प्रसंग दिए गए हैं। निम्नलिखित प्रसंगों से उनके करुणामय व्यक्तित्व की एक झलक मिल सकती है :-

क- 'सु पिशौर अर लाहौर के रसते (रास्ते) में कब्बा नाम नगर था, पहाड़ के ऊपरि। तहां परदेसी को बडा कश्ट होता था जल बिना। एक जोजन (योजन) पैंडा (रास्ता) था। पहाड़ के तले जल। सो तहां धरमसाल पाई भाई कनहये जी ने। अर सौ-डेढ सौ (100-150) घडा जल का भरिआ रहे। तैसीआं ही मंजीआं (चारपाइयां) बनाइआं। अर अठ पहर कीरतन की धुन लगी रही। ऐसे सरब जीवहुं को सुष दीआ तन का। अर अनेक जीवहुं को भगति गिआन दे कर मुकत कीआ। ऐसे मन का सुष दीआ।'

ख- 'जैसा सुवरनु तैसा उस माटी'

इस शीर्षक के अन्तर्गत 'पश्चिम' से आए एक मुगल का प्रसंग 'संतरतनमाल' में दिया गया है। इस प्रसंग में भाई कन्हैया राम की संतवृत्ति, उनका सेवा-भाव, उनकी अपरिग्रह-भावना तथा उनकी नाम-परायणता का चित्र उभरता है :-

'तब इक मुगल पछम ते आइआ। अर संतहुं का दरशन कीआ। जो अठ पहिर साहिब की बंदगी महि रंगे हुए हैं। अर भुषे (भूखे) को भोजन मिलता है। नगन को रैण (रात्रि) महि बस्त्र मिलता है'।

18- संतरतनमाल के अनुसार यह घटना संवत् 1761 की है। पृष्ठ 13

19- संतरतनमाल : पृष्ठ 19

20- 'दखण देस' के इस उल्लेख का पूरा विस्तार न रहने से इसका पूरा विवरण देना संभव नहीं है। कुछ अन्य स्थलों पर 'दखण देस सिकार पुर की

धरता' (संतरत्नमाल : पृष्ठ-5.) आया है। हो सकता है 'दखाण देस' सिन्ध-प्रदेश का सूचक हो।' दखाण देस में तुर्कां की जोत का भी उल्लेख है। (संतरत्नमाल : पृष्ठ 75)

21- 'भाई धनैय्या जी ने आखिआ साधु वासते किसे पासों (किसी से) मंगणा योग नहीं। इक मूंह कर मंगणा है, इक सैनतां (संकेत) कर मंगणा है। सो इह तरह मंगणा विवरजत(विवर्जित) है। जो मंग के लैणा है सो देणा पवेगा'। (संतरत्नमाल : पृष्ठ 24)

इस मर्यादा का पालन इन दोनों गुरु-शिष्यों ने इस प्रकार किया :-

'न मूहों (मुख से) मंगणा, न किसे नूं (को) सैनतां नाल जणावणा, ते जे कोई कहे, प्रशाद(भोजन) छकिआ (खाया) जे ? तां कहिणा, हां छकिआ होइआ है। जे कोई कहे प्रशाद छकोगे ? तां कहिणा, नहीं'।

(वही : पृष्ठ 24)

22- 'भाई गुआल' के संबंध में यह प्रसंग दिया गया है। ये वही 'भगत गुआल' हैं जिनके नाम पर लाहौर में 'गुआल मंडी' बसाई गई थी।

23- संतरत्नमाल : पृष्ठ 424

24- पारसभाग : प्रो० प्रीतम सिंह : पृष्ठ 58

25- संतरत्नमाल : पृष्ठ 63

26- संतरत्नमाल : पृष्ठ 64

27- इन सभी कृतियों के कर्तृत्व पर अभी तक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है। आगे यथावसर इस प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

परन्तु सामान्यतः इन कृतियों के कर्तृत्व का श्रेय अड्डणशाह को दिया जाता है।

28- संतरत्नमाल : पृष्ठ 83

29- वही

30- दैनिक : महानकोश : (पंजाब)

31- प्रश्नोत्तरां (पत्रीआं) भाई कन्हैया जी, प्रश्नोत्तरां भाई सेवाराम जी तथा 'पोथी आसावरीआं' जैसी एकाधिक कृतियां आप की बताई जाती हैं।

देखिए :`अड्डणशाह दीआं साखीआं`
संपादक: गोबिंद सिंह लांबा : पृष्ठ 52

32- संतरत्नमाल : पृष्ठ 33

33- वही। पृष्ठ 33

34- वही। पृष्ठ 46

35- `फक्र`। `ईरानी दरवेशों` की एक विशेष टोपी। `ह्विंफिल्ड` ने `फक्र` या `फुक्र` नाम से इस विशेष टोपी का उल्लेख किया है।
देखिए : सूफी आर्डर्स आफ इस्लाम: पृष्ठ 9

36- सेवाराम के शिष्य `भाई हुधर` अपने को `भाई सेवाराम का जिगिआसी` (जिज्ञासु) कहते और कहलवाते थे। सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार उनके अनुयायी `जिगिआसी` नाम धारण करते हैं :-

`तां भी आप तिनों (तीनों) भाई सेवाराम जी का जगिआसी कहाइआ है। सो अब लग उनकी पधत (पद्धति) पाई चली आवती है सो सभ `जगिआसी` संगिआ (संज्ञा) कउ धारते हैं।` (संतरत्नमाल: पृष्ठ 53)

फलत: सेवापंथी साधकों का एक वर्ग `जगिआसी` नाम से भी प्रसिद्ध रहा है, इस तथ्य का उपलब्धि होती है। शिष्य-भाव के साथ साथ `दासाभाव` तथा `जगिआसी भाव` धारण करने का विधान सेवापंथी साहित्य में स्थान स्थान पर हुआ है।

देखिए : वही : पृष्ठ 64

`साधक` के लिए `जगिआसी` शब्द `पारसभाग` में भी स्थान स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

37- संतरत्नमाल : पृष्ठ 561

38- वही पृष्ठ 561

39- अड्डणशाह दीआं साखीआं : पृष्ठ 102
संपादक: गोबिंद सिंह लांबा

4.- सेवापंथ आजकल एक `रजिस्टर्ड` संस्था के रूप में काम कर रहा है। इस संस्था के ये पदाधिकारी बनाए गए हैं :-

1) पण्डित निरञ्जन सिंह: संतपुरा जगाधरी। ये अड्डणशाही सभा के प्रधान हैं, और पटना में ये सेवापंथी आश्रम को चला रहे हैं।

2) गिआनी कृपाल सिंह: अड्डणशाही सभा के सेक्रेटरी हैं। अमृतसर में `डेरा` चला रहे हैं।

3) महंत हीरा सिंह: शेरांवाला गेट, पटिआला।

4) भाई प्रेम सिंह : पहाड़ गंज, दिल्ली।

5) संत श्री कृष्ण दास जी : भूपत वाला, हरिद्वार।

6) भाई सुन्दर सिंह: माडल टाउन, हुशियारपुर।

7) भाई देस राज जी : सब्जी मंडी, जालंधर।

8) भाई प्रेमसिंह जी : जबलपुर, (सी पी)

इनके अतिरिक्त पंजाब के अनेक स्थानों पर इनके `डेरे` चल रहे हैं। विस्तार के लिए देखिए : `संतरत्नमाल`।

अध्याय-

सेवापंथ : आस्था : विश्वास

1. इष्ट

2. साधना

3. अद्वैत-दृष्टि

4. प्रमुख मान्यताएं

5. दिनचर्या

6. साहित्य-सर्जन

(पाद-टिप्पणियां)

1. इष्ट

गुरु 'बख्शीश' :- सेवा पंथ मूलतः सिक्ख पंथ की ही एक शाखा है। इस पंथ को प्रायः गुरुओं की 'बख्शीश' बताया गया है। सेवापंथ के आदि पुरुष भाई कन्हैया राम को नवम गुरु तेगबहादुर के निकट सम्पर्क में रहने का अवसर मिला[1] था। नवम गुरु के सैन्य-संस्थान से भी भाई कन्हैया राम संबद्ध थे। इतिहासिक दृष्टि से यह समय सिक्ख (शिष्य) भाव से 'खालसा' (योद्धा) रूप में शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित होने का समय था। भक्ति के स्थान पर शक्ति की उपासना उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता बन चुकी थी।

महान् आत्ममेध :- युग की इस आवश्यकता को अनुभव करने वालों में नवम गुरु तेगबहादुर का नाम सर्वोपरि है। अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए अपना बलिदान देने वाले इस युग-पुरुष को दशम गुरु गोबिंद सिंह ने इन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित की है :-

'ठीकर फोरि दिलीस सिर, प्रभु पुरि कियउ पयान,
तेग बहादुर सी क्रिया, करी न किनहु आन'।

नवम गुरु के इस महान् - आत्ममेध के पश्चात् दशम गुरु के नेतृत्व में सिक्ख-मत 'संत-सिपाही' रूप में उभरा और इस रूप का साक्षात्कार सेवापंथ के अड्डणशाह आदि अनेक व्यक्ति कर चुके थे। भाई कन्हैया राम दशम गुरु की सेनाओं के साथ युद्ध-स्थलों पर भी गए थे। फलस्वरूप सेवापंथी साधुओं की दृष्टि, उनकी साधना-पद्धति, उनका रहन-सहन मुख्यतः सिक्ख-मत के अनुकूल रहा है।

नानक : मर्यादा :- वस्तुतः गुरु नानक के पश्चात् पूरे पंजाब का धार्मिक नेतृत्व केवल गुरु नानक की विचार-धारा ही करती आ रही थी। धर्म तथा साधना के नाम पर केवल गुरु नानक

सेवापंथी साधुओं के सामने भी त्याग,

नानक का आदर्श ही एक मात्र आदर्श था । आदिग्रंथ को अपनी एक मात्र धर्म-पुस्तक मानना, सिक्ख गुरुओं के प्रति पूर्ण निष्ठा रखना तथा आदि गुरु गुरुनानक की मर्यादा का पूर्ण पालन करना सेवापंथी साधुओं की एक सर्व-मान्य मर्यादा रही है । इस मर्यादा के प्रमुख अवयव ये हैं :-

<u>गुरुनानक : इष्ट :-</u> सेवापंथ में गुरु नानक उसी पद पर आसीन हैं जो पद उन्हें सिक्ख-परम्पराओं में दिया जाता है । इसके साथ दशम-गुरु के समकालीन अड्डणशाह आदि कितने ही सेवापंथी साधुओं ने दशम-गुरु को भी यथोचित सम्मान दिया । इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त रोचक प्रसंग 'संतरत्नमाल' में दिया गया है । किसी मुसलमान बादशाह के यह पूछने पर कि 'क्या अड्डणशाह गुरु गोबिंद सिंह के 'सिक्ख' हैं '? अड्डणशाह के किसी फकीर मित्र ने कहा, 'नहीं, ये गुरु नानक के सिक्ख हैं '। परन्तु अड्डणशाह ने फकीर की इस बात का बादशाह के सामने ही बड़े तीव्र-स्वर में प्रतिवाद किया :-
'पातशाह आखआ पीर के दीदार को। तब भाई जी की ओर देखिआ । जो केस सिर पर नजर पड़े । तब पातशाह पुछिआ जो यहि 'मरेले'[3] के सिख हैं ? तब पीर आखिआ नहीं, यहि श्री बाबे नानक जी फकीर के सिख हैं । तब भाई जी गरज के बोले, नहीं, हम 'मरेले' श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के सिख हैं '[4]
(संतरत्नमाल पृष्ठ: 116)

बादशाह के चले जाने के पश्चात् पीर ने अड्डणशाह से कहा :-
'यहि मूढ़ अभिमानी लोग हैं । अर गुरु गोबिंदसिंघ जो बादशाह के संग जंग कीए हैं । यां ते तिनके पंथ सों वैर राखते हैं । अर हम इस वास्ते इह बात कही थी, जो बाबे नानक के सिख हैं । जो इह बादशाह सिख केसाधारी देख के जानता है, इह श्री गुरु गोबिंदसिंघ जी के सिख हैं । ऐसे जानके वैर राखता है । अर दुख देता है सिखां को । मत इह भाई होरां को औकल (कष्ट) करे । इस नमित हम कहा जो श्री गुरु बाबा नानक जी के फकीर हैं । तिन के सिख हैं । अर श्री गुरु बाबा नानक जी अर श्री गुरु गोबिंदसिंघ

जी इक रूप हैं। हम तो इह जान के कहि भी तुम भेद किउं कीआ।'

(वही० पृष्ठ : 117)

अड्डणशाह ने इस पर जो स्पष्टीकरण दिया वह ऐतिहासिक है। उन्होंने कहा :- 'बाबा श्री गुरू नानक अर श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी में भेद तो हम नहीं जानते। परन्तु इह जो कहिना था जो श्री बाबे नानक जी के सिख हैं अर 'मरैले' के नहीं तो सरीर के बचावने नमित ऐसा बचन कहिना कब जोग है। छिन-भंगर (क्षण-भंगुर) तुछ सरीर के नमित ऐसे गुरू समरथ को लोप करना महां नीचताई है। अउर सुनो, जेहड़ा (जो) पुरख नदी में प्रवेश ही न करे, वहु तो बसत्र सुके लैके चलिआ जावे, इस में अचरज कोई नहीं। परन्तु सावण की नदी जो वडीआं लहिरां देती है तिस में जो प्रवेश करके सुके बसत्र ले जावे सो वड्डा बहादर कहीता है। तैसे श्री गुरू बाबे नानक जी तो माइआ रूप नदी में प्रवेश ही नहीं किआ। जो चार जोजन माइआ (माया) दूर रखी है अपने ते। अर श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी माइआ में वरते हुए निरलेप हैं। राज, कारखाने, जंग-जुध ग्रिहसतादिक सब करते हुए भी निरलेप रहे हैं। हरख सोग ते रहित होई के विचरे हैं। ऐसे गुरां को लोप करना इह तो महांनीचता है। ऐसे भाई जी बचन वहे तब भीर सुन के कहा जी, जो आप कहिआ है सो सत है इस प्रकार आपस में मेल करके भाई जी अपने डेरे आए'।

(वही० पृष्ठ: 117-118)

(क) पंथ: प्रतिबद्धता :- सेवापंथी साधु 'पंथ' के प्रति- गुरू- परम्परा के प्रति बड़ी निष्ठा से कारण-पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध रहे हैं। कहा जाता है कि कोई अत्याचारी शासक गुरू नानक के पंथ को मिटाना चाहता था और प्रत्येक संभव उपाय से अपने पैशाचिक उद्देश्य को पूरा करने का असफल प्रयास कर रहा था, इस पर अड्डणशाह ने कहा :- 'नीच कछ मारता है। इह सच्चे पुरख का पंथ साजिआ (बनाया) है। कौन है इह कंगाल जो दूर कर सके।'

(वही० पृष्ठ : 118)

इन उल्लेखों से पता चलता है कि सेवापंथी साधु गुरु नानक, दशम-गुरु गोबिंद सिंह तथा उनके पंथ के प्रति पूर्ण रूप से निष्ठावान रहे हैं।

(ख) आदिग्रंथ: धर्मपुस्तक :- पंथ के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता के कारण सेवापंथी परम्पराओं में आदिग्रंथ को धर्मपुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया है। आदिग्रंथ का पाठ, इसकी कथा तथा इसकी वाणी का 'कीरतन' सेवापंथी केन्द्रों में होता रहा है। आदिग्रंथ के अखण्ड-पाठ से सम्बंधित कुछ 'साखीआं' संतरतनमाल में संकलित है। एक रोचक प्रसंग इस प्रकार दिया गया है :-

'एक कोई पुरुष था उह मन में विचार करता रहता। किसी वेले (वेला : समय) भाई साहिब जी एकले अर वेहले (खाली) होवण, तां मैं अपने रिदे (हृदय) की बात खोल सुनावां। पर उसको वेला कोई नजर न आवे। किउं जो आठ पहर कथा व कीरतन व वाणी का पाठ होता रहै। जिस समे (समय) सोवहिं तां भी (भी) पास वाणी का पाठ होता रहे। अर जब बाहिर सौच (शौच) करन को जावहिं तउं भी वाणी का पाठ करने वाला पाठ करता ही नाल(साथ) चलिआ आवे।' (वही० पृष्ठ : 117)

इस पाठ के समय कोई सांसारिक चर्चा सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार नितान्त वर्जित थी :-' एक बेर नूरपुर में गए भाई अड्डण राम जी। अर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के निकट बैठे थे, चौकी में। अर कोई धनी लोक था तिस श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी अग्गे मथा टेकिआ बारांदरी में। अर हेठ के पग (पगड़ी) ते (में से) कोई कागद कढ (निकाल) के चिठी पढने लागा। तब संतहुं देखिआ, जो चिठी वांचता है। तब तूंबी हाथ में पकड़ के टुर चले (चल पड़े) (वही० पृष्ठ 174)

तत्पश्चात् बहुत प्रार्थना करने पर भाई अड्डण राम जी ने स्पष्टीकरण किया :-

'जो भाई, हम इस नगिर इहां ते तुर चले हैं कि जहां माइआ के बिवहार कीआं किरीआं वांकीआं हूईआं, तहां साधां के रहने का आथान (स्थान) तो न हूआ, वहु तो बजार कूतरा होआ। यां ते हम उहां ही रहांगे जहां संतां का निरविशेष (निर्विशेष) आथान होवे'। (वही०)

इसी प्रकार भाई रोची राम जी के विषय में कहा गया है :-
'एक साध भाई रोची राम जी थे, भाई आइआ राम जी के दास। भाईआंन के कोट रहिते थे। पर परम शांति की मूरती। आठ पहर भजन पराइन थे अर जो मिरजादा साध संगति की बडियां (पूर्वजों ने) रखी है कथा कीरतन की, सो तिस मिरजादा में पूरन। दो वेले कथा होवे। अर रात को कीरतन होवे। होर(और) आठ पहिर ही शबद बानी का पाठ करते रहें व करवाते रहें'। (वही० पृष्ठ : 181)

इन उल्लेखों से यही सिद्ध होता है कि 'कीर्तन' सेवा पंथ में साधना का एक अनिवार्य अंग माना गया। वाणी-पाठ के अतिरिक्त 'गुरुमत' की शिक्षा भी सेवापंथी महात्मा देते रहे हैं।

इस प्रकार अपने व्यापक सेवाभाव, अद्भुत त्याग और अपनी कठोर साधना के कारण सेवापंथ पंजाब के जन-मानस पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ गया है।

2. साधना :

क- अखण्ड ब्रह्मचर्य :- सेवापंथी साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य था। फलतः स्त्री-संग-सभी संभावित परिस्थितियों में - अविहित था। स्त्री को कभी 'नदी' तो कभी 'माइआ के पेड़' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सेवापंथी साधु स्त्री की तुलना नदी से इस प्रकार करते हैं :-

'इसत्री रूपी नदी है। तिस महि भोग भोग कर अलेप रहिणा इन संतों भगतों का काम है। अउर उनकी रीस (नकल) करके जो इसत्री भोगेगा, सो जुनीजनमों महि खुआर (ख्वार: खराब) होवेगा। - - - तिआगेगा तब छूटेगा' । (पोथी आसावरीआं : पृष्ठ 66)

एक स्थान पर स्त्री को 'माया का पेड़' कह कर इसका त्याग करने की भी बात कही है :-

'माइआ का पेड़ इसत्री है। अर इसत्री ते जो इतर पदारथ हैं सो माइआ की साखां हैं। जिन पुरखाँ स्त्री रूपी पेड़ का अंगीकार कीआ है साखां सभ भी वे आइआं है।' (वही० पृष्ठ 146)

इसी संदर्भ में आठ प्रकार के 'काम' का विस्तृत विवेचन इस प्रकार किया गया है।

दोहरा -' नारी सिमरन स्रवन पुन, द्रिशट संभाखन होइ'

गुह्ज वारता छाग रत, बहुड़ सपरसे कोइ ।

'पहला' काम' नारी का सिमरन तिआगीऐगा। - - - काहे ते जो मन वाहन है काम देव का। जब मन विखै नारी का सिमरन फुरता है तब सपरस(स्पर्श) भी करता है। - - दूसरा काम इह भी तिआगीऐगा। इसत्रीआं कीआं बातां भी न सुनीऐ। - - -

तीसरा काम इह है जो इसत्री की और द्रिशट पसार भी न देखै। - - -

चउथा 'काम' इसत्रीआं साथ बातां करनीआं भी निंद हैं। - - -

पांचवां 'काम' प्रीतवान इह तिआगै जो इसत्रीआं साथ गुह्ज वारता भी न करै। - - - -

छीवां 'काम' - - जो इसत्री साथ हसणा भी न करे। काहे ते जो इस कउं (जीव को) रोवणा था। हसणा तउं न था। प्रिथमे तउं हसणा निंद है फेर इसत्रीआं साथ मिल कर हसणा महां निंद है। - - -

सतवां 'काम' इसत्रीआं साथ प्रीत करनी महा निंद है। - - -

अठवां काम इस्त्रीआं साथ सपरस करना भी महानिंद है ।[5]

'रुदन' को साधना का अनिवार्य अंग मानना सूफी मत तथा पारस भाग का प्रभाव है । पारसभाग में स्थान स्थान पर रुदन की महिमा पाई जाती है ।

सेवापंथी सन्तों ने नारी के साथ गृहस्थ को भी 'अंधकूप' बताया है :-

'इह ग्रस्त जो है, सो महां 'अंधकूप' है सो कैसा 'अंधकूप' है, चौरासी लख जूनं का कूप है । जो इस कूप महि गिरते हैं, सो महां दुखी होते हैं । ते उनके साथ सहायता भी कोई नहीं करता[6]'।

'ब्रह्मचर्य' की इस अखण्डता ने सेवापंथ को एक मठवासी संप्रदाय का रूप दिया । फलत: इन साधकों ने घर-गृहस्थी का धिक्कार इन शब्दों में किया है :-

'[7]जित ग्रिह नागन नार, बिखधर सुत संतत,
दुहिता डाकिसमान, भ्रांत केहरि जिउं हंतत ।
कूड कुटंब बघिआड (व्याघ्र), मांस भखिबोहि चहै,
मित्र सु सुआरथी, जिउं बग मछुली खाहि ।
भगवंत भजन जनूआं नहीं, निस दिन पर चिंता रहै,
रे नर, निलज्ज, लज्जा नहीं, जो ऐसे घर को घर कहै ।[8]'

ख- भक्ति :- सेवापंथ में - व्यवहार और सिद्धान्त दोनों ही दृष्टियों से - भक्ति एक प्रमुख साधन के रूप में प्रतिष्ठित हुई । वस्तुत: सेवापंथ दया और करुणा जैसी मानवीय भावनाओं पर आधारित था । फलत: सेवापंथ में साधना की दृष्टि से केवल भक्ति ही स्वीकृत हो सकती थी ।

अद्वैत: भक्ति :- अद्वैत[8] मूलक ज्ञान इस भक्ति का सहचर है । इस भक्ति के स्वरूप[9] का पूरा विस्तार भाई सहजराम ने इस सुन्दर रूपक के माध्यम से दिया है :-

'भगत (भक्ति) पारब्रह्म का सुता है। तिस भगत रूपी सुता को संतां साथ विवाहिआ है। नौ निधी (निधि) अठारहि सिधी संतां कौं दाज पाइ मिलीआं हैं। जनेत (बारात) संतों सा जिगिआसी जन हैं। पुरुषा परजतन रूपी जनेत साथ नगारे बाजते हैं। विवेक रूप संतों के सीस ऊपर छतर (छत्र) फूलता है। ब्राहमण भट जगत के लोग राजसी तामसी हैं, सो संतों का सदका (कृपा से) खावते हैं। सहुं मंगलाचार जो जगत महि होता है, सो भी संतों का दिया होता है। जिन संतो ने ब्रह्मानंद अपने हिरदे महि प्रगट कीआ है। तिन संतों का आनंद दीआ जगत महि वरतता है।'[10]

भाई सहज राम ने :

'भगति, भगत, भगवंत, गुर, चतुर नाम वपु एक'

कह कर सेवापंथी साधकों की अद्वैत-दृष्टि का परिचय दिया है।'[11] इसी प्रकार भाई अड्डणशाह ने 'जगत मिथ्यात्व'[12] तथा 'माया की अनिर्वचनीयता'[13] जैसी मान्यताओं की स्थापना की।

इस क्षण-भंगुर शरीर की कीमत पर 'भक्ति' का रत्न पा लेना सेवापंथी साधक की कामना रही है।[14] 'भक्ति' के इस साधन से ही सद्गुरु (प्रभु) की प्राप्ति हो सकती है। इस तथ्य को अनेकशः प्रतिपादित किया गया है। इस कवित्त में भाई सहजराम ने यही बात कही है :-

'बीज बोइ कालर ('बंजर') पै निपजे न धान पान,
मूल खोइ रोवे पुन राज डंड लागई।'
सलिल बिलोए जैसे निकसत नाहीं घ्रित,
मटकी मथनी हूं फोर तोर भागई।
पूतन पै पूत मांगे होत न सपूत कोई,
जिस को परत संसो तिआगे हूं न तिआगई।

बिन गुरदेव आन देव दुखदाइक हैं,

लोक परलोक सोक जाहिं अनरागई ।।"[15]

सेवापंथी साधकों ने प्रेममयी भक्ति को काव्यमय रूप एक 'बहर' (छन्द) में इस प्रकार दिया है :-

'नहि जात पात रीझे,

प्रभ प्रेम भगत सीझे ।

नहि जोबन धनवाने,

प्रभ प्रेम भगत माने ।

इक करम धरम गावें,

इक तीरथ तट जावें ।

प्रभ प्रेम भगत भावे ।

इक जग दान होमं

परवान भगत प्रेमं ।

इक तुषार जलत पीसे,

प्रभ प्रेम भगत दीसे ।

इक कान कउं छिदावें,

इक मूंड कउ मुंडावें ।

इक जटा कउं रखावें,

इक छार कउ लगावें ।

इक घंट कउं बजावें,

इक देवता मनावें ।

इक धाम परस आवें,

इक पाठ पद सुनावें ।

इक माला कर फिरावें,

इक संधिआ संधावें ।

इक बरत नेम नावैं,
इक बाहां ऊभ जावैं ।
इक मोनी कहिलावैं,
इक ग्रेवडे कहावैं ।
इक जागैं इक अरड़ावैं (चीखना),
इक साधन बतलावैं ।
इक क्रिया जोग लावैं ।।[16]

इस 'बहर' का निष्कर्ष (प्रभु और प्रेम का समीकरण) इस प्रकार दिया गया है :-

'प्रभ प्रेम एक रूपा, द्रिस्टांत किआ अनूपा,
दोऊ नैन द्रिस्ट एका, प्रभ प्रेम इउं विवेका ।
दोऊ कान नाद बाजे, प्रभ प्रेम इउं विराजे,
दोऊ नास एक बासं, प्रभ प्रेम इउं निवासं ।
प्रभ प्रेम एकाए[17]' ।

भावनाओं की इतनी मार्मिक तरलता सेवापंथी साधकों की भक्ति में मिलती है । इस 'भक्ति' में विरह की तीव्र अनुभूति, रुदन आदि संचारियों की स्थिति तथा गुरु (प्रभु) दर्शन की तीव्र लालसा कई स्थलों पर अभिव्यक्त हुई है । भाई बुधर के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है :-

'पूरब संसकारों के वासते वैराग आदि' चित में उपजिआ, अर बन में निकस गए । अर परमेशर के बिरहुं कर रुदन करते फिरैं । अर अरदास करैं कि हे पूरन परमेशर । हे अंतर जामी । हे दीन दइआल । हे पतित पावन मैं अनाथ पर क्रिपा कर, जो पूरन पुरख संत तेरे पिआरे परम दइआलु हैन । पर-उपकारी हैन । तिन का दरशन होइ - - - हे स्वामी, मेरे मन की बिरहुं अगनी बुझाइ क्रिपा करके । ऐसे पुकार करता है । अर रोवता फिरता है ।[18]'

गुरु - प्राप्ति के गद्गद क्षणों को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-

'तो जब संतां का दरशन कीआ। तब आइके चरनों में मथा टेकिआ। अर गदगद होइ गइआ। अर परमानंद कउ प्रापति भइआ। अर मन मानिआ गइआ, जो इही हमारे परम गुरु हैं, जिन के दरशन ते शांति प्रापति भई है। तब इन की टहिल में हाजर रहैं।'[19]

ग- 'दासाभाव' :- सेवापंथ में भक्ति का 'दासाभाव' (दास्य-भाव) ही मान्य हुआ। 'सेवा' के साथ 'दासाभाव' का यह संयोग तर्क संगत और स्वाभाविक ही है। इसी 'दासाभाव' को ही 'सेवक-सुभाउ' भी कहा गया है, और इस 'सेवक-सुभाउ' को बढ़ाने के लिए जिज्ञासुओं से कहा गया है :-

'सरबत (सब) साथ सेवक सुभाउ धरीऐ। जब सरबत साथ सेवक सुभाउ होवेगा। तब सरबत की खुशी लेवेगा। जो सरबत की खुशी लेता है तिस के ऊपर परमेशर की खुशी का फल पड़ता है।'[21]

सेवापंथी साधुओं की जीवन गाथाओं में 'दासाभाव' की प्राप्ति का उल्लेख प्रायः मिलता है। भाई सहजराम ने सेवाराम जी का दासभाव ग्रहण किया, यह उल्लेख संतरतनमाल में है।[22] भाई सन्तोखा के शिष्य भाई साहिब राम के सम्बन्ध में कहा गया है :-

'दासभाव जगिआसा (जिज्ञासा) धारी'[23] इसी प्रकार भाई धरमदास के सम्बन्ध में 'दासभाव' का उल्लेख हुआ है :-

'जब भाई आडआ राम जी के 'दासभाव' को धारिआ। तब सरब कल्पना चित ते दूर भईआं।'[24]

भाई सहजराम ने दास्यभाव' की महिमा को इन शब्दों में स्पष्ट किया है :-[25]

'दासां को सरब प्रिसट (सृष्टि) का गुरु बताइआ है अर हंकारीआं (अहंकारीयों) कउं नीच गत दीनी है।'

(घ) 'कीरतन' :- भक्ति विशेषतः दास्यभाव की साधना के लिए 'कीरतन' का विधान सेवापंथ में किया गया। फलतः 'कीरतन' सेवापंथी साधना का प्रमुख घटक बन गया। इस 'कीरतन के साथ सेवापंथी साधकों की अपूर्व निष्ठा और अद्भुत तन्मयता का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। भाई अड्डणशाह के सम्मुख 'कीरतन' करते हुए भाई सहज राम का यह चित्र भाव और मर्यादा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है :-

'बहुर एक समै भाई अड्डण जी शहुदरे थे अर भाई सहज राम जी 'कीरतन' बैठे करते थे सनमुख भाई जी के। अर अढाई सै (सौ) साध भाई अड्डण जी पास रहते थे, पर मानो मानसरोवर में हंस इकत्र भए हैं। केते ततवेते (तत्व वेत्ता) हैं, केते मशांखी, जपी, जपी, जगिआसी हैं सो सभ 'कीरतन' सुनते हैं समाधि पराइण जैसे जोगी बैठते हैं तैसे 'कीरतन सुन रहे हैं इकागर (एकाग्र) हुए हुए' (संतरतनमाल: पृष्ठ 29)

(ङ) अपरिग्रह: - सेवापंथी साधक के लिए प्रत्येक भौतिक पदार्थ का त्याग विहित बताया गया है। संचय के स्थान पर दान तथा ग्रहण के स्थान पर अपरिग्रह सेवापंथी साधना का प्रमुख अंग माना गया है। अपरिग्रह की इस भावना को एक 'रेखता' में इस प्रकार रूपायित किया गया है :-

'हमन हैं इशक के माते,
हमन कौं दौलतां किआ रे।
नहीं कुछ माल की परवाह,
किसी की मिन्नतां किआ रे।
जो कोउ शबद सिखावै है
तिनां कोउ बालक माने है।

हम आशक दीवाने हैं
हमन को इज्जतां किआ रे ।

< < <

हमन सिर पर जो टोपी बस,
नलिशतां भर लंगोटी बस ।
हमन को टूक रोटी बस,
जिआदा निआमतां किआ रे ।
कोओ हम दरद कउं जाणा,
लीआ है काम का बाणा ।
मुनी दिल शौंक बहु माणा,
सिआनप अकलतां किआ रे ।

< < <

जगत सभ नाम अपने कों,
किआ कुछ करम करता है
हमन गुम नाम आत्म
हमन कों नाम-वरीआं किआ ।
(पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 64-67)

अपरिग्रह और त्याग के इस भाव (अभिमान) का भी त्याग करने का उपदेश भाई कृष्णशाह ने दिया है :- `तुम किआ गरब करते हो । कछु होआ ही नहीं जात । तो तुम तिआग किआ ( क्या) कीआ है ? गुन त्रिआना है जल को देख के कौन अंग त्यागता भए और कौन अंग ग्रहन करता है ?`
(संतरतनमाल: पृष्ठ 109-10)

भाई सहज राम ने `सहज भाव` से `त्याग` के स्थूल रूप के स्थान पर इस तात्विक `त्याग` का विधान किया है :-

'सभनां इंद्रीआं का आपो अपना तिआग है। मन का तिआग इह है जो दुरीआं वासना तिआग करै। नैत्रों का तिआग इह है, जो पर इसत्री की ओर न देखै। स्रवनों का तिआग इह है जो पर निंदिआ ना सुनहिं। - - - जो परमेशर की प्रीत हिरदे महि राखते हैं, सो अपनीआं इंद्रीआं पासों इस प्रकार तिआग करवाते हैं।' (पोथी आसावरीआं : पृष्ठ 306)

(ख) अतीतभाव :- सेवापंथी साधना का चरम लक्ष्य है 'अतीत भाव' की प्राप्ति। 'अतीत' शब्द की व्याख्या करते हुए भाई सहज राम ने कहा :- 'जो जीवत म्रितक (मृतक) हुआ है। मन का धरम 'अतीत' महि खोजा न पाइआ जावै। काम क्रोध लोभ मोह अहंकार न फुरै। शब्द सपरश (स्पर्श) रूप रस गंध न फुरै। जीवणा म्रित (मृत) समान देखै। मान अपमान समान होइ जावहिं। सो अतीत परमेशर का पिआरा है'

श्लोक -

' मिरतक(मृतक) विरकत(विरक्त) एक हैं भाई,
उस कफन उस काफनी पाई।
उह न बोले, उह सुंन (शून्य) धिआनी,
उह उदिआन (उद्यान) उह मढ़ी मसानी (श्मशान)'।

इस 'अतीत' भाव को एक 'आसावरी' में इस प्रकार शब्दबद्ध किया गया है :-

आसावरी -

'कनक कामनी हेत तिआगी,
हरि का होइआ पिआसी।
संतहुं की संगत मिलि बैसे,
जग सिउं (से) रहे उदासी।

जिन भगवान ज्ञान जो दासे,
सम जिउं होइ निरासी ।
इह अतीत दुरलभ जग 'सेवा'
पाइआ प्रभ अबिनासी' (पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 93)

3. अद्वैत-दृष्टि

सेवापंथी साधना और दृष्टि का मूल आधार है 'अद्वैत'। 'अद्वैत - दृष्टि' का पूरा विस्तार - विचार और व्यवहार दोनों स्तरों पर - सेवापंथी साहित्य और जीवन-चर्या में कहीं भी देखा जा सकता है। संभवत: 'अद्वैत- दृष्टि' से संकेत पाकर अड्डणशाह ने 'अद्वैत' की दार्शनिक प्रक्रिया को स्थान स्थान पर पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। 'विवेकसार' का यह अवतरण अद्वैत-दृष्टि का पर्याप्त तथा प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है :-

'<u>प्रश्न</u> - 'वेदान्ती जो सरब ब्रह्म कहिंदे हन, अते दिखाई नानत (नानात्व) अर विभरम (विभ्रम) दे नजर कुझ (कुछ) नहीं आवदा, किस प्रकार है'?

'<u>उत्तर</u> - 'सभो ब्रह्म इस प्रकार है। जिवें (जैसे) जो कहिए फलाने (अमुक) लशकरी (सेनापति) नाल (साथ) लख (लाख) लशकरां (सैनिक) दे हन। पर जंग वाले कई थोड़े हुंदे हन। बाकी होर (और) 'भठीर' (भट्ठी पर काम करने वाले)' घाही' (घास काटने वाले) 'चढोए (घुड़सवार) मोदी अते(और) बपारी (व्यापारी) बहुं होर भी काल्ला, लोड़ीद मूजब(आवश्यकता अनुसार) आदमीआं दा होंदा है। पर मूजब नाउं दे सभे लशकर कहींदा है'।

<u>इन्द्रियां : आत्मा :</u> - 'जिवें बिना चेतन दे अखीं (आंखें) कन (कान) जबान (जिह्वा) होर वी इन्द्रियां किसे कम (काम) नूं नहीं कर सकदीआं (सकती)।'

स्वर्ण : आभूषण :- 'इवें (इसी प्रकार) जाणीए जो जेहड़ी चीज़ अपने सिर कुझ न होवे । नाउं (नाम) उसदा (उसका) अते (और) मुल(मूल्य) उसदा कुझ नहीं पाउंदा, जिवें जो स्वरण (स्वर्ण) दा गहणा होवे, मुल उसदा मूजब सोने दे पाउंदा है । गहिणे दा मुल कुझ नहीं पाउंदा । इसे वासते कहिआ है जो सभ ब्रह्म है, अर्थात चेतना इक है ।'

बीज : फल-फूल :- जिवें सिफत (यश) बीज नूं देवणी जो सभो फल अते द्रखत (पेड़) इसी बीज है सो परवान है :-

'सभ देखीऐ अनभै का दाता ।
घट घट पूरन है अलपाता ।।'

सो विच इस कहिणे दे सेवक स्वामी भी बहरहाल रहिआ ।'

इन प्रसिद्ध दृष्टान्तों के आधार पर सेवापंथी विचारकों ने अद्वैत दृष्टि का विस्तार प्रस्तुत किया है । 'ब्रह्म' सम्बन्धी चिन्तन के प्रमुख पक्ष ये हैं :-

सर्व-ब्रह्म :- 'जिवें वशिश्ट जी कहा है, जो हे राम जी । मैं भी ब्रह्म हूं, अर तूं भी ब्रह्म है, अर इह जगत भी ब्रह्म है । इसे विधूं मालूम (मालूम : प्रतीत) होइआ जो देखावणे (दिखावने) वाला अर देखणे वाला, अर जिस नूं वेखिआ (देखा) तीनों काइम (कायम) अते सरब ब्रह्म भाव' ।

'अर इहु जो वशिश्ट जी कहा है, हे राम जी, तूं भी अकाश (आकाश) रूप ही हैं, अर मैं भी अकाश रूप हां , अर इह जगत भी अकाश- रूप है । सो इस वासते जो ब्रह्म कुझ होर भी होर कदाचित नहीं हुआ, जिउं का तिउं है । कुझ प्रणमिआ (परिणाम) नहीं ।'

ब्रह्म 'कारण' :- 'जिउं जो ब्रह्म विचो न समवाए (समवाय) कारण है न निमित कारण (निमित्त) है । समवाई कारण तां होंदा जो ब्रह्म उस पद थीं

किसे अउर पद ते आंदा, अरथात (अर्थात्) किछ प्रणाम(परिणाम) परंदा (पड़ता) । जिवें नीने धों गांणो । अर नमित कारण भी नहीं । जो बिना ब्रह्म ते काई वसत (वस्तु) सत(सत्य) है नहीं । जिसदा नमित कारन(कारण) कहाए ? जिवें सोना अते सुनारा(सुनार) इसी वासते कहा है`।

जगत : अध्यास :- `सदा ब्रह्म विषै जगत आभास मात्र है कछु हुआ नहीं । न मनिंद (मनिंद:समान)दीपक दी, न मनिंद सूरज दी ।न मनिंद टिकाणे दी है, अर मन रूपी सिलपी (शिल्पी) अकाश विषे (में) पुतलीआं कलपना (कल्पना करता) है पै आगे ते कछ हुआ नहीं`।

इस अवतरण में आए सभी प्रमाण और निर्दशन अद्वैत-दर्शन की प्रामाणिक कृतियों से लिए गए हैं। फलस्वरूप इस चिन्तन में पर्याप्त सारवता विद्यमान है।

स्पष्ट है कि सेवापंथ की प्रमुख कृतियों का मूल-स्वर अद्वैत परक है और व्यवहार में इस अद्वैत की पूर्ण प्रतिष्ठा सेवापंथ का लक्ष्य है।

4. प्रमुख मान्यताएं

भेख-व्यर्थता: `भेख` के प्रति सेवापंथी महात्मा उपेक्षा ही दिखाते रहे। इस सम्बन्ध में यह `बचन` पूरी स्थिति स्पष्ट कर देता है :-

`किसी साध से किसी मानुख ने आइ कहिआ जो हे साध जी, मैनूं भी अपना `भेख` देए तां आगे साध कहिआ जो हे भाई तूं हमारा `भेख` मत धार ( धारण कर)। हमारी सिखिआ धार। काहे ते जो `भेख` धारे ते कोई भुख (भूख) तिखा ( तृषा ) नहीं दूर होणी, कोई उसन (उष्ण) सीत(शीत) नहीं दूर होणी ।`भेख` काहे को धारता है। सुण

पिआरे, जो इह 'भेख' तैं (तुम) धारना जो किसी का बचन दुबचन सहारना (सहन करना) आप मिठ्ठा बोलणा और का कौड़ा(कटु वचन)सहारना, एही 'भेख' धारना । जैसे सेख फरीद (शेख फरीद) महां पुरख का 'बचन' है :-

'मिठा बोलण निव चलण हथहु भी कुछ दे,
रब तिनां दी बुकली जंगल किउं ढूंढे ।
27 28

अर्थात् मधुर वचन, विनम्र जीवन, दान परायणता सम्पन्न जो पुरुष हैं, रब (प्रभु) उनके भीतर निवास करता है । जंगल में क्यों ढूंढते हो ?

इसी प्रकार 'पोथी आसावरीआं' में भी 'भेखधारी' प्रभु के 'बिरद को लजाते हैं', कहा गया है :- ' परमेशर कहता है रे भेखधारी । तैं मेरा अतीत फकीर कहाइआ । तूं ऐसे नीचों का मुहताज किउं जाइ हूआ । उनके पास जो धन संपता थी, सो भी मेरी दई हूई थी । अर सदा बेनतीआं (प्रार्थना) करके मैरे हो पासों पदारथ मांगते हैं । मुहताजों के आगे मुहताज जाइ होवणा, एह तुमारी परम भुल है । इस कर तैं मेरा बिरद लजाइआ है ।'

(पोथी आसावरीआं : पृष्ठ 7)

एक स्थान पर भाई सहज राम ने 'अतीत' या फकीर का भेष धारण करना व्यर्थ बताया है :- 'साई' दा (का) अतीत फकीर कहावणा भी सउखा (सरल) ते(और) लोकां थीं पुजावणा भी सउखा है, ते बहुत 'भेख' बनावणे भी सउखे हैं । पर साई' दा होवणा अउखा (कठिन) है'।

(पोथी आसावरीआं: पृष्ठ ५५)

नवम-गुरु की साखी का प्रमाण देकर भाई सहजराम कहते है :- 'जउं (जब तक) जीवता म्रितक(मृतक) नहीं भइआ । तब अतीतहुं का 'भेख' काहे कउं धारिआ है ? 'भेख' म्रितक का पहिरिआ है ते मन कउं जीवता राखिआ है ।

तां ते तुमारी 'भेख' की फकीरी है। जो 'भेख' की फकीरी पुजावणी ही के नमित है। परमेशर ते पाइबे कउं नहीं'। (पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 100)

भाई सेवाराम ने 'संतरतनमाल' में एक स्थान पर भाई सन्तोखा को 'भेख' की व्यर्थता प्रकट करते हुए 'भेख' को 'तूड़ी' (भूसा) के समान बताया है। इसी प्रकार भाई बुधर जी को भी उन्होंने यही बात कही थी :- 'सुनहो भैया गुर सिखी तो भावना की है ? अर बाहर के 'भेखहु' करके कछु हाथ नहीं आवता।' (संतरतनमाल: पृष्ठ 53)

<u>(ख) जाति-पांति: विरोध</u> :- सेवापंथी साधकों ने गुरु नानक की परम्परा में जाति-पांति का सर्वत्र विरोध किया है। इस प्रकार जातिगत कृत्रिम भेद-भाव को दूर कर अभेद की प्रतिष्ठा की गई और अद्वैत-दृष्टि को जीवन में चरितार्थ किया गया है। अद्वैत-दृष्टि के आधार पर 'जाति' भावना का खण्डन अड्डणशाह ने इस प्रकार किया है :- 'सरब दै अंतर (भीतर) आतमा अंतरगत है। होर भाउ इकांत दा इह जाणीए जो चार बरन आपस विच भिंन भिंन हैन। जिथे भिंनता द्रिशटि, बरन आदिकां दी उठ गई। एकता मनुख बरन बरन दी प्रगटि हो आई, तिउं ही चेतन भाउ करि एकता प्रमाणीक जाणीए'।

इसी प्रकार भाई साहिब सिंह ने 'जाति' अभिमान को 'गधे की झूल' (सर्दी में गधे के उपर डालने वाला एक मोटा कपड़ा) के बराबर भी नहीं समझा। उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से कहा :- 'एक बेर सीत काल (शीतकाल) के समे में नोइआ पड़ा था। तउ मुझे सीउ (शीत) बहुत आइ लागा। काहे ते बसत्र ऊपर अलप था। तब मैंने कहा अरे सीउ मेरे निकट मत आओ। किउंकि मेरी ऊंची जात 'खाहरी खत्री' है। तब सीउ ने कुछ भी हमारी जात का अदब न किआ। अर मुझे लिपटाइ गइआ। तब मैं ने कहा अरे सीउ, मेरे सहुरे (सुसराल) बडी ऊंची जात 'बदाई घरे' (ऊंचे खत्री) हैं तिन की दुहाई है तुझे जो मुझे तिआग देहि। तब भी सीउ ने कछु न माना, तब मैं उठिआ

जो कोई बस्त्र उपर लेवीए, पर उस समै बस्त्र निकट कोई न था। अर भाते (गधे) के ऊपर पावणी वाला क्पड़ पड़ा था। तब मैं ने ऊपर ओढ़ लीआ। तब सीअ ततकाल ही नस(भाग) गइआ। तब मैंने बीचारिआ जो संसारी जीव बड़े मूढ़ हैं। जो जाति पाति का अभिमान करते हैं। यहि तो ऐसे तुछ हैं जो गधे की 'कुल' के तुल भी नहीं।' (संतरत्नमाल : पृष्ठ 58-59)

ग- तीर्थाटन : विरोध :- भेख तथा जाति-पांति विरोध के अतिरिक्त 'तीर्थाटन' की रूढ़ि का भी विरोध सेवापंथी साधकों ने किया। एक साधु ने 'तीर्थाटन' का विरोध इस प्रकार किया :- 'तीरथ उपर न्हावने की वासना इस प्रकार भोटी (खोटी) है, जो जब तेरा रिदा शुध है तब सभ अस्थान (स्थान) तो को (तेरे लिए) तीरथ हैं। अर जो रिदा (हृदय) तेरा शुध नहीं तो तीरथ उपर रहिणे का तुझ कों क्या विशेषता होवेगी। संत जो होता है सो रिदे शुध करके होता है। तीर्थों पर बसणे करके तो शुध नहीं होता'।
(पोथी आसावरीआं पृष्ठ 309-10)

इस प्रकार देवी-देवताओं की पूजा आदि का भी निषेध सेवापंथी साधकों के लिए किया गया है।

5. दिनचर्या

भाई अड्डणशाह ने सभी मानवीय कर्मों के संबंध में यह महत्वपूर्ण 'बचन' कहा है :- 'अर करम दो प्रकार के हैनि। एक असथूल (स्थूल) इशनान (स्नान) आदिक। सो इहु करम किउं करि बणादे हैनि, जो भगवंत अरपण (अर्पण) करिअनि। सभे अपणी अपणी ही अरथ हैनि। दूसरा सम, दम, आदिक शांतकी (सात्विक) करम जो रिदे नूं उज्जलतादाइक। सो भी अपणी अरथ होइ।

. . . अर जथारथ विषै आपणा आप इसदा भगवंत ही है'

(संतरतनमाल)

सेवापंथी साधकों ने इस वचन को आधार बना कर इस विशिष्ट दिनचर्या का विधान किया है :-

<u>क- 'किरत': वृत्ति :</u> - 'किरत' (कृत्य) सिक्खी -'रहत' (आचार-व्यवस्था) का प्रमुख घटक तत्व है। कमा कर -' दस नाखूनों की कमाई कर' - सात्विक जीवन-यापन करना इस 'किरत' का लक्ष्य है :-

'जिउ गोड़उ तिउ तुम सुख पावहु
किरति न मेटिआ जाइ' (रागु बसंतु : म: 1)

इत्यादि वचनों द्वारा गुरु नानक ने भी अपने अनुयायियों के लिए 'किरत' का विधान नियत रूप से किया।

सेवापंथ में इस 'किरत' को विशेष महत्व मिला है। 'किरत' शब्द 'कृत' का विकसित रूप है और इसका अर्थ-विस्तार हुआ है कर्मठ जीवन के रूप में। फलत: सेवापंथ में कोरे ज्ञान-ध्यान की अपेक्षा अपने दैनिक कर्तव्यों को पूर्ण करते हुए विहित कर्मों से जीविकोपार्जन करने पर अधिक बल दिया गया है।

सेवापंथ में इस 'किरत' को विरक्त साधुओं के लिए भी अड्डणशाह ने अनिवार्य बना दिया। विरक्त साधुओं के लिए मुंज कूट कर रस्सी बनाना और रस्सी बेच कर जीवन-यापन के लिए न्यूनतम धनराशि प्राप्त करने का विधान अड्डणशाह ने किया। मुंज कूटने जैसे कठोर श्रम से जीविकोपार्जन का विधान साधुओं कर्मठता की पराकाष्ठा है। संतरतन माल में मुंज कूटने, रस्सी बटने और इन कार्यों से प्राप्त धनराशि आदि के सम्बन्ध में कई रोचक घटनाएं मिलती हैं। एक घटना इस प्रकार दी गई है :- 'तब भाई भला राम जी वचन कीआ

जो किरत आपणा आपणी भिंन भिंन करो । पर पांच रुपईआं मूंक अर पांच रुपईआं के दाणी । इतनी पूंजी[31] रखणा अर किरत भी धुधा करनी । निक्की[32] रस्सी न होइ । मूंक मोटी न कुट्टणी । ऐसे भाई अड्डण साहिब की आगिआ है । - - - जो भाई जी सभ की रस्सी को देखण जावें, कबी कबा । जिसकी रस्सी देखहिं जो निक्की है, कै कच्ची है, तब तिस कै लहुदे ले के अग्न मैं जलाइ देवें ।' (संतरतनमाल, पृष्ठ 304)

निष्किंचनता, अपरिग्रह के साथ साथ जीविकोपार्जन और वह भी इतने घोर परिश्रम और पवित्र-भाव से सेवापंथी साधुओं का दैनिक कर्तव्य माना गया है । अड्डणशाह ने अपने शिष्यों को कहा था कि जब लाहौर के बाजार में रस्सी बेचने जाओ :-' तब एक कागज के पुरजे पर रस्सी का मोल लिख छडणा । जो कोई पूछे जे इस रस्सी का की मोल लेवहुगे तब वह पुरजा जो रस्सी के साथ ही बांधिआ होवे सो दिखाइ छडणा । जे वहु मोल धर देवे तुमारे आगै तब तुम रस्सी दे देणा । लोकां का निआई झूठ नहीं बोलना, जो कहणा होर(और) चीज का मोल, अर लैणा होर । अर लोकां साथ भी सिर खपावना न पड़े । ऐसे अमोलक स्वास प्रमेशर जी ने दीए हैं सो बिअरथ बकवाद मैं गवावने नहीं । या ते कागज का पुरजा दिखाइ छडिआ, जो अग्गे ते मोल धर देवें तब रस्सी धर दीनी, नहीं तो चलिआ गिआ ।'

(संतरतनमाल पृष्ठ 73)

'फिक्स्ड प्राइस' और 'प्राइस टैग' की यह व्यवस्था कितनी रोचक है ।

डा० बलबीर सिंघ ने लिखा है कि जो साधु 'मूंक कूटना' आदि कठोर परिश्रम नहीं कर सकते थे उनके लिए सरल कार्यों, जैसे स्याही बनाना, पुस्तकों की प्रतिलिपि तैयार करना आदि, से भी जीविकोपार्जन का विधान था ।[33] वास्तव में 'किरत' सेवापंथ का सब से प्रमुख नियम है ।निस्स्वार्थ-भाव

से प्राणिमात्र की सेवा, निष्काम-भक्ति, पूजा और उपासना से भी पहले 'विरत' को स्थान दिया गया है। यही सेवापंथ की सब से बड़ी विशेषता है।

निष्कर्ष यह कि सेवापंथ के प्रवर्तकों ने अपने अनुयायियों की मानसिक शुद्धि के लिए गुरु ग्रन्थ साहिब के अतिरिक्त पारस भाग, मसनवी-मौलाना रूमी और योग वासिष्ठ का पारायण, कायिक शुद्धि के लिए निस्स्वार्थ सेवा और वाचिक शुद्धि के लिए नाम-संकीर्तन की व्यवस्था के साथ साथ कमा कर खाने पर बहुत बल दिया है। संभवतः भारत के साधु समाज में सेवापंथ ही साधुओं का ऐसा संगठन है जिस में गृहस्थ जीवन को न अपनाते हुए भी कमा कर खाना अनिवार्य माना गया है।

(ख) कथा :- सेवापंथी डेरों में 'कथा' सुनने सुनाने की भी एक महान परम्परा रही है। 'कथा' 'आदिग्रंथ' के अतिरिक्त 'पारसभाग' 'योगवाशिष्ठ' तथा मौलाना रूमी कृत 'मसनवी' की भी होती थी। कथा के लिए इतना व्यापक क्षेत्र चुन कर सेवापंथी साधुओं ने अपनी उदारता तथा गुण ग्राहिता का परिचय दिया है। 'पारसभाग' की कथा के सम्बन्ध में ये उल्लेख महत्वपूर्ण हैं:-

1) 'जो साधां का संकल्प होवै, सोई कथा करावहिं, नहिं तां सरबदा काल (सदैव) 'पारस भाग' की कथा होवै' (संतरत्नमाल: पृष्ठ 300)

2) 'गाढू एक साध अर दूसरा भाई मंगू जी। एह दोनों फारसी पढ़े हुए थे अर भाई अड्डण जी पास रहिते थे। सो कथा सुनावैं 'पारस भाग' की अर 'मसनवी' की।' (वही० पृष्ठ 293)

3) 'एक समैं श्री गुरु साहिब जी 'कपड़ाल' थे अर भाई कहू जी साहिबां के चरनां पास बैठे हैं ते 'पारसभाग' की कथा साध बैठा पढ़ता था'। (वही० पृष्ठ 304)

इसी प्रकार `योगवासिष्ठ` की कथा के संबंध में भी ये `वचन` उल्लेखनीय हैं :-

क) `एक दिन भाई बसती राम जी शाहपुर बैठे हैं अर कथा `वशिशट` जी की होती परी है` (वही० पृष्ठ 377)

ख) `पोथी दा वेला था सो भाई हजारी राम जी, आइके `वशिशट` जी की पोथी खोल्ह के पढ़ण लागे` (वही० पृष्ठ 372)

ग) `भाई बालक राम जी प्रमारथ के चिंतन में ऐसे सुचेत रहिते थे जो बैठे धिआइ `वशिशट` जी के मुखागर पाठ करते जावहिं `(वही० पृष्ठ 380)

योगवासिष्ठ की कथा विशेषत: इस कथा की वैराग्य भावना का श्रोताओं पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ता था। योगवासिष्ठ की कथा के अनेक प्रसंग संतरत्नमाल तथा दूसरी सेवापंथी कृतियों में उल्लिखित हुए हैं। इन प्रसंगों में कथा का सात्विक वातावरण, श्रोताओं की तन्मयता तथा श्रद्धा का एक जीवंत चित्र उभरता है :- ` कथा का समा है। सभ साध संगत इकत्र हुई बैठी है। जैसे ब्रह्मा जी की सभा में रिशी ( ऋषि) मुनि सोभा पावते हैं। तैसे साधुवां का समा लागी हुई है` (वही० पृष्ठ 101)

इसी प्रकार योगवासिष्ठ की इस कथा के संबंध में एक वैराग्यवान धनाढ्य श्रोता का यह कथन उल्लेखनीय है :- `इह कथा का रस बनिआ हूआ है। सु मानो वशिशट अर श्री राम जी का संबाद है। सो सभ संत बशिशट आदिक मानो परतख ( प्रत्यक्ष) सों बैठे हैं। श्री राम चंद जी सनमुख बैठे हैं। इहां भाई साहिब जी सभ संत मंडली संजुगत बैठे हैं। ऐसा समागम फेर कब बनना है।` (वही० पृष्ठ 102)

संतरत्नमाल के अनुसार `पारसभाग` और `मसनवी` जैसे फारसी ग्रंथों की कथा पाखण्डी पण्डितों (ब्राह्मणों) को दूर रखने के लिए की जाती थी :- ` हम ऐसे राखे (रक्षक) ड्रेउढ़ी में बैठाए हूए हैं। पंडतां(पण्डितों)

वासते 'पारस भाग' अर 'मसनवी' किताब की कथा करावते हैं। जो कलिगी (कंठी) जो इह भेख भाखिआ (भाखा) पढ़ते हैं। इस ते इह भी नहीं आवते। अर वैश्नों करमकांडीआं वासते है इह कि 'बोकी' (चमड़े का डोल) कूंए पर रखी होई है। इन्हीआं बातां को देखके जिसको गिलान (ग्लानि) न आवेगी, सो सच्ची प्रीत वाला अंदर आवेगा'। (वही० पृष्ठ 100)

स्पष्ट है कि सेवापंथी साधु सात्विक-वृत्ति सम्पन्न तथा भगवद्-भक्त होते हुए भी सामाजिक कुरीतियों से अनभिज्ञ नहीं था। फलतः कथा के माध्यम से समाज में बद्धमूल धारणाओं का निराकरण भी किया जाता था।

(ग) सात्विक भोजन :- 'किरत' से उपार्जित धन से केवल सात्विक भोजन प्राप्त करने का विधान सेवापंथ में है। भोजन के सम्बन्ध में सेवापंथी साधकों ने कुछ विशेष मर्यादाएं स्थापित कीं। इन मर्यादाओं में जहां मिताहार ही विहित था वहां स्थूल आहार की अपेक्षा 'खुधिआ' (क्षुधा) रूपी 'अहार' को अधिक महत्त्व दिया गया। भाई सहज राम ने एक स्थान पर लिखा है :- 'खुधिआ उत्तम अहार है, पर इसको उत्तम जन अंगीकार करते हैं। - - - काहे ते। जो सरीर कीआं नाड़ीआं, ते मन का सनबंध (संबंध) एको है। जब सरीर कों त्रिपत (तृप्त) होइ कर भोजन करावता है, तब मन बली हो जाता है, ते विकारों कों चितवता है। - - - मन खुधिआ करके मांदा पड़ता है। इसी नमित प्रीतवान प्रसन्न होइ कर खुधिआ राखते हैं'। (पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 316)

ये सेवापंथी साधु मांस भक्षण 'महांनिंद' कार्य मानते थे :- 'मंस जीवों का बको थीं आदि लेकर, एह भी प्रीतवान को महां निंद है'। (वही० पृष्ठ 120)

इसी प्रकार एक और 'बचन' में कहा गया है :- 'मंस खावण वालिआं साथ परमेशर ऐसा निआउ करेगा। जो हे मानुखो, मंस खावण वालिओ, चउरासी लख जूंन जो है सो मैं प्रजा बनाई थी ते तुम कउं चउरासी

लख जून जो है सो मैं प्रजा बनाई थी ते तुम कउं चउरासी का पातशाह बनाइआ था । - - - बछ्छु बकरी ते आदि लैकर जेते पशु हैं, तम हीं तुम कउं महां गरीब होइ मिले थे । मुख में घास पाइ मिले थे । अर गल में गलांवां (बंधन) पाइ मिले थे । - - - सो तैंने सरब (सर्व) प्रकार निरलज्ज होइ कर, अर निरभै होइ कर, मेरे जीवों की हिंसा कीनी । अर अपनी जिह्वा के लोभ करके इन का हत (हत्या) कीना । सो तैंने वडा अनिआउ कीआ है । सो इस अनिआउ के बदले तुम कौं नरक भुंचावता (`भुगु` । भुगवाता) हौं ।(वही० पृष्ठ 282)

अन्त में `आदिग्रंथ` की ये पंक्तियां उद्धृत की गई हैं :-

`ब्राह्मण होइ पशु को घाइ, खून करे गृह मारी,
रसना कारण काया बिगाड़े, ते नर नरके जाइ ।
बाढ टूक के रंधिन लागा, फेरन लागा डोई,
जिस मड़ह (मृतक) होते अनन खाते, सो मड़ह पाइ रसोई` ।

भोजन के संबंध में भाई अड्डणशाह का स्पष्टीकरण उल्लेखनीय है :-
`जेहड़ा अहार परसंनता विचों प्रापत थीवे[34] ते धरम किरत दा होवे । शुध अहार साडे (हमारे) मन विचों मैलां कटदा है ते यथारथ गिआन दी प्रापती करदा है ।[35]

इस सात्विक भोजन की भी सेवापंथ में एक विशिष्ट मर्यादा थी । `लूड़ीं द मूजब` (आवश्यकता अनुसार) इस भोजन की मर्यादा थी । तामसी भोजन के साथ राजसी भोजन भी अविहित माना जाता था ।

भोजन-सम्बंधी मर्यादा का पालन सेवाराम आदि साधक जीवन भर करते रहे ।

<u>(घ) पशु-पक्षी: परिचर्या</u> :- `दरदवंद दरवेश है बेदरद कसाई`

मानव सेवा के अतिरिक्त पशु-पक्षियों की सेवा परिचर्या भी सेवापंथी साधुओं का कर्तव्य बताया गया है । सेवाभाव और अद्वैत-दृष्टि के समन्वय से ही संभवतः

सेवापंथी साधना में मानव-सेवा के साथ साथ जीव-दया और जीव-परिचर्या की परम्परा प्रतिष्ठित हुई ।

भाई तीरथ सिंह के बारे में प्रसिद्ध है कि कुत्तों और पक्षियों की रक्षा और उनकी सेवा वे बड़ी तत्परता से करते थे ।[36] पक्षियों के बच्चे जो घोंसलों से गिर पड़ते थे उनकी 'टहिल' (सेवा) करते थे ।

अड्डणशाह के शिष्य भाई रंग जी पशु-पक्षियों की रक्षा बड़े प्रयत्न से करते थे ।[37] इसी विषय में भाई दु:ख भंजन की अनेक रोचक घटनाएं प्रसिद्ध हैं ।[38]

6. साहित्य-सर्जन

सेवापंथियों के डेरे अविभाजित पंजाब में विद्या के केन्द्र थे । पढ़ना पढ़ाना, ग्रंथ लिखना एवं कथा, वार्ता, प्रवचन आदि कार्यक्रम इन डेरों में शताब्दियों से चलता आ रहा था । इस अध्ययन-अध्यापन का मूल उद्देश्य वैराग्य भाव की उपलब्धि रहा है । भाई सहज राम के शब्दों में :- 'अखरां (अक्षरों) के पढ़ने का अरथ (अर्थ) इह है । जो अखरहुं महिं अरथ है । तिस अरथ का भेद पाइए । तै(और) अरथ समझने का फल इह है । जो अनरथहुं(अनर्थ) का तिआग करीऐ । अर अनरथहुं के तिआगणे का फल एह है जो संतहुं की संगत करणे का अधिकारी होवेगा । तब जुगत पुरबक (पूर्वक) संतहुं की संगत करेगा ।'

(पोथी आसावरीआं : पृष्ठ 108)

(क) ग्रंथ लेखन :- धर्म-प्रचार के अतिरिक्त इन डेरों में गद्य और पद्य साहित्य का सर्जन व्यापक रूप से होता था । पठन-पाठन के साथ गुरुवाणी के प्रमुख

अर्थों को 'गुटका' या 'पोथी' रूप में सेवापंथी साधु लिखा करते थे।[39] इस प्रकार लिखे अनेक हस्तलिखित 'गुटके' पंजाब में मिलते हैं। फलतः यह साहित्य 'गुण' और 'परिमाण' दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

(ख) मौलिक ग्रंथ :- सेवापंथी साधु अपने डेरों में अध्ययन-अध्यापन, पुस्तकों के लेखन और वाचन के अतिरिक्त मौलिक-ग्रंथों की रचना भी करते थे। वस्तुतः ये साहित्यिक गतिविधियां उनकी सार्वजनिक सेवा का ही अंग थी। जन-मानस के स्तर पर अत्यन्त सुबोध शैली में संतों की जीवन-गाथाएं प्रस्तुत कर सेवापंथी लेखकों ने साहित्य के साथ साथ अपने पंथ की भी अपूर्व सेवा की है। अतः साहित्य-साधना सेवापंथ में एक व्यापक सेवा-वृत्ति के रूप में जीवित रही है।

इमाम-अल-गज़ाली की विश्व-विश्रुत फारसी कृति 'कीमिया-ए-सआदत तथा कुछ उपनिषदों का भाषानुवाद (18वीं शती), सन्तों की जीवनियां, सिद्धान्त और उपदेश (गद्य पद्यमय) प्रभृति कुछ महत्वपूर्ण कृतियां सेवापंथ ने हिन्दी को दी हैं।

(ग) पारसभाग :- पारस भाग जैसी अद्भुत कृति सेवापंथ की वैचारिक परिधि में निर्मित हुई। सेवापंथी साहित्य की यह एक विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है। इस प्रकार सेवापंथी साधकों ने जहां भौतिक स्तर पर जन-साधारण के लिए विभिन्न जन-सुविधाएं प्रस्तुत कीं, वहां मानसिक स्तर पर अपूर्व बौद्धिकता के साथ अनेक मूल्यवान साहित्यिक कृतियां जनमन के परिष्कार के लिए भी प्रस्तुत कीं। शरीर और मन इन दोनों स्तरों पर इतना व्यापक एवं सक्रिय आन्दोलन हमारे साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।

इस साहित्य की प्रमुख कृतियां ये हैं :-

(क) दर्शन

1. विवेकसार (भाई अड्डणशाह और दक्षाराम के प्रश्नोत्तर)

(ख) जीवनी साहित्य

2, 'परचीआं भाई कन्हईआ'[40]

3, 'परचीआं भाई सेवाराम'

4, आसावरीआं भाई सेवाराम

5, 'परची भाई अड्डण जी' कृत: भाई सहज राम

6, 'साखीआं अड्डण जी कीआं'

(ग) अनुवाद

7, पारस भाग

8, योग वासिष्ट भाषा

(घ) साधु सदानन्द कृत साहित्य

9, 'सिद्धान्त रहस्य'

10, 'विगि आन अरक (जपु जी) टीका'

11, '35 उपनिषदों का अनुवाद'

12, 'टीका विचार माला'

13, 'गिआन कसौटी'

14, 'वसिष्ट' (चौपाइयों में)

15, 'टीका विवेकसार'

16, 'विदिआ निध'

ङ' इतिहास (सेवापंथ)

17, 'संतरतनमाल' कृत संत लाल चंद

18, 'प्रेम प्रकाश' कृत संत शाम सिंह

ये सभी रचनाएं पंजाब के सेवापंथी केन्द्रों में उपलब्ध हैं।[40] इन रचनाओं में सेवापंथी साधुओं की त्याग, तपस्या, और उनकी सेवा-भावना के

साथ साथ उस समय के सामाजिक जीवन का एक जीवंत चित्र भी मिलता है।

सार्वजनीन स्तर :- अद्वैत वेदान्त, भक्ति तथा सूफी (इस्लामी) दृष्टियों के एक अपूर्व मिलन बिन्दु पर सेवापंथ- विशेषत: उसका साहित्य- अवतरित हुआ है।

योग वासिष्ठ की अद्वैत-दृष्टि, गुरु नानक की भक्ति तथा अल-गज़ाली का प्रौढ़ सूफी (इस्लामी) चिन्तन सेवापंथी साहित्य की आधार शिला है।

अल-गज़ाली की विश्व-विख्यात कृति `कीमिया-ए- सआदत का अनुवाद `पारसभाग` नाम से सेवापंथी केन्द्रों में हुआ, और इस कृति का बहुत गंभीर प्रभाव पूरे सेवापंथी साहित्य पर कहीं भी देखा जा सकता है। इस साहित्य में विशिष्ट जीवन दृष्टि से लेकर विशिष्ट शब्दों तथा वाग्धाराओं तक `पारसभाग` और उसकी भाषा-शैली छाई हुई है।

(६) सेमेटिक: यूनानी: `फलसफा` :- इसके अतिरिक्त `पारस भाग` ही हिन्दी का एक ऐसी कृति है जिसका सीधा संबंध अल-गज़ाली की अरबी कृति इह्या-उल-उलूम` तथा इह्या` के अल-गज़ाली कृत फारसी अनुवाद `कीमिया-ए-सआदत` के साथ है। यही कारण है कि `पारसभाग` में हज़रत मुहम्मद से लेकर अनेक इस्लामी साधकों और तत्ववेत्ताओं के विचार स्थान स्थान पर मिलते हैं।

इस्लाम के अतिरिक्त `मिहतर (महत्तर) -ईसा`, मूसा और सुकरात जैसे विचारकों का चिंतन तथा उनकी जीवन-दृष्टि `पारसभाग` में स्थान स्थान पर संकलित हैं।

निष्कर्ष यह कि सेमेटिक परिवार का यह आयातित विशाल चिंतन और यूनानी `फलसफे` का इतना विस्तार `पारस भाग` के अतिरिक्त हिन्दी की किसी अन्य प्राचीन कृति में उपलब्ध नहीं है।

'पारस भाग' संबंधी आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व 'पारसभाग' की उपजीव्य कृतियों - 'इहया' - तथा 'कीमिया' - एवम् इनके रचयिता अल-ग़ज़ाली का परिचय देना आवश्यक है।

ooo

पाद टिप्पणियां
(1 से 41)

1- नवम-गुरु के अतिरिक्त आनंद पुर में दशम गुरु की भी सेवा करने का अवसर भाई सेवाराम को मिला था ।(देखिए: संतरत्नमाल: पृष्ठ 9-10)

2- छठे गुरु हरगोबिंद (संवत् 1650-1701) ने शस्त्र-अस्त्र धारण कर इस दिशा में अपने अनुयायियों को प्रेरित किया ।

3- `मरेला` शब्द गुरु गोबिंदसिंह के लिए कुछ मुसलमान लेखकों ने प्रयुक्त किया है । संभवत: इस शब्द के मूल में `मरने, मारने` की ध्वनि निहित है ।

4- इस `साखी` को `अपने इष्ट पर अटल निश्चा` यह शीर्षक दिया गया है ।

5- पोथी आसावरीआं: पृष्ठ 149-150

6- वही: पृष्ठ 76

7- वही: पृष्ठ 317

8- अद्वैत-दृष्टि का भक्ति के साथ इस प्रकार समन्वय किया गया है :- `जो प्रीतवान को कउं ऐसा चाहिता है जो प्रिथमें तौ अपणे आप को पछाणे । जब अपणे आप को पछाणेगा । तब जोती (ज्योति)परमेश्वर की आप कौं मानेगा । (पोथी आसावरीआं पृष्ठ 250)

तुलना : पारसभाग (चिआउ अपणी पछाण का)

9- सेवा परायणता ही भक्ति की कसौटी है :-

`जब मन, बच, क्रम सरब (सब) का भला चाहणा वाला होता है तब एह भगति(भक्ति) का ओड़क(अन्तिम रूप ) है `(वही: पृष्ठ 193)

10- वही: पृष्ठ 178

11- वही: पृष्ठ 1

12- विवेकसार : पृष्ठ 133

13- वही: पृष्ठ 232

14- भाई सहजराम के अनुसार :-

'सरीरों की गत छिनभंगुर रूप है। कैसी छिन भंगर रूप है? दीपक की निआई साह (सांस) दिसिआं बुझ जांदा है, बूंद की निआई परम बुद्ध है अर निरफल है। ऐसे छिनभंगर सरीर सिउं जिन पुरखां परमेसर पाइ लीआ है ताखणा बुधवान पुरख ओही है' (पोथी आसावरीआं पृष्ठ 97)

15- पोथा आसावरीआं : पृष्ठ 219

16- वही: पृष्ठ 241-242

17- वही पृष्ठ 242

18- संतरतनमाल पृष्ठ 52

19- वही पृष्ठ 53

20- भाई सहजराम लिखा है :-

क- 'जिन पुरखां दास भाउ अंगीकार कीआ है तिन पुरखां परमेशर सहाइता अंगीकार की है। आहे ते जो परम्परा आदि जुगादि दासा उपर सहाइता करदा आइआ है'। (पोथी आसावरीआं पृष्ठ 166)

ख- इस कथन का फलितार्थ इस प्रकार दिया गया है :-

'तां ते जिन पुरखां दासाभाउ अंगीकार कीआ है तिन पुरखां परमेशर की सहाइता का अंगीकार कीआ है। अर जिन पुरखां अहंकार का अंगीकार कीआ है तिन पुरखां परमेशर के क्रोध का अंगीकार कीआ है'

(वही पृष्ठ 166)

21- वही पृष्ठ 181

22- संतरतनमाल पृष्ठ 27

23- वही पृष्ठ 58

24- वही पृष्ठ 187

25- पोथी आसावरीआं पृष्ठ 317

26- वही पृष्ठ 93

954102

27- बुक्कल: (पंजाबी) कोली अर्थात् मन के भीतर

28- अड्डणशाह दीआं साखीआं:

संपादक : गोबिंद सिंह लांबा पृष्ठ 104

29- विवेकसार (संतरत्नमाल) पृष्ठ 204

30- दीबर: संतरत्नमाल पृष्ठ 106

31- मूड़ी (मूलधन) संभवत: 'ड़' और 'ल' दोनों का अभेद उच्चारण में चल रहा था। यह वैदिक प्रवृत्ति है। मूर्धन्य 'ल-ल्ह' आज भी पंजाब में सुना जाता है।

32- निक्की (छोटी) निष्क से निष्पन्न।

33- श्री चरण हरि विसथार। जिल्द। सैंची।

खालसा समाचार, अमृतसर, पृष्ठ 178

34- थीवे (हो)' स्था' से विकसित लहंदी क्रिया।

35- विवेकसार (संतरत्नमाल) पृष्ठ 240

36- संतरत्नमाल : पृष्ठ 184

37- वही पृष्ठ 139

38- वही पृष्ठ 143

39- ग्रंथ (आदि ग्रंथ) लिखने की विधि एक 'बचन' में इस प्रकार दी गई है 'प्रिथमे बजार सिउ कागत मोल लिआईते हैन। फेर उनकों कट कर सतरां (लाइनें) उनके ऊपर पाईतीआं। फेर सतरां पाइकर ग्रंथ जी के पास बैठ कर पत्रा पत्रा कर लिखीता है - - - जब सारा संपूरन होता है तब जिलत बंध कर अदब की ठउर(स्थान) मंजी पर इसथापन (स्थापित) करीता है'

'साखीआं अड्डणजी', पृष्ठ 113

40- परचा, परची नामक साहित्य पंजाब में बहुत मिलता है।

41- विस्तार के लिए देखिए :-

क- हथ लिखतां दी सूची : भाषा विभाग, पटियाला, भाग-3

ख- 'पारसभाग' संपादक प्रो० प्रीतम सिंह

ग- संतरत्नमाल : कृत संतलालचंद ।

ooooo
ooo
o

अध्याय-3

पारसभाग : कर्तृत्व

क- पारसभाग : रुचिकर कथा

ख- पारसभाग : पाई मंगू-गाहू

ग- पारसभाग : दशमगुल

घ- पारसभाग : अहुणाशाह

ङ- पारसभाग: सूफी प्रीत

च- पारसभाग: उपजीव्य-कृतियां

छ- पारसभाग: नामकरण

(पाद-टिप्पणियां)

पारसभाग : कृतित्व

क) पारसभाग : रुचिकर कथा :- अड्डणशाह ने अपने अनुयायियों तथा श्रद्धालुओं के रुचि-भेद तथा मानसिक-स्तर वैषम्य को ध्यान में रख कर विभिन्न व्यक्तियों के लिए साधना के भिन्न भिन्न प्रकार निश्चित किए । संतरतनमाल के लेखक ने एक स्थान पर अड्डणशाह के इस विवेकपूर्ण विधान के संबंध में लिखा है :- "अर भाई अड्डण जी यथा अधिकार सभनां को उपदेश करते हैं । कोई गिआन का अधिकारी है, कोई भगती का, कोई बैराग का कोई टहिल का, अर जो किसी में काई खोटी प्रक्रित होवे सो जुगति नाल तिसको वणाइ के दूर कर देते हैं, जैसे बैद जो सफलवान होता है सो रोगी का रोग जिस प्रकार दूर होवे तिसी प्रकार करता है"।

स्पष्ट है कि अड्डणशाह ने जन-सामान्य के लिए रुचिकर-कथा बांचने-सुनने की परम्परा स्थापित की । सेवापंथी केन्द्रों में इन तीन पुस्तकों की कथा होती थी :-

1. आदिग्रंथ
2. योगवसिष्ठ
3. पारसभाग

इनके अतिरिक्त 'मसनवी' (मौलाना रूमी कृत) की कथा होने का भी उल्लेख मिलता है ।

1. आदिग्रंथ :- सेवापंथ मूलत: सिक्ख परम्पराओं के साथ जुड़ा हुआ है । फलस्वरूप आदिग्रंथ की कथा सेवापंथी केन्द्रों में नियमत: होती रही है । इसके साथ ही आदि ग्रंथ के प्रति पूर्ण सम्मान तथा इस सम्मान की सुरक्षा के लिए अड्डणशाह जैसे प्रमुख सेवापंथी साधु कोई भी खतरा उठा लेने के लिए तैयार रहते थे (देखिए 'संतरतनमाल पृष्ठ 116-18, [illegible]-40)

2. योग वासिष्ठ भाषा :- योगवासिष्ठ भाषा का मूल्य और महत्व अकल्पनीय है। इस कृति को पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने कुछ प्रांत-सूचनाओं के आधार पर राम प्रसाद `निरंजनी` कृत मान लिया था। उनके बाद यह कृति सामान्यतया `निरंजनी` की कृति मान ली गई। इस समस्या पर डा० राजगुरु ने विस्तार से विचार किया है।[3] सेवापंथी परम्पराओं के अनुसार इस रचना के मूल में अड्डणशाह की प्रेरणा रही है। इन परम्पराओं के अनुसार :-

एक बार शाहदरे(लाहौर) में कुछ `साहुकारों` ने `बसिसट` की कथा रखाई। उन्होंने `अड्डणशाह` जी को पधारने के लिए निमन्त्रित किया। अड्डण जी अपने साथ चार साधुओं को लेकर पहुंचे, और इन चारों को परदे के पीछे बिठा दिया, और उन्हें आज्ञा दी कि जो कुछ पण्डित जी कहें, वह सब गुप्त रूप से लिख लिया जाए :- `सो किस वासते ऐसे जतन कीआ। आगे वसिसट की कथा बहुत दुरलभ्य था। जो बड़े धनाढ इकतर होवें, अर बहुत भेंट चढावें, तब कोई पण्डित नजीक दो चार की कथा सुनावता था। ऐसी दुरलभ्य कथा को जान के उद्दम कीआ। जो भाषा होवे इह ग्रंथ। तब साध संगत में कथा सोखी (`आसान`) होवगी नहीं तां गरीबां साधां नू कौण सुणावंदा है।`

`पीछे केतक काल पण्डित को खबर भई जो बसिसट भाषा कर लीआ है, साधां मेरी कथा सुनते थी। तब पण्डत आपके पिट्टण रोवण लगा और कहिआ जो इह बसिसट आप भाषा तो कीआ है पर वरषो वरषी बसिसट पढीएगा। जब पण्डत बहुत कलीपआ तब भाई साहिब जी विचारिआ, इस को राजी करीए। बहुत धन पण्डत को दे के राजी कीआ अर कहिआ, अब जो कुछ होवणा था सो तो हो चुका है। आप पास बैठ के सुधाइ छडो अर राजी भी होवहु। ऐसे जब पण्डत को बहुत धन दीआ, तब पण्डत राजी हुए के पास बैठ के सुधाइआ अर कहूं कहूं अलंकारों का निरूपन के कुशाला का एक वलित्र जो नहीं लिखिआ हुआ। सो साधां आपे ही नहीं लिखे। ऐसे भाई अड्डण साहिब जो बसिसट जी की भासा कराई`।[4]

यद्यपि योग वासिष्ठ भाषा के संबंध में इस सेवापंथी अनुश्रुति को यथावत् स्वीकार करना संभव नहीं है। फिर भी इस मान्यता का एक औचित्य है कि सेवापंथी केन्द्रों में योग-वासिष्ठ भाषा जैसी रचनाओं को महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ था।

3. पारसभाग: कर्तृत्व :- योग वासिष्ठ(अनुवाद) के अतिरिक्त अड्डणशाह ने इमाम गज़ाली की विश्व-विश्रुत फारसी कृति `कीमिया-ए-सआदत` का भाषानुवाद भी `पारसभाग` नाम से किया या करवाया।

`पारसभाग` का रचयिता(अनुवाद) कौन था, इस प्रश्न का दो टूक उत्तर देना कदाचित् संभव नहीं है। संतरत्नमाल में या अन्य किसी प्रामाणिक रचना में `पारसभाग` के कर्तृत्व पर साक्षात् रूप से कुछ नहीं कहा गया। फलतः इस रचना के कर्तृत्व को लेकर पर्याप्त मत-भेद विद्यमान है।

(ख) पारसभाग : भाई मंगू-गाह्डू :-

कुछ सेवापंथी साधुओं ने `पारसभाग` के कर्तृत्व का श्रेय भाई `मंगू-गाह्डू` नामक दो साधुओं को देने का प्रयास किया है। ये दोनों साधु फारसी के विद्वान् बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त अड्डणशाह के प्रसिद्ध अनुयायियों में भी इनकी गणना कई बार हुई है।[5]

`सिक्ख हिस्ट्री रिसर्च सोसाइटी` (स्वर्ण-मन्दिर अमृतसर) के एक विद्वान् कर्मचारी सरदार रणधीरसिंह ने `सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी`(अमृतसर) की पुस्तकों का एक `वड्डा सूची पत्तर` प्रकाशित किया था।(1951 ई०) इस `सूची पत्तर में - संभवतः कुछ सेवापंथी साधुओं के प्रभाव के कारण - सरदार रणधीर सिंह ने भी भाई मंगू को पारसभाग का रचयिता बताया है।

परन्तु प्रोफेसर प्रीतम सिंह ने `भाई मंगू-गाह्डू` के सम्बन्ध में

पूरी छानबीन के बाद यह सिद्ध किया है कि ये दोनों साधु सेवापंथी परम्पराओं-लिखित तथा अलिखित - के अनुसार फारसी कृतियों (मसनवी: - मौलाना रूमी आदि) की मात्र कथा किया करते थे। किसी फारसी कृति के अनुवादक के रूप में इन दोनों साधुओं का कोई प्रामाणिक उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

(ग) पारसभाग : दशमगुरु :-

इन दो साधुओं के अतिरिक्त कुछ लोग 'पारसभाग' की रचना का श्रेय दशम गुरु गोबिंदसिंह को भी देते हैं। सरदार कपूर सिंह ने अपनी एक पंजाबी पुस्तक (' पंजाबी साहित्य दा इतहास) में अपनी यह मान्यता प्रस्तुत की है :- ' इहया-उल-उलूम' नामक अरबी ग्रंथ (रचयिता: अल-गजाली) का अनुवाद दशमगुरु गोबिंद सिंह ने ' सैयद बदरुद्दीन' की सहायता से 'पंजाबी गद्य' में करवाया। यह अनुवाद 'पारसभाग' नाम से प्रसिद्ध है। यह अनुवाद आनंदपुर साहिब में करवाया गया। (पृष्ठ 3 3)

परन्तु पर्याप्त तर्क-प्रमाणों के अभाव में इस मान्यता को केवल 'कपोल-कल्पना' ही कहा जा सकता है। साथ ही यह कहना कि 'पारसभाग' 'इहया' का अनुवाद है, अनेक विश्वसनीय प्रमाणों का अकारण ही प्रत्याख्यान करना है। क्योंकि 'पारस भाग' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है - अल-गज़ाली की फारसी कृति 'कीमिया -ए-सआदत' का 'भाषा-अनुवाद' है।

(घ) पारसभाग: अड्डणशाह :-

अड्डणशाह को 'पारसभाग' का रचयिता सिद्ध करते समय प्राय: इन तर्कों का आश्रय लिया जाता है :-

1, प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां :- 'पारसभाग' की प्राचीनतम हस्तलिखित

प्रतियों में निरपवाद रूप से 'पारसभाग' को अड्डणशाह कृत बताया गया है। इन में से एक प्रति[8] के प्रारंभ में -

'अथ पारस भाग लिख्यते। सतिगुरु प्रसादि। अब कोमीआं किताब को भाखा क्रित अड्डणशाह जी।

उत्तरवर्ती प्रतियों में भी यह उल्लेख सर्वत्र मिलता है।

'पारसभाग' के सभी प्रकाशित संस्करणों में भी 'पारसभाग' को अड्डणशाह कृत बताया गया है। 'पारसभाग ग्रंथ (लीथो) का यह अवतरण हमारी इस मान्यता का समर्थन करता है :- 'अथ पारसभाग ग्रंथ लिख्यते। क्रित भाखा अड्डणशाह साईं लोक की। जो सरब विदिआ में प्रवीन हुए हैं'।[89]

स्पष्ट है कि इस प्रकार के अनेक प्राचीन तथा प्रामाणिक उल्लेखों से यही सिद्ध होता है कि अड्डणशाह ने 'पारसभाग' की रचना की। इसे यों भी कहा जा सकता है कि अड्डणशाह ने इसकी रचना संभवतः अपने किसी 'फारसीदां' श्रद्धालु से करवाई और उस श्रद्धालु ने अपनी श्रद्धा के साथ साथ अपना यह अप्रतिम कृतित्व भी अड्डणशाह को ही समर्पित कर दिया।

कर्तृत्व सम्बन्धी इस प्रश्न पर विचार करने वाले इन अधिकारी विद्वानों ने भी 'पारस-भाग' को असंदिग्ध रूप से अड्डणशाह की कृति माना है :-

1. डा० लाइटनर :- लिखते है :-' दी स्पिरिट आफ सिक्ख-इज़्म इज वेल एग्जेंपुलीफाइड इन पारसभाग। अड्डणशाह - ए फकीर-रोट दी 'पारसभाग' और 'टचस्टोन' इन गुरुमुखी (एन एडेप्टेशन आफ दी 'कीमिया-ए-सआदत') इन विच जीसस, नानक एंड अदर रिलीजिअस रिफार्मर्स आर प्रेज़्ड '। (हिस्ट्री आफ इंडीजीनस सिस्टम आफ एजूकेशन इन दी पंजाब सिन्स एनेक्सेशन एंड इन 1882 प्रकाशन 1882 पृष्ठ 156)

2. भाई कान्ह सिंह :- आप लिखते हैं :- ''पारसभाग', भाई अड्डणशाह कृत । इमाम-गज़ाली दी 'कीमीआ-सआदत' किताब दा उलथा, जिस विच उत्तम सिखिआ है' । (महानकोश)

3. डा० मोहन सिंह दीवाना :- आपने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर' (पृष्ठ 105) में 'पारसभाग' को अड्डणशाह कृत बताया है । परन्तु अपनी दूसरी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू पंजाबी लिटरेचर' (पृष्ठ 100) में डा० दीवाना 'पारसभाग' के कर्तृत्व के सम्बन्ध में मौन हैं ।

4. डा० बलबीर सिंह :- डा० बलबीर सिंह ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि 'पारसभाग' अड्डणशाह की रचना है ।[10]

5. महंत गणेसा सिंह :- लिखते हैं 'अड्डणशाह ने ही इमाम-गज़ाली दी 'कीमीआ-सादित' किताब विचों 'पारसभाग' रचना कीता' (भारतमत दरपण)

निष्कर्ष यह कि पूरी वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए यह मानना कदाचित् युक्ति-संगत होगा कि 'पारसभाग' अड्डणशाह की ही रचना है । कम से कम उनके तत्वावधान में इस रचना के निर्मित होने की संभावना काफी है । यद्यपि इस संबंध में कोई प्रमाण देना संभव नहीं है ।

पारसभाग : धर्म पुस्तक :- सेवापंथी डेरों में 'पारसभाग' की कथा एक धर्म-पुस्तक के रूप में होती रही है । निश्चय ही 'पारसभाग' को धर्म-पुस्तक के रूप में मान्यता मिलने का कोई दृढ़ भावनात्मक आधार होना चाहिए, और 'पारसभाग' का अड्डणशाह-कृत होना या फिर उनके तत्वाधान में 'पारसभाग' की रचना होना इस प्रकार का आधार हो सकता है ।

अड्डणशाह : कर्तृत्व :- अड्डणशाह को सेवापंथी अनुश्रुतियों में एक तपस्वी और कर्मठ महात्मा के रूप में ही चित्रित किया गया है । उनसे संबंधित सभी

`साक्षियों` में उनका यही रूप उभरा है। एक साहित्यकार के रूप में उनकी किसी विशिष्ट कृति का प्रामाणिक उल्लेख अभी तक नहीं मिल सका।

सामान्यतः `पारसभाग`, `विवेकसार`, `बकनसाईं लोकां दे`, `बकन गोबिंद लोकां दे`, तथा `दयाराम प्रश्नोत्तरी` अड्डणशाह की रचनाएं बताई जाती हैं।

इन में से किसी भी कृति को अन्तरंग या किसी अन्य प्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर अड्डणशाह-कृत मान लेना संभव नहीं है। केवल परम्पराओं और अनुश्रुतियों के अनुरोध पर ही ये अड्डणशाह की रचनाएं कही जाती हैं। इसी प्रकार `बकन साईं लोकां दे`, `बकन गोबिंद लोकां दे` जैसी कितनी ही हस्तलिखित कृतियों के साथ अड्डणशाह का नाम रचयिता के रूप में जोड़ा गया है। परन्तु इन मान्यताओं का समर्थन करना संभव नहीं है।

इसके साथ ही अड्डणशाह के बौद्धिक सम्भार, उनके फारसी-ज्ञान, विशेषतः फारसी से `भाषा` में `पारसभाग` जैसा सफल अनुवाद कर पाने की उनकी क्षमता के संबंध में सेवापंथी परम्पराएं और अनुश्रुतियां प्रायः मौन हैं। यह `मौन` भी `कीमीया-ए-सआदत` के अनुवाद (पारसभाग) के साथ अड्डणशाह को अनुवादक के रूप में नहीं जोड़ पाता।

(ङ॰) पारसभाग : सूफी-स्रोत :- प्रो॰ प्रीतम सिंह ने `सिलसिला` नामक किसी उर्दू लेखक के आधार पर यह सिद्ध किया है कि अड्डणशाह को सूफी परम्पराओं में `अड्डणशाह दरवेश` के नाम से याद किया जाता है। एक सूफी केन्द्र (बदायूं) में अड्डणशाह के जाने का उल्लेख भी इसी आधार पर किया गया है। इन उल्लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अड्डणशाह सूफी साधकों के निकट सम्पर्क में आए थे। गुरु नानक के युग से ही सूफी साधकों का `प्रेम`, उनकी साधना, उनका सात्त्विक जीवन और सब से बढ़ कर उनकी रस भीनी

कविता पंजाब के साधकों के लिए आदर की वस्तु बन चुकी थी ।

संभव है किसी ऐसे ही सूफी-स्रोत के माध्यम से लड्डणशाह को 'कीमिआ-ए-सआदत' मिला हो और इस कृति से प्रभावित होकर उन्होंने इसे 'भाखा' में स्वयं अनूदित किया या अनूदित करवाया हो । 'योगवासिष्ठ भाखा' के संदर्भ में अनुवाद की यह घटना कदाचित् वस्तुस्थिति से दूर नहीं है ।

<u>सेवापंथ में फारसी (अनूदित) कृतियों की परम्परा :-</u>

सेवापंथी केन्द्रों में 'पारसभाग' के अतिरिक्त 'मसनवी' आदि कुछ अन्य फारसी (अनूदित) कृतियों के अध्ययन-वाचन ('पाठ' 'कथा') का उल्लेख स्थान स्थान पर मिलता है । इन अनूदित तथा बहुशः उल्लिखित कृतियों में से प्रमुख कृतियों का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :-

1. <u>'मसनवी भाखा'</u> :- यह हस्तलिखित प्रति सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला में 2916 क्रमांक पर संकलित 'कीमिया-ए-सआदत' की हस्तलिखित प्रति के साथ संलग्न है । (पत्र 51 -571)

<u>प्रारंभिक अवतरण :-</u> १ ओंकार सतिगुर प्रसादि । अथ मसनवी भाखा लिख्यते । सुन, बंसरी जो जो किआ कथा कहती है अरु विछोड़े का दुख का वखिआनु करती है । जब का बनि सिउं काटिआ है । अरु मुझ कउ जुदा कीआ है जब ते हमारी पुकारि सुनि करि इसत्रीआं अरु पुरख रुदन करते हैं पर मैं बहु छाती चाहती हों जो विछोड़े के दरद सिउं चांक चांक होई होवे । जो दरद प्रेम का मैं वखिआण करउं '। (पत्र 51)

<u>अंत:</u> 'जैसे वहु सिंधु भी अपणी ऊपर क्रोध करत पहला था । तो तैसे तूं भी जिस समैं अपणी कूएं की डुंघिआई (गहराई) विखे पहुंचेगा तब परतखि जाणिआ जाणी कीते का फल तूं । इति श्री मसनवी भाखा समापतं'।

लिपिक कथन :

अठार वध घाट होइ सुजानु,
लिखान काल एउं इजानु । (अगान: काण: श्यामा + उ)।
नाम कुादी उसका जानु,
उसकी पति राखी फवानु ।
लहुउर (लाहौर) शहर गजर तख्वारा,
कहा जात गुरसिख पिआरा

दोहरा- उसताद धनैया गालु है,
दुग्गल जिन की जाति ।
पूतु बधावा दास है,
जिन बखसा इह दाति ।
< < < संवत 1840 मिती कतकु (कार्तिक)
वदी एकादसी '(पत्र 371)

मसनवी: परिचय :- मौलाना जलालुद्दीन रूमी (13वीं शती) की विश्व-प्रसिद्ध 'मसनवी' का यह 'भाखा' में रूपांतर (अनुवाद) जान पड़ता है। मौलाना रूमी की फारसी 'मसनवी' 'मसनवियों की मसनवी' कही जाती है। 'इन्साईक्लोपीडिया आफ इस्लाम' के अनुसार सूफी-दर्शन, जीवन-चर्या, संतजीवनियां तथा साधना संबंधी मान्यताओं का एक अद्भुत संग्रह मौलाना रूमी ने अपनी मसनवी में किया है। काव्य की अशेष मधुरिमा के साथ प्रस्तुत यह सूफी-दर्शन 'मसनवी' को विश्व-स्तर का सम्मान दिला सका है।

'मसनवी' जैसी कृति का सेवापंथी क्षेत्रों में प्रचलन निश्चय ही सूफी-दर्शन की लोक-प्रियता का प्रमाण है। इसके साथ ही मूल 'मसनवी' को 'भाखा रूप' देना हमारी भाषा और संस्कृति की सर्वग्राहिता की भी सूचना देता है।

'परवी' साहित्य :- 'फ़ानवी' के बाद कुछ प्रसिद्ध सूफ़ी साधकों की जीवनियाँ 'परवी' नाम से पंजाब में लिखी गई। इस 'परवी' साहित्य की मूल प्रेरणा तथा सामग्री फ़ारसी के विशाल तथा सम्पन्न जीवनी-साहित्य से ली गई जान पड़ती है। 'तज़्किरात-उल-औलिया', 'इन्सान-उल-कामिल', 'मिरआत-अल-मसाहिब' जैसी प्रसिद्ध जीवनियाँ इस 'परवी' साहित्य की पृष्ठभूमि में हैं। इस प्रकार की कुछ प्रमुख 'परवीओं' का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :-

2. परवी राइबाजी ('राबिआ') जी की :- यह हस्तलिखित प्रति भी 2916 क्रमांक पर सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला में संकलित है। (पत्र 414-43)

प्रारंभिक अवतरण : (राबिआ जी का विरुद् गायन)

दोहरा- 'सील सबूरु सुजन की, पुतरी जोरी रामु,
नामु परभु बिन नाम जो, बिआगो ना अभिरामु।

चउपई - निकटि परभु के सो अति सुंदर,
बसत सदा निहकामता अंदर।
भई परवाणु संतन रिद मानी,
तिसा नाम तिह कहन कहानी'।

अंत- 'राबिआ रैरा कथा कउ, पूरन भइउ परसंगु,
सुनि करि कीरह वका परि, लागै परभु सो रंगु'।

राबिआ (8 वीं शती) परिचय :- 'राबिआ' सूफ़ी साधिकाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है। अपनी कठोर साधना तथा अपनी मधुर एवं करुण गीतियों के कारण 'राबिआ' को सूफ़ी-संतों में बहुत ऊंचा स्थान दिया जाता है।

अल-गज़ाली ने 'इह्या-उल-उलूम' में कितने ही स्थलों पर 'राबिआ' के विभिन्न वचनों की व्याख्या की है। मार्गरेट[11] स्मिथ ने भी 'राबिआ' के

रहस्यवाद तथा उसके जीवन-दर्शन पर विस्तार से चर्चा की है।

3. परची मनसूर जी की :

यह हस्तलिखित प्रति भी 916 क्रमांक पर सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला में संकलित है। (पत्र 441-450)

प्रारंभिक अवतरण :- `१ओंकार। अथ परची मनसूर जी की लिख्यते।

दोहरा-। बरकति।

`जिह जनि प्रीत उतपति भई, प्रभ अपने के संगि,
जथा बुध बरनन करउं, तिह जन के प्रसंग।`

चउपई :

`अब सुनहु मनसूर प्रीतम की बात,
परभु मारगि कउ संगी साथि।
आपना आप दीउ है ताहि,
सूली सीस निज कीउ बिनाह।

अंत : `लड़का होवै कहावै साहु,
ताको मिलिहै भारी त्राहु (त्रास)।
होवै सिख कहावै गुरु,
सो दुख अपना करता शुरु।
चटीआ(विद्यार्थी) होइ कहावै ओझा (अध्यापक)
सो लहै पूरण जग महि बोझा (?)
रोगी होइ कहावै निरोआ (निरोग),
सो जनि दुख महि पच पच मोआ।
होवै पूत कहावै पिता,
तिहु जग विउ न परे लानता।(लानतें)
(लेखक अनुवादक): अज्ञात)।

मन्सूर-अल-हल्लाज (९वीं शत): परिचय :- सूफी साधकों और विचारकों में मन्सूर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अन-अल-हक (" मैं ही ब्रह्म हूँ ") की घोषणा करने वाला वह पहला सूफी कहा जाता है। तत्कालीन शासक उसके क्रांतिकारी विचारों को सहन न कर सके और अन्ततः उसे भयानक यातनाएं देकर मरवा डाला गया।

इस महान् सूफी साधक की जीवनी के लिए आवश्यक सामग्री किसी फारसी ग्रंथ से अनूदित अथवा अन्य रूप में --- ली गई जान पड़ती है।

इन कृतियों के अतिरिक्त :-

'परची फुज़ैल साईं की', तथा 'परची अबेत करन की' नामक कृतियां फारसी ग्रंथों के आधार पर सेवापंथी साधकों द्वारा संकलित की गई हैं।

'सुखन':'बचन' साहित्य : - सूफी-साधकों के विभिन्न उपदेश-वचनों तथा उनके जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं को भी सेवापंथी क्षेत्रों में 'भाषा' रूप दिया गया। ये कृतियां 'सुखन' या 'बचन' नाम से प्रसिद्ध हैं। इन कृतियों में से एक कृति का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :-

'सुखनि फकीरां के' : - यह प्रति पी 916 क्रमांक पर सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला में संकलित है। (पत्र 35 - 455)

प्रारंभ :- 'अबि सुखनि फकीरां के लिखे। एक फकीर एक रोजु आखदा (कहता) आहा(था) जो इकु खजाने दबे होए दे उपे (ऊपर) सा त(सात) सतरि (सतरें : पंक्तियां) नसीहतां दीआं (की) लिखीआं होइआं डिठीआ (देखीं) सें। 1।'

'पहली इह जो अवसोस (अफसोस) आंवदा(आता) है मैनूं उस आदमी ते (पर) जो जाणदा है जो मरणा सबु है। अरु उह खाणे अरु ओढणे विच लागि रहिआ है'। (पत्र 1)

अन्तिम अवतरण :- ` सुखन है। जो विच संसार दे अठु वसतु भलीआं होनि। पहला ह्याउ (ह्या) इसतरीआं ते(पर)दूजा तोबा जुआनां (जवानों) ते। च उथा उदारता धन वाले कोलों (से, पास)। पंजवां पिआर दोसतां के(से)। छिवां निरवाहु सुंदरा थे। सतवां इनसाफ बादसाहु ते। अठवां मारफत फकीरां दी (की)।

`अर इउ भी कहा है। जो इसत्री ह्याउ न करे, तब खाणा है पर बिना लूण (नमक)। जुआन जो तोबा न करे, सिप (सीप) है पर बिना मोती। पढिआ (पढ़ा लिखा व्यक्ति) बंदगी न करे, बिरछ है पर बिना मेवे। - - जाणु (जानो) जो नाला है पर बिना पाणी। यार है पर पिआर नहीं। जाणु जो बुत है पर बिना चिंतन। सुंदर है पर वफा नहीं। जाणु जो कमाणु (कमान) है पर बिना चिल्ले(चिल्ला) पातिसाह है, पर इनसाफ नहीं, जाणु जो बदल (बादल) है, पर बिना पाणी। फ़कीर है पर मारफत नहीं। जाणु जो दीवा (दीपक) है पर बिना तेलु। सुखन समापतं`। (पत्र 455)

इस कृति की एक अन्य हस्तलिखित प्रति `सुखन फकीरां` नाम से भी उपलब्ध है। `मोतीबाग लाइब्रेरी पटियाला` में 6 क्रमांक पर संकलित इस प्रति का प्रारंभिक अवतरण उपर्युक्त प्रति से कुछ भिन्न है :-

`- - - सुखन फ़कीरां, साईं लोकां, पिकंबरां (पैगंबरों) दे। हकन है हजरत अली दा जो धरम वालिआं दा सिरदार था। किआ(क्या) जो इक दिन उपर खजाने दले ते सत नसीहतां लिखिआं डिठीआं`।

निष्कर्ष :-

फारसी रचनाओं पर आधारित ये सेवापंथी कृतियां सिद्ध करती हैं कि सूफ़ी-विचारों को `भाषा` रूप देने का काम सेवापंथी सन्तों में व्यापक रूप में और एक बड़े पैमाने पर ही रहा था। फलतः यह स्वीकार करने का एक

एक औचित्य है कि फारसी में उपलब्ध इस प्रकार की सामग्री को बड़े विवेक के साथ सेवापंथी क्षेत्रों में अपनाया गया और यथावसर इन्हें जन-सामान्य के लिए प्रस्तुत किया गया ।

इसके साथ ही यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इन सब कृतियों के लेखकों (अनुवादकों) ने गुमनाम रहना पसंद किया है । `पारसभाग` के मूल तथा इस कृति के कर्तृत्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त सामग्री उस भारतीय परम्परा की ओर संकेत करती है जिस परम्परा में लेखक (अनुवादक) अपना `आपा` खोकर अपनी तर्कनिष्ठ उपलब्धि अपने युग के सामने प्रस्तुत करता है ।

पंचासत उपनिषद् भाषा ।

सेवापंथी केन्द्रों में प्रचलित इन फारसी (अनूदित) कृतियों के सन्दर्भ में पंजाब की एक अन्य उल्लेखनीय कृति है `पंचासत उपनिषद भाषा` । गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध यह हस्तलिखित प्रति प्रोफेसर प्रीतम सिंह (अध्यक्ष, गुरु नानक स्टडीज़, गुरु नानक यूनीवर्सिटी, अमृतसर) के निजी संग्रह में संकलित है ।

`सिर्र-ए-अकबर` : भाषानुवाद । दाराशिकुह कृत उपनिषदों के फारसी अनुवाद (`सिर्र-ए-अकबर` अथवा `सिर्र-उल-असरार`) का यह `भाषा` अनुवाद है । इस प्रति के आन्तरिक साक्ष्य (प्रारंभिक अवतरण) से इस तथ्य की पुष्टि होती है :- `संमत सत्रां सौ दुआदस । प्रथम दारासिकोह जो सुत साहजहां का था । दिल्ली नगर में संसक्रित सों या उपनिषदों को यामिनी भाषा में लिखावत भया । अब संमत सत्रा सौ छिहत्र है । श्रीगुर ने आगिआ करी जो पाठ उपनिषदों का यामिनी भाषा मों निबध्य है । ताकी आगिआ सों जन प्रल्हादि ने यामिनी भाषा सों पुनर `हिंदवी` मों लिखा । जो पाठ करनहारे को प्रासक्ति न हो`
(विस्तार के लिए देखिए: `गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य: डा० राजगुरु : पृष्ठ 95-108)

निष्कर्ष यह कि पंजाब में फारसी से 'भाषा' में अनूदित कृतियों की एक विशाल परम्परा विद्यमान है। 'पारसभाग' इसी परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

(ब) पारसभाग : उपजीव्य कृतियां

'पारसभाग' में संरचना-क्रम से लेकर विषय वस्तु के विभाजन और प्रतिपादन तक अपनी उपजीव्य ('इह्या' और 'कीमिया') कृतियों के साथ एकरूपता तथा सामंजस्य भी दिखाई देता है। संरचनागत एकरूपता को इन तीनों कृतियों की विषय-सूचियों के तारतम्य से इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

'इह्या': आन्तरिक संरचना :- 'आरबेरी'[12] के अनुसार मूल 'इह्या उल-उलूम'[13] चार 'खण्डों' ('रुब' : क्वार्टर्स) में विभक्त है। प्रत्येक 'खण्ड' अध्यायों ('कुतुब') में विभाजित है :-

खण्ड 1 उपासना : (रुब-अल-इबादात)

अध्याय 1 इल्म (ज्ञान) का स्वरूप
,, 2 विश्वास का आधार
,, 3 शुचिता का गूढ़ अर्थ
,, 4 प्रार्थना का गूढ़ अर्थ
,, 5 दान का गूढ़ अर्थ
,, 6 तीर्थ यात्रा का गूढ़ अर्थ
,, 7 कुरान-वाचन
,, 8 प्रार्थना तथा स्मरण
,, 9 समय : मुहूर्त

खण्ड : 2, वैयक्तिक आचार : (हुब-अल-आदात)

अध्याय 1 भोजन
,, 2 पान
,, 3 जीविका उपार्जन
,, 4 विहित अविहित विचार
,, 5 अन्तेवासिता ('कर्म्मानियम-शिष')
,, 6 चरित्र
,, 7 एकान्त
,, 8 यात्रा
,, 9 कविता : संगीत श्रवण
,, 10 सदुपदेश
,, 11 जीवन और पैगंबर

खण्ड : 3, भयंकर पाप (मुहलिकात)

अध्याय 1 हृदय की अद्भुत प्रकृति
,, 2 आत्म संयम
,, 3 जिह्वा लोलुपता
,, 4 वाणी-दोष
,, 5 क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष
,, 6 सांसारिक वस्तुएं
,, 7 धन: लोभ
,, 8 उन्माद : पाखण्ड
,, 9 दम्भ : धृष्टता
,, 10 अभिमान

खण्ड : 4, मुक्ति का मार्ग (हुब-अल-मुंजीआत)

अध्याय 1 प्रायश्चित्त (तौबह)
,, 2 सब्र, शुक्र

अध्याय 3 ख़ौफ़ रज़ा

,, 4 फ़क्र (निर्धनता) ज़ुहद (तपस्या)

,, 5 तौहीद (अद्वैत दृष्टि) तवक्कुल (प्रभु विश्वास)

,, 6 मुहब्बत, शौक और उन्स

,, 7 सिदक (सत्य) अटल विश्वास

,, 8 फ़िक्र: आत्म परीक्षण

,, 9 ध्यान

,, 10 मौन और स्मरण

'इह्या' की इस आन्तरिक संरचना पर 'हदीस' तथा 'फिक' वर्ग की कृतियों का प्रभाव बताया गया है।[14]

'कीमिया' : आन्तरिक संरचना :- 'कीमिया' की कितनी ही मुद्रित अथवा हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय में उपलब्ध 'कीमिया' की एक प्रति (एम. एस. 892)[15] के आधार पर इस कृति की आन्तरिक संरचना का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :-

क- पूरी रचना चार खण्डों (रुकनों) में विभक्त है।

ख- प्रत्येक खण्ड दस दस सर्गों ('असलों') में विभाजित है।

पहले 'खण्ड' ('रुकन')के दस सर्गों ('असलों') में :-

1- 'सिनाख्त नै शिनास्त' (पिछाउ अपणी पछाणा का पारसभाग)

2- मारफत-ए-हकीकत (पिछाउ भगवंतकी पछाणा का पारसभाग)

तथा

चौथे खण्ड ('रुकन') के दस सर्गों ('असलों') में :-

(क) 'तौबह' ('सरग पाप के तिआग विषै 'पारसभाग)

(ख) 'सब्र, शुक्र' (सरग सबर और शुकर विषै पारसभाग)

(ग) 'ख़ौफ़, रज़ा' ('सरग भै अर आसा विषै' पारसभाग)

(घ) 'ज़ुहद' । ('निहकामता और सुचता विषै' पारसभाग)

(७.) `तौहीद-ओ-तवक्कुल` | `सरग प्रीत अरु प्रेम अरु महाराज का रजाइ ( रज़ा) विषै`
`मुहब्बत-ओ-शौक` | (पारसभाग)
`ज़िक्र-ए-मर्ग आख़रत` |

ये विषय विवेचित हुए हैं ।

स्पष्ट है कि `पारसभाग` और `कीमिया` में संरचनागत एकरूपता देखी जाती है । विशुद्ध इस्लामी तत्व `पारसभाग` में संकलित नहीं है । कहीं कहीं मूल से प्राप्त सामग्री संक्षिप्त रूप में तथा कभी कभी किसी अन्य स्रोत से आयातित सामग्री भी `पारसभाग` में स्थान स्थान पर मिलती है । `पारसभाग` में `रुक्न` के लिए `प्रकरण` तथा `अस्ल` के लिए `सर्ग` शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

`इह्या` तथा `कीमिया` की संरचना संबंधी तुलना करने पर पता चलता है कि इन दोनों रचनाओं में :-

1. खण्ड- अध्याय संबंधी एकरूपता विद्यमान है ।
2. अध्यायों के शीर्षक बिल्कुल समान हैं ।[16]

संरचनागत इस तारतम्य का स्पष्टीकरण `पारसभाग` की एक प्राचीन तथा बहुत शुद्ध हस्तलिखित प्रति के `ततकरा` (विषय-सूची) की सहायता से किया जा सकता है । यह प्रति पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय में क्रमांक 865 एम. एस. पर संकलित है :-

`ततकरा कीमीआ सआदत का तथा पारस भाग का प्रथमे[17] बारि दिखाइ हैं` ।

`दिखाऊ अपणी पछाणा का` (सर्ग 1-10)
`भगवंत की पछाणा का` (सर्ग 1 - 7)
`माइआ की पछाणा का` (सर्ग 1-5)
`प्रलोक ( परलोक) की पछाणा का` (सर्ग 1 - 13)

' इस ते आगे चार प्रकरण हैं '

1. 'नैम प्रकरण'

1. 'सरग प्रतीत विषै'
2. 'सरग पवित्रता विषै '
3. 'सरग दान विषै'
4. 'सरग वरत विषै'
5. 'सरग पाठ विषै'
6. 'सरग सिमरन विषै'

'दूजा विवहार प्रकरण'

1. 'सरग जगत के मिलाप विषै'
2. 'सरग इकांत विषै'
3. 'सरग राजनीत विषै'

'तीजा विकार निषेध प्रकरण'

1. 'सरग - कठोर सुभाव के उपचार विषै'
2. 'सरग अहार के संजम विषै
3. 'सरग रसना के विनष्ट विषै'
4. 'सरग क्रोध की निषेध विषै
5. 'सरग माइआ की निंदा विषै'
6. 'सरग धन की त्रिस्ना के उपचार विषै'
7. 'सरग मान की प्रीत के उपाव विषै'
8. 'सरग दंभ की निषेध विषै'
9. 'सरग अभमान के उपचार विषै'
10. 'सरग अगाधता अरु अचेतनता के विषै'

'अउधे भोग प्रकरण'[18]

1. 'सरग पाप के तिआग विर्खे'
2. 'सरग सबर अर सुकर विर्खे'
3. 'सरग भै अर आसा विर्खे'
4. 'सरग निरधनताई अरु बैराग की उसतति विर्खे'
5. 'सरग निहकामता अरु सचता विर्खे'
6. 'सरग मन के हिसाब विर्खे'
7. 'सरग बीचार विर्खे'
8. 'सरग प्रीत अरु प्रेम अरु महाराज की रजाइ विर्खे'

पारसभाग : (हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियां)

'पारस भाग' की कुछ हस्तलिखित[19] तथा मुद्रित प्रतियाँ[20] - विशेषत: उनमें प्राप्त 'पाठ-भेद' के सम्बन्ध- में डा० राजगुरु की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है :-

'विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में पाठ-भेद संबंधी जो महत्वपूर्ण विषमताएं हैं, वर्तनी, विभक्ति एवं शब्दों के जो विभिन्न रूप-भेद हैं और सबसे बढ़कर पारसभाग में प्रक्षिप्तांशों की जो जटिल समस्या है, इन सब का समाधान किसी वैज्ञानिक पद्धति के संस्करण द्वारा ही संभव है। पाठ-भेद, शब्द-व्यत्यय, कारक-क्रिया-पदों के विपर्यास का निर्णय विभिन्न प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन किए बिना नहीं हो सकता। वस्तुत: हमारे आलोच्यकाल की साहित्यिक और भाषागत परम्पराओं के परिपार्श्व में ही 'पारसभाग' का शुद्ध संस्करण तैयार हो सकता है'। (गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य पृष्ठ 1??-?3 तथा 1?7-29)

पारसभाग : (नागरी संस्करण)

पारसभाग के कितने ही नागरी संस्करण प्रकाशित हुए । प्रकाशक थे लखनऊ के मुंशी नवल किशोर । पारसभाग का प्रथम नागरी संस्करण सन् 1883 में निकला । इसके बाद सन् 1914 तक पारसभाग के पांच नागरी संस्करण प्रकाशित हो चुके थे ।

दुर्भाग्य से इन नागरी संस्करणों में[21] पारसभाग के संबंध में आवश्यक सूचनाएं नहीं दी गईं । अल-गज़ाली और 'कीमिया' अथवा सेवापंथ और अड्डणशाह, अथवा गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पारसभाग के सम्बन्ध में सामान्यतः प्रचलित तथ्य भी (संभवतः जान बूझ कर) छिपा लिए गए ।

परन्तु इस में सन्देह नहीं कि गुरुमुखी से नागरी लिपि में लिप्यन्तरण करते समय पारसभाग की विषय-वस्तु प्रायः यथावत् रखी गई है ।

इस पारसभाग के मुख-पृष्ठ पर यह सूचना दी गई है :-

'(पारसभाग को) श्रीमद् विद्वद् वृंद शिरोमणि महात्मा गुलाबनंद शरण जी बैकुंठ वासी ने बड़े प्रयत्न से निज पुस्तकालय में संचित किया था ।

भाषा- भेद :

नागरी संस्करणों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इन में प्राप्त भाषा का रूप पारसभाग की मूल भाषा से पर्याप्त भिन्न है । मूल तद्भव शब्दों के स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्द रख दिए गए हैं प्राचीन वर्तनी तथा विभक्ति-चिन्ह[22] भी समाप्त कर दिए गए हैं ।

इस प्रकार पारसभाग के इस नागरीकरण से मूल पारसभाग का[23] 'रूप', उसकी भाषा तथा उसकी शैली पर्याप्त विकृत हुई ।

परन्तु इस कुत्सित-प्रयास से भी पारसभाग की अमित महिमा तो स्पष्ट होती ही है।

(ख) पारसभाग : नामकरण

'पारसभाग' 'कीमिया-ए-सआदत' का अनुवाद है। 'सआदत' शब्द अरबी भाषा में 'इकबाल', 'बरकत', 'मुबारकी' 'प्रताप' तथा 'तेज' आदि अर्थों का बोधक है। 'सआदत आसार' 'सआदत-पनाह' और 'सआदतमंद' जैसे शब्दों में यही अर्थ पाया जाता है।

अंग्रेजी पुस्तकों में कई लेखकों ने 'कीमिया-ए-सआदत' का अनुवाद 'आलकैमी आफ हेप्पीनेस' किया है। परन्तु इसे ज्यादा सही नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत 'पारसभाग' 'कीमिया-ए-सआदत' का सही अनुवाद कहा जा सकता है। क्योंकि 'सआदत' शब्द 'भाग' (भाग्य) के अधिक निकट है। तथा 'भाग्य का पारस' (मणि)' इस शब्द का समस्त-अर्थ है और यह समास भी फारसी-समास-पद्धति के अनुरूप है।

'पारस' तथा 'भाग' इन दोनों शब्दों को 'पारसभाग' के प्रारंभिक अवतरणों (मंगलाचरण) में कई प्रकार से परिभाषित और व्याख्यायित किया गया है। विभिन्न रूपकों का संदर्भ देकर इस शब्द का स्पष्टीकरण किया गया है।

पारसः रूप :- पारस के दो रूप-स्थूल और सूक्ष्म-बताए गए हैं। स्थूल पारस तांबा आदि धातुओं को स्वर्ण बना देता है। स्वर्ण केवल स्थूल एवं त्याज्य 'माया' का ही एक अंश मात्र है :- जैसे तांबे अरु अवर धातु कउं पारस बिना स्वरन करना कठन होता है। अरु इस विदिआ कउं भी सभ कोउन नहीं पछाण सकता'।

`तैसे ही मानुष रूपी जो धातु है। तिस कउं पसुअहु के सुभाव रूपी मैल ते सुध करणा अरु पूरनभागहु विषै प्रापत होवणा। सो इह भी विदिआ महांगुह्ज है`।

`तांबे अरु स्वरन विषै रंग ही का भेद है। अरु उस स्वरन करके माइआ ही के भोग प्रापत होते हैं। सो माइआ आप ही नासवंत है। तां ते माइआ के भोग भी अल्प काल विषै परिणामी होते हैं`।

परन्तु इस स्थूल पारस का भी मिलना कठिन है :-

` तां ते जाणु तूं जो तांबा अरु अवर धातु तब ही सुवरन होती है। जब प्रथमे पारस की प्रापति होवै। सो इह अस्थूल पारस भी सरब ठउड़ अर सभ किसी के ग्रिह मों नहीं पाइआ जाता। सो किसी सिध अथवा किसी महाराजे के भंडार विषै होता है`।

<u>पारस : `उत्तमताई`</u> :- `पारस` का सूक्ष्म रूप `उत्तमताई` बताया गया है। स्वभाव की उत्तमता अर्थात् `ऊर्ध्वगति` ही सच्चा पारस है। इस विचार की पुष्टि इस प्रकार की गई है :- ` तां ते इह जो ग्रिंथ है सो मानो भागहु (भाग्यों) का पारस है। अरु इस विषै जो सुंदर बचन हैं सोई पारस रूप है। तां ते इस ग्रिंथ का नाम पारसभाग राखा है। काहे ते जो पारस <u>उत्तमताई</u> का नाम है।`

<u>`पारस :` निवृत्ति-वचन`</u> :- इस ऊर्ध्वगति की प्राप्ति साधक को `निवृत्ति-वचन` रूपी पारस से होती है :- `बहुड़ि इह जो निरविरत बचन रूपी पारस है। सो महां कसेष ते बसेष है। काहे ते जो इनहु बचनहु करि महांरसातल ते ऊरध गति कउं पहुंचता है तब अबिनासी भागहु कउं पावता है। सो वहु कैसा सुख है। जो उसका काल और अंत नहीं। - - बहुड़ि दुख रूपी मैल भी उस परम सुख विषै सपरस नहीं करती। तां ते इस ग्रिंथ का नाम पारसभाग कहा है`।

<u>भगवद् भंडार : संत हृदय</u>। इस सूक्ष्म पारस की प्राप्ति साधक को भगवान् के भंडार से होती है। भगवान् का भंडार 'संतों का हृदय' है :-

'सूक्षम पारस भी भगवंत ही के भंडार विखै है। सो भगवंत का रिदा संतजनहुं का रिदा है। तां ते जो कोई पुरष इस पारस कउं संतहु के रिदे बिना अउर ठउड़ विखै ढूंढता है। सो बिअरथ ही भटकता फिरता है। अरु उस कउं प्रापति किछ नहीं होता। इसी कारन ते वहु पुरष अंत काल निरफलताई कउ प्रापति होता है'।

इन संतों को 'भगवंत' ने इसी विशेष उद्देश्य से जगत में भेजा है :-

' तां ते भगवंत ने अपणी दइआ करके इह भी बड़ा उपकार कीआ है। जो संतजनहु कउं इस जगत विखै कलिआण के नमित भेजिआ है। जो वहु संतजन बचनहु रूपी पारस कउं प्रसिध करहिं। अरु जीवहु कउं उपदेसु करहिं'।

संत-हृदय 'बचन' (ज्ञान) का भंडार है और इन 'बचन' के उपदेश से साधक माया के आकर्षण से विरक्त हो कर 'भगवंत' की शरण में जाता है :-

'सो इन बचनहु रूपी पारस का तातपरज इह है जो प्रिथमे माइआ के पदारथहुं ते विरकतचित होवै। अरु भगवंत की सरण आवै'।

स्पष्ट है कि 'पारस' को रसायन-शास्त्र 'कीमिया गिरी' के स्थूल धरातल से ऊपर उठा कर विभिन्न आध्यात्मिक तत्वों के साथ बड़ी कुशलता के साथ जोड़ा गया है। इसके साथ ही 'भाग' (भाग्य) को भी विशुद्ध अध्यात्म-दृष्टि से एक नया सन्दर्भ दिया गया है।

पाद टिप्पणियां

(1 से 23)

1- टहिल (सेवा)

2- संतरत्नमाल : पृष्ठ 111

3- देखिए : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य अध्याय : 3
(डा० गोविंद नाथ राजगुरु)

4- संतरत्नमाल : पृष्ठ 253-54

5- संतरत्नमाल : पृष्ठ 1?,88,100 आदि

6- विस्तार के लिए देखिए :
पारसभाग : (संपादक : प्रीतम सिंघ भूमिका)

7- इस सम्बन्ध में यह उल्लेख महत्वपूर्ण है :-
'गाढू एक साध, अर दूसरा भाई मंगू जी एह दोनों साध फारसी पढ़े हुए थे। अर भाई अड्डण जी पास रहिते थे। सो कथा सुनावे पारसभाग की अर मसनवी की' (संतरत्नमाल : पृष्ठ 293)

8- यह प्रति मोती बाग पटियाला के संग्रह में 1?1 क्रमांक पर संकलित है। यह प्रति अड्डणशाह के निधन के लगभग 50 वर्ष बाद लिखी गई। (1808 संवत्) 'पारसभाग' की अन्य प्राचीनतम प्रतियों में इस प्रकार के कर्तृत्व-सूचक उल्लेख निरपवाद रूप से मिलते हैं। गुरुमुखी में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त तथा मुद्रित प्रतियों में भी 'पारसभाग' को अड्डणशाह की कृति बताया गया है। परन्तु नागरी अक्षरों में छपे 'पारसभाग' में यह सूचना नहीं दी गई। विस्तार के लिए देखिए :' हथ लिखतां दी सूची' जिल्द 1

9- मुखपत्र : प्रकाशन संवत् 1933 (1876ई०)

10- 'श्री बरन हरि बिसथार' : पृष्ठ 128

11- 'देखिए :' राबिआ दा मिस्टिक एंड हर फेलो सैंट्स इन इस्लाम'

12- 'सूफीज्म' (ए. जे. आरबैरी) पृष्ठ 81-82

13- मेकडानल्ड के अनुसार 'इह्या' मूलतः दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। प्रत्येक अर्ध दो दो खण्डों (' रुब ') में विभक्त है। इस प्रकार कुल चार खण्ड हुए। प्रत्येक खण्ड में दस दस अध्याय हैं। कुल अध्याय 40। (देखिए : इन्साईक्लोपीडिया आफ इस्लाम।

14- देखिए :' इन्साईक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स'
(' एथिक्स: मुस्लिम')

15- 'कीमिया' की इस प्रति के आरंभ में 'आग़ाज़-ए-किताब उनवान-ए-अव्वल सिनाख्त ने खीशस्त' अर्थात् किताब की शुरुआत और पहला शीर्षक अपनी पहचान।
तुलना: 'खिआउ अपणी पछाण का (पारसभाग) इसके अतिरिक्त चार (खण्ड) तथा दस (अध्याय) इन संख्याओं की योजना भी किसी रहस्यमय संकेत की परिचायिका है। देखिए :' इन्साईक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स' (एथिक्स : मुस्लिम)

16- 'कीमिया' में 'रुक्न-ए-चहारम' (चौथा खंड) का शीर्षक है 'अरकान-ए-मुसल्मानी'। इस्लाम से संबंधित तौबह, सब्र, शुक्र जैसे तत्व इस 'रुक्न' के दस 'अस्लों' (अध्यायों)में वर्णित हैं। इस प्रकार के नगण्य से अन्तर लिपिकों के कारण भी आ गए हैं। अन्यथा 'इह्या' और 'कीमिया' की संरचना सामान्यतः एकरूप है।

17- 'फील्ड' के अनुसार 'कीमिया' के प्रथम चार अध्यायों में 'हदीस' के इस प्रसिद्ध वचन: -' हो हू नोज़ हिमसेल्फ नोज़ गाड' (अर्थात् आत्मज्ञानी ही ब्रह्मज्ञानी है) की व्याख्या की गई है।' दी आलकैमी आफ हैप्पीनेस' सी० फील्ड (भूमिका: पृष्ठ 11)

18- 'पारसभाग' की एक अन्य हस्तलिखित प्रति (एम एस 385 पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़) में प्रकरण 4 से 13 सर्ग हैं। इस वैषम्य का कारण बहुत स्पष्ट है।

'पारस भाग' में 'सर्गों' का एक आन्तरिक विभाजन 'विभाग' नाम से भी प्रायः मिलता है। कई प्रतियों में 'विभाग' स्पष्टतः उल्लिखित मिलता है तो कई प्रतियों में लाल स्याही से 'शीर्षक' की सूचना मात्र दी जाती है। कुछ सर्गों में इन विभागों की संख्या 14-15 तक जा पहुंची है। इन 'विभागों' को कई लिपिकों ने भ्रान्ति से 'सर्ग' मान लिया और इस प्रकार सर्गों की संख्या में कई बार वैषम्य पाया जाता है।

19- 'पारसभाग' की इन विशिष्ट प्रतियों का विवरण डा० राजगुरु ने दिया है :-

'क' प्रति :- प्रो० प्रीतम सिंह के निजी संग्रह में विद्यमान। प्रतिलिपि संवत् 1851। संभवतः 'पारसभाग' की यह प्राचीनतम प्रति है।

'ख' प्रति :- सिक्ख रैफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर' में उपलब्ध। प्रतिलिपि संवत् 1900। देखिए : 1. 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य' : पृष्ठ 1?2-24
2. ' हथ लिखतां दी सूची'

20- 'पारसभाग' की मुद्रित प्रतियों में

क- 'छापेखाना नानक प्रकाश, शहर सिआलकोटि' की 'लीथो' प्रति कदाचित् प्राचीनतम प्रति है (संवत् 1933)

ख- पत्थर के छापे की एक प्रति 'पारसभाग क्रित गाई' लोक अड्डणशाह' (संवत् 1960)

ग- 'पारसभाग' : संपादक प्रो० प्रीतम सिंह (प्रथम चार अध्याय मात्र : 1952 ई०) ये गुरुमुखी प्रतियां उल्लेखनीय हैं।

21, 'पारसभाग' का नागरी रूपान्तर पंजाब की मुद्रित प्रतियों के आधार

पर तैयार किया गया था। यहां तक कि 'मुखपृष्ठ' पर जो 'संदर्भ वाक्य' दिए गए हैं वे चंदासिंघ 'दफेदार' द्वारा संपादित पारसभाग के 'मुखपृष्ठ' से अक्षरशः मिलते हैं। शेष सामग्री पारसभाग (लीथो) से ली गई जान पड़ती है।

22- पारसभाग की प्राचीन प्रतियों में अपभ्रंश युग से आए विभक्ति-चिन्ह पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। खड़ी बोली गद्य में इन चिन्हों से चिन्हित अंश बहुत कम हैं। अतः इन चिन्हों का ऐतिहासिक महत्व है। 'वहु', 'अंतु' तथा 'अणुहु' तथा 'बुध्यिवानहु' जैसी 'उकार-बहुलता' पारसभाग की प्राचीन प्रतियों में सुरक्षित है। परन्तु 'पारसभाग' के नागरी रूपान्तर में भाषा का प्राचीन रूप जान-बूझ कर समाप्त कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त मूल 'पारसभाग' में उपलब्ध 'भगवंत' जैसे व्यापक शब्दों के स्थान पर 'रामचंद्र' 'सियाराम' अथवा 'राघवु' जैसे वैष्णव-सम्प्रदाय के शब्द रख दिए हैं।

इसी प्रकार 'शैतान' के स्थान पर 'कलि' शब्द रख दिया गया है। 'पारसभाग' (गुरुमुखी प्रतियों) में 'शैतान' का अनुवाद 'माया' 'छल' जैसे शब्दों के साथ किया गया है।

23- विस्तार के लिए देखिए: 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य' डा० राजगुरु (पृष्ठ 130-32)

ccccc
ccc
c

अध्याय-4

अल-गज़ाली : व्यक्तित्व : कृतित्व

1, व्यक्तित्व - (क) इस्लाम का विवेक

(ख) - अज्ञेयवादी

(ग) - प्रतिगामी विचारधारा

(घ) -उपलब्धियाँ

(ङ) - अन्तर्विरोध

2, गज़ाली : चिन्तनधारा

क- संशयवादिता

ख- सूफी चिन्तन

ग- 'कुन्नत' पर
पुनर आस्था

3, संगीत-नृत्य

4, गज़ाली : इस्लामी दुनिया

5, गज़ाली : कृतित्व

क- इह्या-उल-उलूम

ख- इह्या : प्रभाव

ग- इह्या : सार्वजनीनता

(पाद-टिप्पणियाँ)

ग़ज़ाली : व्यक्तित्व

ग़ज़ाली[1] का जन्म उत्तरी ईरान (खुरासान) के एक गांव तूस में हुआ। ग़ज़ाली और उसके भाई अहमद को उसके पिता ने मरते समय एक सदाचारी सूफ़ी के हाथ सौंप दिया। इस अज्ञातनामा सूफ़ी ने इन दोनों भाइयों की प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा तथा पालन-पोषण का समुचित प्रबन्ध किया।

इस प्रारंभिक शिक्षा के बाद ग़ज़ाली और उसका भाई अहमद[3] दोनों ही 'फ़िक़' (इस्लामी धर्म) की शिक्षा प्राप्त करने के लिए 'मदरसे' में गए। इसके बाद ग़ज़ाली 'नेशापुर' में 'इमाम-उल-हरमैं' का शिष्य बना। अन्ततः ग़ज़ाली एक प्रसिद्ध शास्त्र-वेत्ता, प्रचण्ड तार्किक और प्रतिष्ठित लेखक के रूप में इस्लामी दुनिया के सामने आया।

'इमाम-उल-हरमैं' की मृत्यु के उपरान्त ग़ज़ाली 'सेल्जुक'[4] शासक-विशेषतः उनके वज़ीर 'निज़ाम-उल-मुल्क' - उन दिनों विद्वानों और तत्ववेत्ताओं के प्रसिद्ध संरक्षक थे। विद्वानों के इस मण्डल में ग़ज़ाली को अभूतपूर्व सम्मान मिला। 'सेल्जुक' शासकों ने उसकी प्रतिभा और उसके मूल्यवान् अध्ययन को देखते हुए उसे बग़दाद के प्रसिद्ध 'निज़ामिया मदरसा' में अध्यापक नियुक्त किया। इतना ही नहीं उसे 'सेल्जुक' साम्राज्य का 'लीगल एडवाइज़र' भी बनाया गया।

(क) <u>इस्लाम का 'विवेक'</u> :- बग़दाद में ग़ज़ाली की प्रतिभा को इस्लामी दुनिया का सर्वोच्च सम्मान मिला। 'हुज्जत -उल-इस्लाम' (इस्लाम का 'विवेक' या 'प्रमाण') विरुद् भी उसे यहीं मिला। इसके बाद 'अल-इमाम-अल-जलील' (महान् नेता) और 'ज़ैन-उद्दीन' (धर्म-अलंकार) जैसे अनेक विरुद् भी उसे इस्लामी दुनिया से मिले। परन्तु वैभव और सम्मान के इस जीवन से ग़ज़ाली शीघ्र ही ऊब गया, और लगभग चार साल बग़दाद में रहने के बाद

'दरवेश' बन कर 'इबादत' करने के लिए वह बग़दाद से निकल पड़ा (1095 ई)

इस यात्रा का एक राजनीतिक कारण भी बताया जाता है। बग़दाद में उसके आश्रयदाता 'निज़ाम' की हत्या कर दी गई थी (1092 ई)। ग़ज़ाली 'निज़ाम' के हत्यारों से भयभीत था और इस परिवर्तित परिस्थिति में बग़दाद छोड़ देना संभवतः उसकी विवशता रही हो। इसके साथ ही यह तो मानना ही पड़ेगा कि बग़दाद का सम्मानित और वैभवपूर्ण जीवन ग़ज़ाली के अन्तस् को तृप्त न कर सका था।

(ख) <u>अज्ञेयवादी :-</u> बग़दाद में रहते हुए ग़ज़ाली पूर्णतः 'अज्ञेयवादी' (संशयवादी 'स्कैप्टिक') बन गया। अब उसे धर्म पर कोई आस्था नहीं रही, और साथ ही ज्ञान की उपादेयता भी उस के लिए समाप्त हो गई। वह सोचता था कि बौद्धिकता का केवल एक ही उद्देश्य है और वह है 'बौद्धिकता पर से आस्था उठ जाना'। 'तक़लीद' (धार्मिक पुस्तकों) पर से तो उसकी आस्था बहुत पहले समाप्त हो चुकी थी।

इस आन्तरिक टूटन के साथ बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में ग़ज़ाली 'दरवेश' बन कर बग़दाद से निकल पड़ा। इसी यात्रा के दौरान 'दमिश्क' में उसने 'इह्या' की रचना की। 'येरुशलम' से लेकर 'अलेग्जेंड्रिया' तक ग़ज़ाली खूब घूमा फिरा। अंत में 'कुरान' पर अटूट आस्था लेकर तथा 'कुरान' की शिक्षाओं का प्रसार करने के उद्देश्य से ग़ज़ाली अपने घर 'तूस' लौट आया। यहीं पिछले 'निज़ाम' का पुत्र 'फ़ख़र-उल-मुल्क' ग़ज़ाली से मिलने आया और उसी की प्रार्थना पर ग़ज़ाली ने 'नैशापुर' के निज़ामिया मदरसे में अध्यापक बनना स्वीकार किया। यहां कुछ दिन पढ़ा कर ग़ज़ाली फिर 'तूस' लौट आया।

(ग) <u>प्रतिगामी विचारधारा :-</u> ग़ज़ाली अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, अपनी अपूर्व प्रतिभा तथा अपने विशाल अध्ययन और अनुभवों के कारण इस्लामी जगत में बहुत प्रसिद्ध रहा। कुछ मिला कर इस्लाम और उसके दर्शन तथा आचार-विचारों को

`कुरान` के स्थूल अर्थों के साथ बांध देने में गज़ाली ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस्लाम का जो तर्कसंगत रूप `फिक` और `मुअतज़िली` विचारकों के प्रभाव से पनप रहा था, गज़ाली ने इस्लाम के इस रूप का प्रत्याख्यान किया और उसके स्थान पर परम्परा-प्राप्त दृष्टि आचार विचार को फिर से प्रतिष्ठित किया। गज़ाली के इस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण ने इस्लाम को `शरह` के `सुन्नत` के साथ मज़बूती के साथ बांध दिया। यही कारण है कि ब्राउन[5] जैसे कितने ही विद्वान गज़ाली को `प्रतिगामी शक्तियों का समर्थक` (चैंपियन आफ आर्थोडाक्सी) बताते हैं। इस्लामी दुनिया में गज़ाली की इस सफलता को बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।[6] यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण[7] हैं कि यदि गज़ाली ने अपने युग तथा अपने पूर्ववर्ती विचारकों की प्रगतिशील दृष्टि को अपना लिया होता तो शायद इस्लाम का इतिहास तथा उसका पूरा दर्शन कुछ दूसरे ही रूप में हमारे सामने आता।

(घ) उपलब्धियां :- गज़ाली की उपलब्धियों को मैकडानाल्ड ने इस प्रकार शब्द-बद्ध किया है :- `उस ( गज़ाली ) ने इस्लाम को उसकी मूल-दृष्टि तथा उसके इतिहास के साथ फिर से जोड़ दिया और इस्लाम के आचार-विचार में `भावनात्मक` धर्म को भी स्थान दिलाया`।

परन्तु कुल मिलाकर गज़ाली की दृष्टि अपने आन्तरिक विरोधों से ग्रस्त है। गज़ाली एक ओर तो इस्लाम की सभी परम्पराओं और रूढ़ियों का अंध-समर्थन करता है तो दूसरी ओर ज्ञान और तर्क का दावा भी नहीं छोड़ पाता। इसी प्रकार `कुरान` के प्रत्येक शब्द को अक्षरशः सत्य और सनातन मानता हुआ गज़ाली सूफी विचार-धारा से भी जुड़ा रहना चाहता है।

(ङ·) अन्तर्विरोध :- गज़ाली के इस अन्तर्विरोध को `डाक्टर ताराचंद` ने इस प्रकार प्रकट किया है :-

'निराश और संशयग्रस्त हो कर उस (गज़ाली) ने 'सर्व-ब्रह्मवाद' की आत्म घाती दृष्टि अपनाई, और इस प्रकार विज्ञान (तर्क) सम्मत चिन्तन का गला ही घोंट दिया"[9]।

गज़ाली के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और उसकी उपलब्धियों पर मैक्डानाल्ड की यह टिप्पणी[10] उल्लेखनीय है :- 'वह (गज़ाली) कोई ऐसा विद्वान जिसने कोई नया मार्ग खोज निकाला हो न था। परन्तु उसका व्यक्तित्व इतना सर्वग्राही था कि जिस पगडंडी पर चलने का उसे अवसर मिला उस पगडंडी को उसने राजमार्ग बना दिया। यही उसका चरित्र है। दूसरे लोग उससे कहीं अधिक प्रचण्ड तार्किक, अधिक बहुश्रुत धर्मशास्त्री और अधिक प्रतिभाशाली संत रहे हों, परन्तु उसने अपने वैयक्तिक अनुभवों के माध्यम से दिव्य-सत्ता को पहचाने पाने की अद्भुत क्षमता का विकास अपने व्यक्तित्व में कर लिया था। इस क्षमता ने जहां उसके अशांत तथा क्षुब्ध अन्तस् को शान्ति प्रदान की, वहां इस्लाम के अस्तित्व को एक नया आयाम भी दिया'।

2) गज़ाली : चिन्तनधारा :

गज़ाली के समग्र-चिन्तन को-क्रमिक विकास की दृष्टि से तीन आयामों में विभक्त किया जा सकता है :-

क) अज्ञेय (संशय) वादिता

ख) सूफी चिन्तन

ग) 'सुन्नत' पर पुनः आस्था

(क) संशयवादिता :- 'इमैन्युएल कांट' ने लिखा है कि प्रत्येक दर्शन के मूल में 'संशय' रहता है। 'संशय' के अभाव में प्राचीन अथवा परम्परा-प्राप्त विचारधारा

पर प्रश्न-चिन्ह लगाना संभव नहीं हो सकता ।

गज़ाली के मन में 'संशय'[11] के बीज बहुत पहले से विद्यमान थे । सूफ़ीवाद के उदार चिन्तन ने गज़ाली की इस संशयवृत्ति - परम्पराओं पर प्रश्न-चिन्ह लगाने का उसका मानसिक साहस- को निर्भीकता के साथ जन-सामान्य के सामने रखने में सहायता प्रदान की । इसी साथ ही यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि गज़ाली से पूर्व 'संशयवादिता' के बीज़ इस्लाम के कितने ही विचारकों के लेखन में पाए जाते हैं । गज़ाली से सौ वर्ष पूर्व 'अलबाकिल्लानी' (५वीं शती) इस्लामी 'संशयवादिता' का आदि पुरुष कहा जा सकता है ।[12]

गज़ाली की यह संशयवृत्ति निज़ाम-उल-मुल्क के उदार परिवेश में एक तर्क-संगत एवं बौद्धिक 'वाद' (' संशयवाद') के रूप में उभरी । गज़ाली के इस बुद्धि-प्रधान 'संशयवाद' को उसके अपने व्यापक तथा सर्वग्राही अध्ययन ने पूर्ण तथा गंभीर बनाने में सहायता दी ।' निज़ाम' के यहां रहते हुए उसने सभी उपलब्ध दार्शनिक सिद्धान्तों का गंभीरता से अवगाहन किया । इस्लाम और 'कुरान' से संबंधित सभी मत-मतान्तरों का उसने कूब परिशीलन किया । इस्लाम के अतिरिक्त यहूदी धर्म तथा यूनानी-दर्शन[13] से भी गज़ाली ने आन्तरिक परिचय प्राप्त किया । ' अल-मुनक़िज़-मिन-अल ज़लाल' में उसने अपने इस व्यापक अध्ययन का परिचय इस प्रकार दिया है :-

' मैं एक एक बातनी, (ब्राउन के अनुसार : 'इस्माइली') ज़ाहिरी, (' लिटरलिस्ट': ब्राउन) फिलासफ़ी, (दर्शनानुयायी) मुतकल्लिम, (वाद-विवादानुयायी) ज़िन्दीक (नास्तिक) से मिलता था और उनके विचारों को जानना चाहता था । चूंकि मेरी प्रवृत्ति आरम्भ से ही सच की खोज की ओर थी, इस लिए धीरे धीरे यह असर हुआ कि आंख मूंद कर पीछे चलने की बान छूट गई । जो धार्मिक विश्वास बचपन से सुनते सुनते मन में जम गए थे, उन से श्रद्धा

उड़ गई। मैंने तोबा इस तरह के अन्धानुसरण करने वाले विश्वास को यहूदी, ईसाई सभी से पाया है--- और अन्त में किसी बात पर विश्वास नहीं रहा। उस वक्त चार सम्प्रदाय मौजूद थे - मुतकल्लिम, बातनी, फिलसफी, और सूफी। मैंने एक एक सम्प्रदाय के बारे में जानकारी प्राप्त करनी शुरु की। अन्त में मैंने सूफीमत की ओर ध्यान दिया। --- सूफी आचार्यों ने जो कुछ लिखा था पढ़ डाला।[14] (उद्धृत: दर्शन-दिग्दर्शन:- राहुल सांकृत्यायन,पृष्ठ 145) ऐसा लगता है कि विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों का अध्ययन मनन करने से एक ओर तो गज़ाली की तार्किकता को एक नया आयाम मिला और साथ ही उन के सभी धार्मिक पूर्वाग्रह इसी अध्ययन के कारण छिन्न भिन्न हो गए।[15]

परन्तु इस 'संशयवाद' की तर्क-संगत परिणति गज़ाली के व्यक्तित्व अथवा उसकी दृष्टि में न हो सकी। 'संशयवादिता' के चरम क्षणों में गज़ाली को 'रोज़-ए-कयामत' (' ') का भय सताने लगा और शायद इसी भय के कारण वह बौद्धिकता को तिलांजलि देकर[16] फिर से 'शरह' और 'सुन्नत' के रास्ते पर लौट आया। वस्तुत: गज़ाली का मनोजगत् विशुद्ध तर्क-प्रधान चिन्तन-धारा के लिए नितान्त अनुपयुक्त था। इस्लाम की सरल मान्यताओं और परम्पराओं से जुड़ जाना उसके भावुक अन्त:करण की आन्तरिक विवशता जान पड़ती है।

'परन्तु 'संशयवादिता' से पूर्णत: गज़ाली कभी उभर न पाया। यही कारण है कि उसके लेखन में स्थान स्थान पर परस्पर विरोधी कथन मिलते चले जाते हैं। सूफियों के स्वर में स्वर मिला कर उसने कई बार अपने 'सूफी' होने का प्रमाण दिया, तो कई बार इस्लाम की सूफी-विरोधी मान्यताओं का भी समर्थन किया।' नमाज़' 'रोज़ा' आदि कितने ही परम्परागत विश्वासों के प्रति निष्ठा बनाए रखने वाला यह संशयवादी अपनी खिल्ली स्वयं उड़ाता हुआ दीख पड़ता है। इस प्रकार उसकी यह 'दुलमुल यकीनी' उसकी दृष्टि की धुरी-हीनता का का सबूत है।' एक पतित संशयवादी' की यही परिणति हो सकती थी।

डा० सर मुहम्मद, इकबाल ने `संशयवादिता` के बिन्दु पर `कांट` और ग़ज़ाली में पर्याप्त बौद्धिक समानता सिद्ध की है। परन्तु `कांट` का `संशयवाद` दिन प्रतिदिन प्रखर और स्पष्ट होता गया। इस के विपरीत गज़ाली `संशयवादिता` से हट कर फिर से आस्था से जुड़ गया। (देखिए :` दी रिकन्स्ट्रक्शन आफ रिलीजिअस थाट इन इस्लाम`)

(ख) <u>सूफी चिन्तन</u> :- `सूफी`[17] शब्द के चारों ओर विभिन्न तथा कभी कभी परस्पर-विरोधी विचारों - विशेषत: जीवन चर्याओं का एक अंबार सा लग गया है।[18] आज जहां इस शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक ऊहापोह उपलब्ध हैं, वहां इस शब्द से किसी एक निश्चित विचार-धारा का कोई संकेत नहीं मिलता।

ग़ज़ाली को बचपन से ही सूफीमत से परिचित होने का अवसर मिला। कालान्तर में अपने अध्ययन और अपनी आध्यात्मिक साधना के कारण ग़ज़ाली सूफीमत का प्रमुख व्याख्याता माना गया।` इह्या` के व्याख्याता सैयद मुर्तज़ा ने एक प्रामाणिक स्रोत के आधार पर ग़ज़ाली की यह स्वीकार-उक्ति उद्धृत की है :- `पहले मैं `दरवेशों` की `हाल` की स्थिति तथा सूफी मंज़िलों पर विश्वास नहीं करता था। परन्तु अपने `शेख` (गुरु) की कृपा से मुझे स्वप्न में प्रभु का दर्शन हुआ।`[19] अन्तत: ग़ज़ाली को सूफी सिद्धान्तों और साधना पद्धति पर पूर्ण रूप से विश्वास हो आया। बाद में तो ग़ज़ाली ने यहां तक कहा कि स्वयं हज़रत मुहम्मद भी सूफी थे और इसी साधना-पद्धति के द्वारा ही वे पैगम्बर बने"।

अन्तत: `सुन्नत` और सूफीमत को एक दूसरे के निकट लाने के सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। इस्लामी इतिहास ने सिद्ध कर दिया कि `फिक` (धर्म-शास्त्र) तथा फकीर (दरवेश: सूफी) परस्पर विरोधी तत्व हैं। निकल्सन ने लिखा है :-` ग़ज़ाली के समन्वय मूलक प्रशंसनीय प्रयत्नों के बावजूद `परम्परावादी` ( डॉगमैटिक थिओलोजी`) और रहस्यवादी मूलत: एक दूसरे के विरोधी बने रहे।[20]

शिया और सुन्नी दोनों ही फिरकों के अनेक शासकों ने सूफी विचार-धारा को कुचलने के व्यापक अभियान चलाए। बगदादी, हनबली, इब्न तैमियया जैसे विचारकों ने बौद्धिक स्तर पर सूफी मत को समाप्त करने का प्रयास किया।

ईरान में शिया शासक 'आका मुहम्मद -अली' ने सूफी मत को ध्वस्त करने के अनेक प्रयत्न किए। वह 'सूफी-कुश' नाम से प्रसिद्ध था। भारत के मुहम्मद इब्न तुग़लक ने भी सूफियों पर भयंकर अत्याचार किए। तुर्की में मुस्तफ़ा कमाल पाशा ने भी सूफी मत पर अनेक प्रतिबंध लगाए[23] (1925)।

वस्तुतः सूफी मत का औदार्यकृत उदार और मानवीय दृष्टिकोण ही गज़ाली के जीवन-दर्शन के केन्द्र में है। ऐसा लगता है कि सूफी मत की उदार-दृष्टि के[2] कारण ही गज़ाली 'ग्रंथों' के प्रति अपनी अन्ध-आस्थाओं के चंगुल से छूटा।

संभवतः गज़ाली को उदार एवं सर्वग्राही दृष्टि का महान् दाय सूफी विचार-धारा से मिला। इसी दृष्टि के कारण गज़ाली एक ओर तो 'भौतिकी' के अनुसार ज़मीन को गोल स्वीकार कर लेता है तो दूसरी ओर इस्लामी मान्यता के आधार पर ज़मीन को 'खुदा' के बिछाए कालीन' के रूप में भी स्वीकार कर लेता है। स्पष्ट है कि गज़ाली के सभी आग्रह-विशेषतः पूर्वाग्रह-सूफी मत के उदार चिन्तन के कारण समाप्त हो चुके थे। फलतः उसके चिन्तन और लेखन में एक प्रकार की सार्वजनीनता आ गई। यही कारण है कि गजाली को धर्म-सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठ कर पढ़ा और समझा जा सकता है।

(ग) 'सुन्नत' पर पुनः आस्था :- मन में अशान्ति का ज्वार-भाटा छिपाए तथा रुग्ण शरीर का भार उठाए गज़ाली लगभग मानसिक संतुलन खो कर -'दरवेश' के रूप में बगदाद से निकल पड़ा।[23] प्रायः दस वर्षों तक अध्ययन-मनन-चिन्तन

तथा विद्वानों और तत्व-वेत्ताओं के साथ ज्ञान-चर्चा तथा 'काश्फ' के 'भावन' से उसकी दीर्घ-कालीन भटकन समाप्त हुई 'शरह' और 'सुन्नत' के प्रति उसकी पुरानी निष्ठा फिर से जाग्रत हुई ।

इस प्रकार ग़ज़ाली घूम फिर कर उसी बिंदु पर जा पहुंचा जहां से वह आगे बढ़ा था । बौद्धिकता के प्रति उसकी वितृष्णा बढ़ गई और दर्शन (विशेषतः ग्रीक दर्शन) तथा तर्क उसे हेय जान पड़ने लगे[24] । वस्तुतः तर्क, दर्शन और बौद्धिकता को तिलांजलि दिए बिना परम्परा-प्राप्त मान्यताओं को फिर से अपना लेना संभव ही न था ।

ग़ज़ाली के इस परिवर्तित रूप को उसके समकालीन लेखकों तथा विचारकों ने संशक दृष्टि से देखा । उनके लिए यह विश्वास कर पाना कठिन था कि ग़ज़ाली जैसा बौद्धिकता का प्रचण्ड समर्थक एकाएक इतना सरल विश्वास-परायण बन कर पुरानी परम्पराओं से इतनी जड़ता के साथ कैसे जुड़ गया ? 'इब्न रुश्द'[25] ने कुलैशाम ग़ज़ाली को 'पतित दार्शनिक' (' रेनेगेड फिलासफर') कहा ।

इस प्रत्यावर्तन का एक कारण यह भी रहा होगा कि उस युग में पूरी इस्लामी दुनिया पर 'धर्म' के नाम पर चलने वाला पाखण्ड या दूषित कर्म-काण्ड हावी हो चुका था । पाखण्डी सूफी 'दरवेश' लोगों को गुमराह कर रहे थे तो दूसरी ओर ग्रीक-दर्शन का व्यापक प्रभाव इस्लाम पर पड़ रहा था । ग्रीक-दर्शन पर आस्था रखने वाले बहुत से मुसलमान अपने 'दीन' और 'ईमान' से हाथ धो बैठे थे[26] ।

संकट की इन घड़ियों में ग़ज़ाली जैसे एक प्रतिभाशाली तथा सूझ-बूझ वाले नेता की आवश्यकता इस्लामी दुनिया को थी । संभवतः इन परिस्थितियों ने भी ग़ज़ाली को इस्लाम के 'मूल' रूप को पुनः प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी थी । अन्ततः अपने जीवन की संध्या में (अपनी मृत्यु से

केवल सात आठ वर्ष पूर्व) गज़ाली ने 'नैसाबुर' के 'मदरसा' को अपनी विचार-धारा के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बनाया ।

'दीन' और 'कलाम-ए-अल्लाह' की सभी मान्यताओं के प्रति गज़ाली के इस मानसिक और बौद्धिक प्रत्यावर्तन की पूरी प्रक्रिया उसकी सर्वाधिक चर्चित कृति 'इह्या-उल-उलूम'[27] ('इह्या-उलूम-अल-दीन' : नामांतर) में स्थान स्थान पर पाई जा सकती है ।

इस प्रकार गज़ाली की आध्यात्मिक यात्रा सूफीमत और संशयवाद के 'मुकामों' पर रुकती-टिकती अन्त में 'शरह' पर पूर्ण विश्वास ले आने के साथ समाप्त होती है । इस पूरी यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर गज़ाली की ईमानदारी, सच्चाई, और उसकी स्पष्टवादिता प्रत्येक पाठक को अभिभूत करती है । अपने जीवन तथा चिन्तन-चिन्तन की संध्या में गज़ाली का जो रूप उभरता है वह है एक आस्थावान् 'शरह' के पाबंद और 'रोज़-ए-कयामत' के ख़ौफ़ से ग़मज़दा मुस्लिम साधक का ।

3. संगीत: नृत्य

संगीत विशेषत: नृत्य तथा कभी कभी कविता को भी इस्लाम की मूल विचार-धारा या आचार-संहिता के प्रतिकूल समझा जाता रहा है । यद्यपि संगीत नृत्य को 'कुर्आन' या 'हदीसों' के स्पष्ट-आधार पर भी अविहित सिद्ध करना संभव नहीं हो सका । फिर भी प्राय: सभी पुरातन-पंथी मुस्लिम चिन्तकों ने संगीत नृत्य को इस्लाम की दृष्टि से अमान्य ठहराया है ।[28]

हज़रत उमर (दूसरे ख़लीफ़ा) के अनुसार :- `संगीत (मुसीक़ी`) की धुन कान में पड़ने पर एक बार हज़रत मुहम्मद ने कान बंद कर लिए थे।`

इसी प्रकार नृत्य (`रक्स`) को इस्लामी परम्पराओं के अनुसार प्राय: अविहित ही माना गया है। यद्यपि इस संबंध में स्पष्ट निषेध-परक कोई भी वक्तव्य उद्धृत नहीं किया जा सका, फिर भी सामान्यत: नृत्य को इस्लाम की परिधि में अमान्य ही ठहराया गया।[2]

पुरातन पंथियों की इस दृष्टि के कारण सूफ़ी साधना पद्धति में स्वीकृत संगीत-नृत्य प्राय: सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे। अल-ग़ज़ाली ने `कुरान` तथा `हदीस` संबंधी अपने विशेष अध्ययन तथा अपनी बहुमुखी प्रतिभा के सहारे संगीत और नृत्य के प्रति इस्लामी जगत में सामान्यत: विद्यमान दुर्भावना को न केवल निरस्त ही किया, अपितु इस दुर्भावना का यथासंभव रूप से उदात्तीकरण भी किया[3]।

यद्यपि ग़ज़ाली का यह प्रयास सिद्धान्तत: सर्वमान्य न हो सका, फिर भी `कुरान` तथा `हदीस` के आधार पर संगीत-नृत्य को साधना-पद्धति के रूप में स्वीकृत कराने में ग़ज़ाली को पर्याप्त सफलता मिली। सच तो यह है कि संगीत-नृत्य के प्रति कुछ क्षेत्रों में जो दुर्भावना विद्यमान थी, उसे यत् किंचित रूप से शिथिल करने में केवल ग़ज़ाली को ही इतनी सफलता मिली।

इतना ही नहीं कुछ आधुनिक लेखकों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ग़ज़ाली परिवार-नियोजन का भी समर्थक था।[31]

4. ग़ज़ाली : इस्लामी दुनिया

ग़ज़ाली अपने युग का एक महान् प्रतिभाशाली तथा बहुश्रुत व्यक्ति था उसने इस्लाम के कुछ मूल विश्वासों को अधिकाधिक बुद्धि संगत बनाने का प्रशंसनीय

प्रयास किया। अपने इस प्रयास को सफल बनाने के लिए गज़ाली ने अरस्तू से लेकर सूफी विचारों और साधना प्रकारों का इस्लाम के साथ सामंजस्य स्थापित किया।

'कश्फ' और 'कलाम-ए-अल्लाह' का सामंजस्य गज़ाली ने बड़ी सावधानी और कुशलता से किया। 'रसूल' और 'कुरान' के कितने ही वचनों की आध्यात्मिक (रहस्यवादी) व्याख्या कर गज़ाली ने इस्लामी रहस्यवाद की स्थापना की।

फलतः गज़ाली द्वारा प्रतिपादित इस्लाम एक ओर तो कट्टरपंथी 'मोमिनों' तथा दूसरी ओर सूफीवादियों (रहस्यवादियों) को भी समान रूप से ग्राह्य हो सका। गज़ाली द्वारा प्रतिपादित इस्लाम के इस सर्वग्राह्य रूप के बारे में 'होम्स' ने लिखा है :- 'गज़ाली जितने भी उत्तम, उपादेय तथा उदात्त तत्व जिस किसी भी स्रोत से संकलित कर सका, वे सब तत्व उसने इस्लाम पर न्योछावर कर दिए।' 'कुरान' की मान्यताओं को उसने शुचिता और विद्वत्ता के संभार से मंडित किया। 'कुरान' की मान्यताओं का यह नया रूप एक ईसाई के लिए भी अमान्य नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त उसकी अपनी व्यवहार-शुचिता और उसकी[32] उदात्त आत्म-परक दृष्टि ने उसके पूरे लेखन को एक भव्य महिमा प्रदान की'। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गज़ाली की विचार-धारा तथा साधना-पद्धति को इस्लामी क्षेत्रों में एकस्वर से स्वीकृत किया गया। सूफी केन्द्र (कुछ एक अपवाद छोड़कर) अवश्य ही गज़ाली का समर्थन करते रहे। परन्तु सामान्यतः गज़ाली को एक दुर्दान्त विरोध का सामना अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक करना पड़ा। 'इब्न रश्द' ('एवरोस') जैसे दर्शन शास्त्री गज़ाली का विरोध इस लिए करते थे कि उसने तर्क और दर्शन की पद्धति छोड़कर 'शरह' की शरण फिर से ले ली थी।

इसके विपरीत 'शरह' के पाबंद लोग गज़ाली से इसलिए नाराज रहे

कि वह 'शरह' (कलाम-ए-अल्लाह) को तर्क (दर्शन) की कसौटी पर रख कर परखता था।[33] इन दो दृष्टियों के द्वन्द्व में गज़ाली का लेखन और उसकी पूरी दृष्टि बार बार क्षत-विक्षत हुई।

इसके साथ साथ इस्लामी क्षेत्रों में जब जब सूफ़ी मत के प्रति विरोध उभरा (इस उभार के रक्त-रंजित, लूट-पाट से भरे पुरे तथा ग्रंथ-दाह से कुत्से अनेक अवसर इस्लामी इतिहास में आए हैं) तब तब गज़ाली और उसके लेखन को न केवल नकारा ही गया बल्कि उसे 'नेस्तनाबूद' करने में कोई कसर न छोड़ी गई।[34] यहां तक कि गज़ाली की किसी भी रचना को पास रखने वाले के लिए मृत्यु-दण्ड तक दिया गया।

गज़ाली आंतरिक द्वन्द्व से भीतर ही भीतर तो टूट ही चुका था, उस पर इस पाशविक विरोध के कारण उसकी स्थिति और भी बिगड़ी। इतना भयानक आघात वह सहन न कर सका और बेचारा असमय में ही चल बसा। परन्तु आज इस्लामी देशों और यूरोप के कितने ही केन्द्रों में गज़ाली की 'दृष्टि' और उसके पूरे 'लेखन' का फिर से मूल्यांकन किया जा रहा है। सैयद मुर्तज़ा ने 'इह्या' की 10 भागों में व्याख्या (काहिरा सन 1733) की,[35] और निश्चय ही इस उपक्रम से गज़ाली के 'लेखन' को पुनर्जीवन मिला है।

निष्कर्ष :

बल गज़ाली को इस्लामी जगत में असामान्य कोटि का सम्मान और इसी कोटि का अपमान भी भोगना पड़ा। अपने युग के इस महान इस्लामी धर्म (विधि) शास्त्री को उसकी अपनी कुछ आपाततः 'शरह' विरोधी-विशेषतः बाह्य कर्म-काण्डों का प्रत्याख्यान करने वाली तथाकथित अनियमित-दिनचर्या के कारण कुछ क्षेत्रों में पतित मुसलमान भी माना गया।[36]

एक ओर जहां उसके अन्तिम लेख (विशेषत: 'इह्या') को 'कुरान' के बाद दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया, वहां उसकी कृतियों की सार्वजनिक रूप से होली भी जलाई गई। 'इह्या' को भी कई बार यह अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी।

ग़ज़ाली के उद्भट और सर्वग्राही चिन्तन को जहां उचित सम्मान मिला वहां उसके रहस्यवाद तथा 'शरह' की ओर लौट आने से तर्क और दर्शन के पण्डितों ने उसकी तीव्र भर्त्सना भी की।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ग़ज़ाली इस्लामी दर्शन, सूफी साधना तथा विधि-शास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। इस्लामी धर्म-शास्त्र की जो मर्यादा उसने स्थापित की, उसे इस्लाम के क्षेत्रों में 'लक्ष्मण-रेखा' मान लिया गया है।

वस्तुत: अल-ग़ज़ाली के बाद इस 'लक्ष्मण-रेखा' का उल्लंघन करने का साहस तक उत्तरवर्ती विचारकों ने नहीं किया। यही कारण है कि इस्लाम के किसी भी पक्ष का इतिहास लेखक अल-ग़ज़ाली की उपेक्षा नहीं कर सकता।

साथ ही यह भी एक कटु सत्य है कि गज़ाली जैसे उद्भट तार्किक ने इस्लाम को स्वतन्त्र चिन्तन से पूर्णत: वंचित कर 'शरह' की पुरातन-पंथिता से जोड़ दिया।

5. ग़ज़ाली : कृतित्व

ग़ज़ाली ने अपने सीमित से लेखनकाल (लगभग [illegible]0 वर्षों) में कितनी ही मूल्यवान कृतियां प्रस्तुत कीं। ब्राउन[37] के अनुसार ग़ज़ाली की कुल रचनाएं 70 के आसपास हैं। ये सभी कृतियां अभी प्रकाशित नहीं हो सकी हैं।

इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि ग़ज़ाली अपनी रचनाओं के छोटे मोटे रूपान्तर (संक्षिप्त संस्करण) भी तैयार करता रहता था । फलतः उसकी रचनाओं की संख्या ठीक से बताना संभव नहीं है ।

सैयद मुर्तज़ा ने 'इह्या' की व्याख्या (भूमिका) में ग़ज़ाली की कृतियों की एक सूची दी है । इस सूची के आधार पर ग़ज़ाली की कृतियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।

1. इस्लामी विधि-शास्त्र :-

क- 'किताब-अल-वजीज' 'फ़िक्' वर्ग के विचारकों की पारिभाषिका एक छोटी सी पुस्तिका ।

ख- 'अल मुस्तसफा-मिन-इल्म-अल-उसूल' 'इल्म' (पुस्तकीय ज्ञान) की अपेक्षा 'कलाम' (कुरान) की वरीयता प्रतिपादक पुस्तिका ।

2. दर्शन :- (तर्क-शास्त्र) प्रत्याख्यान-परक कृतियां :-

क- 'मीयार-अल-इल्म' 'इल्म' की विस्तृत मीमांसा ।

ख- 'मकासिद - अल फलसफा' दर्शन-शास्त्र के उद्देश्यों की प्रतिपादिका रचना ।

ग- 'तहाफत-अल-फलसफा' (दर्शन-शास्त्र का ध्वंस)

3. 'बातिनी' :- विरोधी कृतियां

क- अल-कुस्तास-अल - मुस्तकिम आदि

4. इस्लामी धर्म शास्त्र (' थियोलाजी ')

क- 'रिसाला - अल- कुदसिया' ~~आदि~~ इस कृति को 'क्वायद -अल - अकायद' नाम देकर 'इह्या' में भी संकलित किया गया है ।

5. गोपनीय-कृतियां :[39]

क. 'मिश्कात-अल - अनवार' आदि

6. आध्यात्मिक अनुभव :

क- 'इह्या - उल - उलूम' प्रकाशन 1872 ई० लखनऊ

ख- 'कीमिआ - ए - सआदत' प्रकाशन 1871 ई० लखनऊ ।

ग- 'मीज़ान-अल-अमल' आदि ।

7. राजनीति विषयक रचनाएं :[40]

क- 'नसीहात-अल-मुलूक'[41]

ख- 'सिर्र मसाबूक'[42]

8. आत्म-कथा परक :

क- 'मुनकिद-मिन-अल-जलाल'[43]

ख- 'मिश्कात-अल-अनवार'[44]

गज़ाली के इस समृद्ध लेखन को विश्व-भर में बहुत सम्मान मिला । इस्लाम और उसके दर्शन तथा उसकी आस्थाओं का इतिहास अल-गजाली का उल्लेख किए बिना कभी पूर्ण नहीं हो सकता । यही कारण है कि पिछली दो शताब्दियों में गज़ाली के लेखन को विश्व की अनेक भाषाओं में वर्णित होने का अवसर मिला । गज़ाली का यह अप्रतिम कृतित्व इस्लामी दुनिया में एक 'शाहकार' माना जाता है और इस सम्मान का समुचित अधिकारी गज़ाली है भी ।

'इह्या' अल गज़ाली के लेखन की एक विशिष्ट उपलब्धि है । मानवीय चिन्तन के क्षेत्र में इस कृति का मूल्य और महत्व अकल्पनीय है । इस कृति के माध्यम से गज़ाली के पूरे व्यक्तित्व को समझने में बड़ी सहायता मिलती है ।

(क) `इह्या-उल-उलूम` : - अल-गज़ाली के समस्त चिन्तन और उसकी साधना की चरम परिणति `इह्या` में हुई । `इह्या` को ही उसकी सर्वश्रेष्ठ 45 कृति माना गया । विश्व-भर में इस कृति को भूरि भूरि प्रशंसा मिली है । इस महिमामयी कृति का फ़ारसी रूपान्तर (कीमिया-ए-सआदत) स्वयं गज़ाली ने किया । इस फ़ारसी रूपान्तर का भाषानुवाद पंजाब में हुआ । यह भाषानुवाद `पारसभाग` नाम से प्रसिद्ध है, और इसी `पारसभाग` का आलोचनात्मक अध्ययन हमारे शोध प्रबन्ध का विषय है ।

(ख) `इह्या` : प्रतिपाद्य :- `इह्या` के पहले दो खण्डों में सर्वसाधारण के लिए धार्मिक विधि-विधान की व्यवस्था की गई है । किन्तु गज़ाली की दृष्टि स्थूल कर्म-काण्ड के धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिक तत्वों की प्रतिष्ठा करती है । प्रार्थना (नमाज़), व्रत (रोज़ा), तीर्थयात्रा (हज्ज) तथा पवित्रता के संबंध में गज़ाली ने अधिक गहराई से बात की है ।

`इह्या` के तीसरे और चौथे खण्डों में इस्लामी (सूफ़ी) साधना (चर्या) के प्रमुख प्रमुख ग्रंथों से महत्वपूर्ण सामग्री संकलित की गई है ।

व्रत के संबंध में क्रमश: सामान्य विश्वास तथा व्यवहार से ऊपर उठने और पंच-इन्द्रियों के आकर्षण से मुक्त होने की विधि बताई गई है । अन्त में जगत के प्रति वितृष्णा-भाव की प्राप्ति तथा प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम भाव की स्थिति मानवमात्र के लिए काम्य बताई गई है ।

इस में संदेह नहीं कि `इह्या` का मूल स्वर सन्यास-मूलक है । तपस्या `इह्या` की मूलभित्ति है । परन्तु इस कठिन तपश्चर्या को गज़ाली ने साधक भेद से विभिन्न स्तरों पर प्रतिपादित किया है । उदाहरण के लिए `ब्रह्मचर्य` का विधान `इह्या` में है । परन्तु इस विधान से बहुपत्नीक `रसूल-ए-पाक` और ब्रह्मचारी ईसा मसीह के चरित्रों में बहुत तारतम्य आने की आशंका

होती है। ग़ज़ाली ने साधना (साधक) भेद से इस आपत्ति का परिहार किया है।

कुल मिला कर ग़ज़ाली की दृष्टि 'इह्या' में अधिक से अधिक व्यावहारिक और साथ ही आदर्शोन्मुख बनी रही।

इन दो सीमांत दृष्टियों का सामंजस्य प्रस्तुत करना सरल नहीं है। परन्तु ग़ज़ाली ने यहूदी ईसाई तथा रोमन विचारकों के नीति तथा धर्म-शास्त्रों से आवश्यक सामग्री तथा प्रेरणा लेकर प्रायः सभी दृष्टियों का समाहार 'इह्या' में किया है। यही कारण है कि 'इह्या' धर्म-मत की सीमाओं से ऊपर उठकर मानव-मात्र के मर्म को छू सका।

<u>(ग) 'इह्या' : सार्वजनीनता :-</u> जीवन भर की शारीरिक और मानसिक भटकन के बाद ग़ज़ाली की दृष्टि और सृष्टि में 'ठहराव' का एक बिन्दु दिखाई पड़ता है। विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों (जिन में ग्रीक-दर्शन भी सम्मिलित है) का गंभीर पारायण कर, सूफी-साधना-पद्धति का 'हाल' दशा तक पहुंच कर और तब से बढ़ कर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और अमित मेधाशक्ति के द्वारा जीवन और साधना संबंधी अनेक पक्षों का पूर्ण ऊहापोह कर ग़ज़ाली मानसिक और बौद्धिक स्तर पर 'सार्वजनीन' कोटि की रचना कर सका।

'इह्या' इसी 'ठहराव' के क्षणों की वाणी है। इसीलिए इस में खण्डन - मण्डन कम है। इस में उन मानवीय एवं शाश्वत तत्वों की व्याख्या की गई है जिन तत्वों ने देश और काल को विजित किया है।

यही कारण है कि 'इह्या' को जब फारसी में रूपान्तरित किया गया तो अनेक गैर मुस्लिम पाठकों ने इस रचना की मार्मिकता महसूस की और जब 'इह्या' के फारसी रूपान्तर को भाषा में प्रस्तुत किया गया तो पंजाब में -

विशेषतः सेवापंथी संतों में - इसे एक 'पवित्र-पोथी' के रूप में स्वीकृत किया गया । आगे चल कर पंजाब की इस 'पोथी' को जब नागरी अक्षरों में प्रकाशित किया गया तब भी इस 'पोथी' ने 'वैष्णव संतों में पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की ।

इसी प्रकार अनेक ईसाई विचारकों ने भी 'इह्या' को अपने धार्मिक आग्रहों से ऊपर उठ कर अपनाया । अपने पूरे परिवेश से कट कर भी किसी रूपांतरित या अनूदित कृति को इतना सम्मान जितना 'इह्या' जैसी किसी विशिष्ट रचना का ही सौभाग्य हो सकता है । यही कारण है कि 'इह्या' को 'कुरान' के बाद दूसरा स्थान दिया गया है और अल-गज़ाली को हज़रत मुहम्मद के बाद दूसरा पैगंबर मानने की पेशकश तक की गई है ।[47]

कीमिया-ए-सआदत : - अपनी इस विश्व-विश्रुत कृति ('इह्या') को गज़ाली ने अपनी मातृभाषा फारसी में रूपांतरित किया और इस का नाम रखा[48] 'कीमिया-ए-सआदत'।

'इसी 'कीमिया' का भाषानुवाद 'पारसभाग' के नाम से पंजाब में हुआ ।

xooo

पाद-टिप्पणियां
(1 से 48)

1- 'गज्जाली' 'गज़ाली' ये दोनों रूप प्रचलित रहे हैं। निकल्सन इन दोनों रूपों पर विचार करने के उपरान्त 'गज़ाली' लिखना उचित समझते हैं। देखिए :' ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ दी अरबस' यहूदी स्रोतों में गज़ाली 'अल-गेज़ैल' के नाम से प्रसिद्ध है। देखिए :' दी लोगैसी आफ ज्यूज़' (आई. अब्राहम : 1927)

2- 'टूस' ईरान के उत्तर में शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। सूफी साधकों की कई खानकाहें ('ज़ावियात') भी यहां थे। फिरदौसी जैसे प्रसिद्ध कवि, नसीरुद्दीन जैसे गणितज्ञ तथा अन्य कितने ही इस्लामी विचारक यहीं के रहने वाले थे। विस्तार के लिए देखिए 'इन्साईक्लोपीडिया आफ इस्लाम' ('टूस')

3- अहमद भी 'टूस' के अबू अली का शिष्य बना और कालान्तर में सूफी स्रोतों में इसे पर्याप्त सम्मान मिला। देखिए :' सूफी आर्डर्स इन इस्लाम' : - जे. एस. ट्रिमिंघम : पृष्ठ 3 -33

4- 'सेल्जुक' शासक बड़े प्रतापी शासक थे। विशेष विवरण के लिए देखिए : ('क्लासिकल इस्लाम' अंग्रेज़ी अनुवाद : पृष्ठ 154-55-56)

5- ई०जी० ब्राउन: लिट्रेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया : पृष्ठ 93

6- 'इन्साईक्लोपीडिया आफ इस्लाम' के लेखकों ने गज़ाली का परिचय देते समय लिखा है :-' ही वाज़ दी मोस्ट औरिजिनल थिंकर दैट इस्लाम हैज़ एवर प्रोडयूस्ड'।

7- गज़ाली से पूर्व 'अबुल हसन अल-अशअरी' (9वीं, 10वीं शती) ने इस्लाम को उन रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त करने की चेष्टा की थी जिन

रूढ़ियों और परम्पराओं ने इस्लाम के मूलरूप को ढंक लिया था। इसे आंशिक सफलता भी मिली थी। क्रेनर के अनुसार 'अशआरी' की यह सफलता 'विचार-शून्य' विश्वास के ऊपर विचार-शीलता की विजय थी' (ए विक्ट्री आफ रिफ्लेक्शन ओवर अनथिंकिंग फेथ') (उद्धृत : निकल्सन : ए लिट्रेरी हिस्ट्री आफ अरब्स, पृष्ठ 379)

8- 'ही मेड हिज़ मार्क बाई लीडिंग इस्लाम बैक टु इट्स फंडामेंटल एंड हिस्टोरिकल फैक्टस, एंड बाई गिविंग ए प्लैस इन इट्स सिस्टम टु दी इमोशनल लाइफ' उद्धृत: निकल्सन: वही पृष्ठ 383

9- उद्धृत : ई०जी० ब्राउन: लिट्रेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया: पृष्ठ 293

10- उद्धृत : निकल्सन' ए लिट्रेरी हिस्ट्री आफ अरब्स', पृष्ठ 383

11- विवरण के लिए देखिए :' दी लाइफ आफ अल गज़ाली' डी०बी० मैक्डानल्ड (जर्नल आफ अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी' भाग 20,1899)

12- डा० इक़बाल के अनुसार इस्लामी विचारधारा में भी 'संशय' को ज्ञान की भूमिका के रूप में रखा गया है। देखिए :' दी रिकन्स्ट्रक्शन आफ, रिलीजिअस थाट्स इन इस्लाम' : पृष्ठ 102.

13. 'ग्रुनेबाम' के अनुसार 'गज़ाली ग्रीक-दर्शन का पण्डित था। ग्रीक-दर्शन तथा ग्रीक-दृष्टि का भी प्रत्याख्यान उसने विस्तार से किया। देखिए:' क्लासिकल इस्लाम' : पृष्ठ 167 तथा ब्राउन कृत 'लिट्रेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया'

14- इस अवतरण का अंग्रेज़ी रूपान्तर ब्राउन कृत लिट्रेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया (भाग 1 पृष्ठ 420) में देखा जा सकता है।

15- मैक्डानल्ड ने गज़ाली की इस संशयवादिता का विस्तृत विवरण दिया है। उसने आधुनिक युग के एक महान 'संशयवादी' 'ह्यूम' को गजाली का उपजीवी बताया है। ईश्वर को जगत का 'कर्ता' सिद्ध करते समय जितने भी तर्क दिए जा

सकते हैं, गज़ाली ने उन सब का संयुक्तिक निराकरण किया । जगत की `अनन्तता` का भी उसने खण्डन किया । विवरण के लिए देखिए :` दी लाइफ आफ गजाली` `जर्नल आफ अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी` भाग 20, 1899.

16- इन कारणों में बौद्धिकता पर से आस्था उठ जाना ही बौद्धिकता का एक मात्र लक्ष्य गज़ाली ने मान लिया । विस्तार के लिए देखिए : `इन्सायक्लोपीडिया आफ इस्लाम` ।

17- निकल्सन ने `सूफी` शब्द की लगभग एक सौ परिभाषाएं दी हैं । इन परिभाषाओं का आधार `फरीद-उद-अत्तार` कृत `तज़किरा-उल-औलिया` जैसी प्रामाणिक कृतियां बताई गई हैं । देखिए : आर० ए० निकल्सन : `औरिजिन एंड डेवलपमेंट आफ सूफीज़्म`: `जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी` : 1906 । पृष्ठ 303

18- सूफी संतों में तपस्या (` ज़ुहद`) `कीमिया-गिरी` (रसायन विद्या) स्वप्न, शकुन, रमल और ज्योतिष जैसे कितने ही आचार-विचार और विश्वास बिना किसी तारतम्य के स्वीकृत रहे हैं । `सूफीमत` के एकाधिक प्रामाणिक लेखकों ने ` रज़ा` (ईश्वर-इच्छा) `शफ़ा` (पवित्रता) और `फ़ना` (निर्वाण) में विश्वास सूफीमत का मूलभूत तत्व माना है । संभवत: `शफा` के साथ `सूफी` शब्द का संबंध इतिहास और विचार दोनों ही दृष्टियों से सही जान पड़ता है । `तज़किरा` - उल-औलिया` में `शफ़ा` संबंधी उल्लेख इस प्रकार मिलता है :- ` वास्तविक पवित्रता का एक कण हजारों प्रकार के व्रत-उपवासों और प्रार्थनाओं से बेहतर है` । उद्धृत : निकल्सन: वही : वही `शफा` के प्रति इस रूप और मात्रा में कृतसंकल्प होना सूफीमत की पहली सीढ़ी कही जा सकती है ।

19- देखिए :`दी लाइफ आफ अल गज़ाली` :(मैकडानल्ड) : `मैगेज़ीन आफ अमेरिकन औरियंटल सोसाइटी` भाग 20, 1899

20- `ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ अरब्स` : निकलसन: पृष्ठ 464

21- विस्तार के लिए देखिए : जे. एस. ट्रिमिंघम: `दी सूफी आर्डर्स आफ इस्लाम`, पृष्ठ 23

22- `युवा-अवस्था से पूर्व ही वंश-परम्परा-प्राप्त मेरी आस्थाएं टूट चुकी थीं` (गज़ाली) उद्धृत: ब्राउन: `ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया: पृष्ठ 296

23- गज़ाली की यह यात्रा इस्लाम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। मैकडानल्ड ने लिखा है कि इस यात्रा के साथ कट्टरपंथिता का दौर समाप्त हुआ और अल्लाह के साथ एक भावनात्मक रहस्यमय संबंध स्थापित कर सकने का आश्वासन देता हुआ नया युग आया । देखिए :` दी लाइफ आफ अल गज़ाली` (मैकडानल्ड) इस यात्रा के दौरान गज़ाली सीरिया, दमिश्क, येरुसलम और अन्त में मक्का-मदीना गया । प्राय: इन सभी स्थानों पर गज़ाली के स्मरण-चिन्ह आज भी मौजूद हैं ।

24- दर्शन और तर्क विरोधी अपनी इस दृष्टिकी व्याख्या करने के लिए गज़ाली ने `तहाफत-अल-फलसिफा` (दर्शन का ध्वंस) नामक पुस्तक लिखी । इस पुस्तक का ज़ोरदार खण्डन `इब्न रश्द` (मृत्यु : 1198 ई०) ने `तहाफत-अत-तहाफत` (ध्वंस का ध्वंस) नामक अपनी पुस्तक में किया ।

यह वही `इब्न रश्द` है जिसे यूरोप के लोग `ऐवरोस` के नाम से जानते पहिचानते थे । ग्रीक-दर्शन को हिब्रू (अरबी) में प्रस्तुत कर इसने पर्याप्त ख्याति अर्जित की ।ग्रीक-दर्शन का विरोध गज़ाली ने किया और गज़ाली के इस विरोध का रोषपूर्ण एवं कटु विरोध `इब्न रश्द` ने किया ।

25- विस्तार के लिए देखिए : ` अरेबिक थाट एंड इट्स प्लेस इन हिस्ट्री ` (ओ लीअरी) पृष्ठ 255

सी. फील्ड ने `सोलोमन मुंक` के आधार पर लिखा है कि ग़ज़ाली ने अरब के दर्शनशास्त्र का गला ही घोंट दिया । फलस्वरूप अरब दर्शनशास्त्र फिर उभर न सका । देखिए : ` आल्केमी आफ हैपीनेस : पृष्ठ 8

26- तहाफुत - अल- फलसिफाह` में गजाली ने लिखा है कि ग्रीक-दर्शन की कुछ मान्यताएं इस्लाम की मूल-भूत धारणाओं का विरोध करती हैं और इस प्रकार नबी को झूठा साबित करती हैं । देखिए : ` तहाफुत` एस. ए. कमाली कृत अंग्रेज़ी अनुवाद : पृष्ठ 249 , ग्रीक-दर्शन के अनुसार `ईश्वर की सर्वज्ञता` संभव नहीं है और इसी प्रकार `मृत्यु के बाद फिर से जीवित होना` भी ग्रीक-दार्शनिक नहीं मानते ` । परन्तु ये दोनों मान्यताएं इस्लाम की आधार-भूत मान्यताएं हैं ।

27- `विद्याओं का पुनरुज्जीवन` : शब्दार्थ । ग़ज़ाली ने अपने बौद्धिक प्रत्यावर्तन को प्रतीक रूप में रख कर अपनी इस रचना का नामकरण किया है । इस रचना के संबंध में आवश्यक चर्चा यथावसर की जाएगी ।

28- ग़ज़ाली ने इस्लाम के आधार पर संगीत का विरोध करने वालों की एक लम्बी सूची दी है और उनके सभी तर्कों को `पूर्वपक्ष` के रूप में रख कर उनका परिहार किया है । देखिए : डी. बी. मेक्डानल्ड `अल-ग़ज़ाली आन म्यूज़िक एंड एक्सटेसी` (जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी : 1901) पृष्ठ 1-32

29- विस्तार के लिए देखिए :-

क- इन्साइक्लोपेडिया आफ इस्लाम ।

ख- ए डिक्शनरी आफ इस्लाम ।

30- संगीत, नृत्य तथा कविता को `सुन्नी` विचारक इस्लाम विरोधी मानते थे । ग़ज़ाली ने `हदीसों` की एकाधिक घटनाओं के आधार पर संगीत-नृत्य-

कविता की इस 'चर्या' का इस्लाम के साथ अविरोध सिद्ध किया। एक प्राचीन लेखक के साक्ष्य पर ग़ज़ाली ने अबू-बकर' अस्-सिद्दीक़' (प्रथम ख़लीफ़ा) द्वारा एक मस्जिद में हज़रत मुहम्मद को कविता सुनाने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'श्रवणेन्द्रिय' की उपयोगिता की चर्चा करते हुए ग़ज़ाली ने 'श्रुतिमधुर' संगीत को न केवल मानव शरीर के लिए अपितु मानव के व्यथित मानस के लिए एक उपचार के रूप में प्रस्तुत किया है। देखिए : मैकडानल्ड :' अल-ग़ज़ाली आन म्यूज़िक एंड एक्सटेसी' (जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी) 1901

इस प्रकार 'श्रौत' प्रमाणों के साथ साथ ग़ज़ाली ने मनोवैज्ञानिक आधार पर भी संगीत-नृत्य-कविता को उपादेय सिद्ध किया।

31- देखिए :' दैनिक 'डान' (कराची : 11-3-1964) उद्धृत :' इस्लाम एंड इंडियास ट्रांजिशन टू माडर्निटी' पृष्ठ 358

32- उद्धृत : 'लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया' ।(ई०जी० ब्राउन) भाग 1, पृष्ठ 293-94

33- मैकडानल्ड ने ग़ज़ाली के 'शरई' विरोधियों के कुछ नाम गिनवाए हैं देखिए :' दी लाइफ आफ अल-ग़ज़ाली'

34- ग़ज़ाली की रचनाओं को नष्ट करने में 'फ़िक़' लोगों का प्रमुख हाथ था। ग़ज़ाली की सर्वश्रेष्ठ कृति 'इह्या' की भी कितनी ही बार होली जलाई गई। विस्तार के लिए देखिए :-

क-' क्लासिकल इस्लाम' (जी० बाम)

ख-'दी लाईफ आफ अल-ग़ज़ाली' (डी०बी०मैकडानल्ड)

'सनूसी' तथा 'वहाब' जैसे कट्टर-पंथियों ने 18वीं शती में ग़ज़ाली की विचारधारा को इस्लाम-विरोधी ठहराया। देखिए :' लौकिक थाट्स एंड इट्स प्लेस इन हिस्ट्री (ओ० लीअरी)

35- ए०जे० आरबैरी ने सूचना दी है कि स्पेनिश भाषा में 'पैलैसियोस' ने अपनी एक पुस्तक में 'इहया' का एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। (सूफीज़्म': पृष्ठ 1) इसी प्रकार जर्मन तथा फ्रेंच आदि भाषाओं में गजाली के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर विस्तृत चर्चा हुई है।

36- 'जे० ओबरमान' जैसे विद्वानों के अनुसार गजाली की जीवन-चर्या इस्लामी कर्म-काण्ड की दृष्टि से काफी स्वच्छन्द कही जा सकती है। परन्तु इस्लाम की मूलभूत आस्थाओं और मुख्य मुख्य आचार-मर्यादाओं से वह कभी विमुख नहीं हुआ। विस्तार के लिए देखिए :' इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम'

37- देखिए : ' लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया' (ई० जी० ब्राउन) भाग 2, पृष्ठ 295 .

38- इस कृति का 'कमाली' साहिब ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया और यह अनुवाद छप चुका है (लाहौर : 1958) । इस कृति में ग़ज़ाली ने सुकरात-अफलातून (प्लेटो) अरस्तू (अरिस्टोटल) जैसे यूनानी 'हकीमों' (तत्ववेत्ताओं) की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं का निराकरण किया है। इस निराकरण का कारण यह बताया गया है कि यूनानी 'फलसफे' का बुरा 'असर' इस्लामी जीवन-चर्या और जीवन-दृष्टि पर पड़ रहा था।(इन्ट्रोडक्शन:पृष्ठ 1) 'तहाफुत' में अध्याय, सर्ग आदि के स्थान पर 'समस्या' (' प्राब्लेम') शब्द प्रयुक्त हुआ है। कुल समस्याएं 20 हैं।

39- ग़ज़ाली का विश्वास था कि धर्म की सभी बातें सभी लोगों के लिए नहीं हैं। उसकी एक रचना का नाम है,' वह रचना जो अनधिकृत व्यक्तियों से गोपनीय है'। देखिए 'इन्साईक्लोपैडिया आफ इस्लाम' दारा शिकुह ने 'सिर्र उल-असरार' (उपनिषद्-अनुवाद) की भूमिका में भी इस 'गोपनीयता' पर बल दिया है। देखिए : डा० राजगुरु :' गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य' (पंजाबस उपनिषद भाषा)

40- राजनीति-विशेषतः व्यावहारिक राजनीति को निकट से देखने का अवसर ग़ज़ाली को मिला था। 'सेल्जुक' साम्राज्य का उत्थान और पतन ग़ज़ाली देख चुका था। यही कारण है कि 'राजनीति' के संबंध में ग़ज़ाली की दृष्टि काफी दूर तक गयी है। निश्चय ही आदर्शवादिता तथा नैतिकता का अतिशय उसकी 'राजनीति' संबंधी पूरी दृष्टि पर बुरी तरह छाया रहता है। 'पारसभाग' में भी ग़ज़ाली की राजनीति संबंधी दृष्टि का संक्षिप्त सा विवरण मिलता है।

41- राजनीति विषयक अपने अनुभवों और विचारों को ग़ज़ाली ने अपने दिवंगत संरक्षक के पुत्र 'मुहम्मद' के लिए अपनी मातृभाषा 'फारसी' में "नसीहात' नाम से प्रस्तुत किया। 'काउंसेल फार किंग्स' नाम से इस कृति का अनुवाद 'एफ. आर. सी. बागले' ने किया है (1964)।

42- 'नसीहात' का अनुवाद ग़ज़ाली ने 'तिब्र-उल-मसबूक' (पिघला हुआ सुवर्ण) नाम से अरबी में किया।

43- ग़ज़ाली ने अपने मानसिक (आध्यात्मिक) विकास की क्रमिक कहानी बड़े विस्तार और साथ ही पर्याप्त विश्वसनीय ढंग से इस कृति में दी है। उसके मानसिक द्वन्द्वों का उतार-चढ़ाव और फिर उसकी दृष्टि में ठहराव जैसे इस कृति में साकार हो उठा है। ग़ज़ाली के सभी जीवनी लेखकों ने इस रचना से भरपूर लाभ उठाया है।

44- 'ए निशे फार लाइट्स' नाम से इस कृति का अनुवाद 'गेर्डनर' ने किया है (लाहौर : 1924) गेर्डनर के अनुसार 'अल-मुनकिद' के बाद आत्म-कथा का शेष भाग ग़ज़ाली ने इस कृति में दिया है।

45- देखिए :' दर्शन-दिग्दर्शन' (राहुल सांकृत्यायन)

46- आर्ह0 अब्राहम के अनुसार 'अल्गजेल' (अल गजाली) तथा (एवरोस) के विचार ईसाई-धर्म में भी अपनाए गए। देखिए: 'दी लीगेसी आफ ज्यूज' पृष्ठ 247

47- विस्तार के लिए देखिए : 'ए लिट्रेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया' (ई० जी० ब्राउन) पृष्ठ 296

48- 'कीमिया' शब्द हीब्रू भाषा का है और इसका अर्थ (किम + या)' प्रभु से बताया गया है। भाषाशास्त्रियों का अनुमान है कि 'अल-कीमिया' से अंग्रेजी शब्द 'आल्केमी' बना है।

इस शब्द के इतिहास में कितने ही उतार-चढ़ाव आए। 'रसायन' (धातु) विद्या, सब रोगों की एक-मात्र औषधि आदि अर्थों से लेकर 'फुड प्रेमी' तक अनेक अर्थ इस शब्द के बताए गए हैं।

सूफी संतों में 'कीमिया' शब्द 'आत्म सन्तोष' के लिए प्रयुक्त हुआ है। सूफियों के अनुसार 'कीमिया' के तीन भेद हैं :-

1. कीमिया-उल-आवाम (सर्व साधारण 'रसायन' विद्या)
2. कीमिया उल-खास (विशिष्ट व्यक्तियों का रसायन विद्या)
3. कीमिया-अल-सआदह ('सत्य' का रसायन विद्या)

विस्तार के लिए देखिए :' डिक्शनरी आफ इस्लाम'

'कीमिया' की इसी अन्तिम प्रकार को अनन्त मानसिक और बौद्धिक क्षमताओं को ध्यान में रख कर गज़ाली ने अपने प्रबुद्ध लेखन से प्रसूत इस रचना को 'कीमिया-ए-सआदत' नाम दिया।

इस नाम से साथ जुड़ी पूरी विचार-धारा को इस फारसी कृति के भाषा-अनुवादक ने 'पारसभाग' नाम देकर सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

(~~'भारत भक्ति का भाग' सं: खण्ड~~)

OOOOO
OOO
O

उत्तरार्ध

अध्याय-1

अध्यात्मचिन्तन और इस्लामी परम्पराएं

1. आत्म-अनात्म विवेक

2. हृदय-आत्म प्रतिष्ठान

3. अल्लाह: इस्लामी परम्परा

4. गजाली: नास्तिकवाद

(पाद-टिप्पणियां)

अध्यात्म चिंतन

अध्यात्म चिंतन पारस भाग का मूल स्वर है। इस अध्यात्म चिंतन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

1. आत्म-अनात्म विवेक
2. चर्या-साधना विवेक

`विवेक` संबंधी इस विवेचन को इस्लामी परम्पराएं क्रमश: `उसूल` और `फरूअ` इन दो वर्गों में विभाजित करती रही हैं। `उसूल` `असल` (सिद्धान्त: मूल) का और `फरूअ` `फर`(शाखा) का बहुवचन रूप है।

`उसूल` को `अकायद` (अकीदा अर्थात् यकीन। बहुवचन रूप) तथा `फरूअ` को `अहकाम` (हुक्म: बहुवचन) भी कहा गया है। इसके साथ ही `उसूल` को `मारिफ` (ज्ञान) और `फरूअ` को `ताअत` (आज्ञाकारिता) के साथ भी सम्बद्ध किया गया है।

स्पष्ट है कि सिद्धान्त (उसूल) पक्ष का संबंध आत्म-अनात्म विवेक से है और चर्या तथा साधना अल-कुर्आन तथा अन्य प्रामाणिक परम्पराओं (`हदीसों`) के अनुसरण से संबंधित है।

आत्म-अनात्म विवेक :

आत्मन्: इस्लामी चिंतन : - आत्मन् के लिए इस्लामी विचारकों ने `नफ्स` और `रूह` शब्द प्रयुक्त किए हैं इन दोनों शब्दों को इस्लामी दुनिया में बहुत व्यापक अर्थ दिए गए हैं।

कुर्आन में `नफ्स` और `रूह` पर्याय-वाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। `नफ्स` शब्द कुर्आन में इन पांच विभिन्न अर्थों का बोधक बताया गया है :-

(1) व्यक्ति (2) अल्लाह (3) देवता (4) जिन्न-मनुष्य (5) आत्मन् । सामान्यतः 'नफ्स' इन्द्रियों (भोगों) का बोधक है । 'फरिश्तों' के संबंध में 'नफ्स' शब्द प्रयुक्त नहीं होता ।

नफ्स :- 'लिसान अल-अरब' के अनुसार 'नफ्स' शब्द आत्मा (स्पिरिट), खून, शरीर, विशिष्ट सत्ता, अभिमान, भाई तथा मनुष्य आदि 15 अर्थों में प्रयुक्त होता है । साथ ही यह भी कहा गया है कि इनमें से अधिकांश अर्थ लाक्षणिक हैं ।

'इन्साईक्लोपेडिया आफ इस्लाम' के अनुसार 'नफ्स' शब्द 'अल्लाह' के लिए प्रयुक्त नहीं होता । मनुष्य के संदर्भ में 'नफ्स' और 'रूह' दोनों पर्यायवाची शब्द माने गए हैं । 'नफ्स' मन('माइंड') और 'रूह' जीवन का भी बोध कराता है । कभी कभी मनुष्य की दो 'नफ्स' बताई गई हैं । एक 'जीवनी' दूसरी 'विवेक' शक्ति । विवेक शक्ति भी दो प्रकार की है ।एक प्रेरक ('कमांडिंग') तथा दूसरी निवारक (' फारबिडिंग')।

रूह :- 'रूह' शब्द भी कुरान में पांच विभिन्न अर्थों का बोधक है :-

1. प्राण-शक्ति :- अर्थात् वह जीवनी शक्ति जो अल्लाह ने माटी के पुतले (' आदम') में और फिर 'मरियम' में फूंकी ।

2. ज्ञान-शक्ति :- अर्थात् फरिश्तों और प्राणियों में विद्यमान जिज्ञासा-भाव और उसका समाधान एवं हज़रत मुहम्मद की पैगंबरी, उनका 'इलहाम' आदि कितनी ही बातें 'रूह' की ज्ञान-शक्ति के अंतर्गत रखी गई हैं ।

3. अल्लाह का अंश :- 'ईसा' को अल्लाह का 'रूह' (अंश ?) बताया गया है ।

4. फरिश्तों का एक वहनर भी 'अल-रूह' बताया गया है ।

5. अल-रूह-अल-अमीन :- वह विश्वसनीय (दिव्य) आत्मा जो हज़रत मुहम्मद के हृदय में आसीन हुई और जिसकी सहायता से 'कुरान' अवतरित हुआ ।

अल-गज़ाली : 'अनिर्वचनीयता'

'रूह' और 'नफ़्स' संबंधी गज़ाली के विचारों का सारांश 'अल-तहानवी' ने इस प्रकार दिया है :- 'गज़ाली के अनुसार मनुष्य 'ज्वाहर-ए-रूहानी' है अर्थात् मनुष्य की चरम सत्ता आध्यात्मिक है। मनुष्य की यह आध्यात्मिक सत्ता न शरीर के भीतर कैद है, न शरीर के ऊपर टाँगी हुई है, न शरीर के साथ जुड़ी हुई और न ही भिन्न है। फलतः शरीर में आत्मा की स्थिति और इनका संबंध अनिर्वचनीय है।' अल्लाह' और 'फरिश्तों' की स्थिति भी संसार में इसी प्रकार की बताई गई है.' (डिक्शनरी आफ इस्लाम)

अल-गज़ाली ने 'रूह' और 'नफ़्स' के साथ 'कल्ब' (हृदय) की भी इस संदर्भ में चर्चा की है। गज़ाली के अनुसार 'मनुष्य की 'विवेक' शक्ति के अधिष्ठान भी यही तीन स्थल हैं और ये अ-शरीरी हैं' ।

कुरान के 'अल-नफ़्स-अल-मुतमइन' (संतुष्ट 'नफ़्स') तथा 'अल रूह-अल-अमरी' (प्रेरक 'रूह') इन शब्दों का अर्थ गज़ाली ने 'रूह' बताया है।

स्पष्ट है कि गजाली ने 'रूह' 'नफ़्स' और 'कल्ब' को स्थूल धरातल से उठा कर 'चित्ति शक्ति' के पद पर प्रतिष्ठित किया। गजाली की इस मान्यता का बहुत से उत्तरवर्ती इस्लामी विचारकों ने खंडन भी किया है।

गज़ाली की 'आत्मन्' सम्बन्धी इस दृष्टि को 'पारसभाग' में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

'आत्मन्' : पहचान :- 'आत्मन्' के लिए सामान्यतः जीव शब्द पारसभाग में प्रयुक्त हुआ है। यह जीवात्मा का बोधक शब्द जान पड़ता है। 'अपना आप'

(आत्म-भाव) शब्द से भी जीवात्मा का बोध करवाया गया है। इस 'आत्मन्' की तथा 'पहचान' की चर्चा के प्रारंभ में ये प्रश्न उठाए गए हैं :- 'मुझ कउं इस प्रकार जथारथ रूप का पछानणा चाहीता है। जो मैं वसतु किआ हों। अरु कहां ते आइआ हाँ। अरु किस कारज के नमित भगवंत ने मुझ कउं उतपति कीआ है। अरु मेरी भलाई किआ है अरु किस विषै है। अरु भागहीणता किआ है'। (पारसभाग 1।1)

भारतीय साधना-पद्धति तथा अध्यात्मदर्शन की भी प्रारंभिक जिज्ञासा इसी प्रकार के मौलिक प्रश्नों के साथ प्रस्तुत की गई है। इन मौलिक प्रश्नों के साथ जीव के स्वभाव का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है।

जीव: स्वभाव :- बहुड़ि तेरे विषै जो पसुअहु अरु देवतिअहु के सुभाव एकठे उतपति कीए हैं। सो इनहु विषै तेरा प्रबल सुभाउ कउन है। बहुड़ि इस प्रकार भी पछाणहि जो तेरा अपणा सुभाव किआ है। अरु पर सुभाउ कउन है'।

पशु : स्वभाव :- 'जो पसुअहु की भलाई अरु पूरनताई खावणो, अरु सावणो अरु जुध करने ते इतर कुछ नहीं। तां ते जब तूं आप कउं पसु जानता है तब दिन रात्र विषै इही पुरषारथ कर जो पेट अरु इंद्रीअहु की पालना होवै'।

सिंह: भूत स्वभाव :- 'अरु सिंघहु की पूरनताई इहु है जो फाड़ना अरु क्रोधवान होवणा। अरु भूत प्रेतहु का जो सुभाव है सो छल अरु प्रपंच है। सो जब तूं सिंघ अथवा भूत है। तउ इसी सुभाव विषै इसथित हो। तब अपनी पूरनताई कउं प्रापति होवहि'।

'कूकर' और 'सूकर' आदि के स्वभाव जीव में किस प्रकार संचरित होते हैं इस तथ्य को पारसभाग में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-'कूकर कउं जगत विषै अपवित्र कहीता है। सो तिसका सुभाव ही अपवित्र है। सरीर करके अपवित्रता कछु इसकी प्रगट नाहीं। परु क्रोध करके जो जीवहु कउ फाड़ने लागता

है । तां ते अपवित्र है । जैसे सूकर[2] भी सरीर करके अपवित्र नहीं । परु अपवित्र पदारथहु की जो भिखना करता है । सो तिस करके अपवित्र कहीता है । तां ते कूकर अरु सूकर का जो अरथ है । सो काम अरु क्रोध के सुभाव की अपवित्रता है । अरु इही सुभाव मानुष विषै भी पाए जाते हैं । सो इनहु करि मानुष भी अपवित्र कहीता है ।

इस प्रकार के अशुभ स्वभावों को शुभ तथा देव-स्वभाव में परिवर्तित करने के लिए पारसभाग में गुरु-उपदेश और सत्-संगति को प्रमुख साधन बताया है ।[3]

जीव के शुभ-अशुभ स्वभावों को क्रमश: घोड़े और शस्त्र का तथा भलाई को शिकार का रूपक इस प्रकार दिया गया है :- ` गुरु कउं चाहीता है जो एक सुभाव कउं घोड़ा करहि । अरु दूसरे सुभाव कउं ससत्र करहि । उस घोड़े अरु ससत्र करके अपनी भलाई को सिकार करहि । अरु जब वहु भलाई गुरु कउं प्रापति हूई । अरु उनहुं सुभावहु कउं तैने वसीकार कीआ । अरु जब भगवंत के पहचानने की ओर तेरा मुख हूआ तब तूं मुकति होवहिगा ` ।

<u>जीव: सूक्ष्म रूप :-</u> परन्तु `भगवंत` की पहचान से पूर्व अपना पहचान जरूरी है और इस पहचान का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- ` जब तूं आप कउं पछाणिआ चाहता है । तब इस प्रकार निसचै जाणु । जो तुझ कउं दुइ पदारथहु करि उतपति कीआ है । सो एक सरीर है जो असथूल नेत्रों करि दीषीआ जाता है । अरु दूसरा चेतंन है । सो सूखम रूप है । अरु उस <u>कउं जीव</u> कहते हैं <u>अरु मन कहते हैं</u> । अरु <u>चित भी उसी का नामु</u> है ` ।

भारतीय दर्शन के अनुसार जीव, मन और चित को एक मानना अनुचित है। मन, बुद्धि चित और अहंकार को `अन्त:करण चतुष्टय` यह नाम भारत के दार्शनिकों ने दिया है और आत्मा को इन से परे माना है :- ` मनस: तु परा बुद्धि :, यो बुद्धे: परत: तु स: ` (गीता)

अर्थात् अहंकार और चित से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और आत्मा बुद्धि से भी परे है।

गुरुजी ने आत्मा को अशरीरी माना तथा शरीर के नाश होने पर भी इसे यथावत् विद्यमान स्वीकार किया है :- 'जब इस मानुष का शरीर छूटता है। तब चेतन रूप जीव का नाश नहीं होता। वरन्-अपने आप विषे स्थापित रहता है'।

'आत्मन्' का यही रूप भारतीय परम्पराओं के अनुरूप है और आत्मन् के इसी रूप का स्पष्टीकरण पारसभाग में इस प्रकार किया गया है।-

'अपणे आप का पछानना, इही भगवंत के पछाणने की कुंजी है'

(पारसभाग)

आत्म-विवेक :- पारसभाग में - कीमिया-ए-सआदत तथा 'हदीसों' के आधार पर - पहला अध्याय 'अपणी पछाण का' रखा गया है। इस अध्याय में 'आत्म-जिज्ञासा' को लेकर-जीवन के विभिन्न संदर्भ देते हुए - बड़ी गम्भीर तथा विस्तृत चर्चा की गई है।

आत्मन् : नबी साईं[4] :- पारसभाग में आत्म-जिज्ञासा को विचार की दिशा में मानव की प्राथमिक जिज्ञासा बताया गया है तथा इस सिद्धान्तवचन की पुष्टि के लिए अल्लाह (साईं, भगवंत) तथा हज़रत मुहम्मद (नबी साईं, महापुरुष) के वचन उद्धृत किए गए हैं :- 'इसी पर नबी साईं भी कहा है। जो जिसने अपणे मन (आत्मा) कउं पछाणिआ है। सो तिसने निरसंदेह अपणे साहिब कउं पछाणिआ है'।

'रब्ब' का फरमान :- 'वहुड़ि साईं' ('रब्ब-उल-आलमीन') भी कहा है जो मैंने अपणी लछण जीवहु के मन में प्रगट कीए हैं। इस करके जो आप कउं पछाण कर मुझ कउं भी पछाणहिं।

`पूर्व पक्ष` :- आत्म-जिज्ञासा संबंधी इन आप्त-वचनों को उद्धृत कर-विशुद्ध विवेक के लिए - पूर्व-पक्ष की योजना इस प्रकार की गई है :- `अरु जब तूं इस प्रकार कहे जो मैं तो आप कउं पछाणता हौं`। अर्थात् `अपने` को तो सभी जानते पहचानते हैं, इसमें कौन सी नई बात है ?` इसका समाधान इस प्रकार किया गया है :-

`उत्तर पक्ष` :- सो तेरा इह कहणा कूड़ है। काहे ते जो जैसा तूं आप कउं पछाणता है। सो ऐसा पछानणा भगवंत के पछानणे की कुंजी नहीं। जिस प्रकार आप कउं शरीर अरु सिरु, हाथ, पांव अरु तुचा (त्वचा) मांस आदिक तूं पछाणता है (सो तूं नहीं है)`।

शरीर तथा इन्द्रियों से आत्म-तत्व की पृथकता सिद्ध कर `मन` से भी आत्मा को इस प्रकार भिन्न सिद्ध किया गया है :- ` अपणे अंतर विषै जब तूं भुखा होता है। तब अहार कउं चाहता है। अरु जब क्रोधवांन होता है। तब लराई करता है। अरु जब कामादिक भोग कउं चाहता है। तब उस ही संकल्प विषै लीन हो जाता है। सो इस प्रकार के पछाणने विषै सरब पसू भी तेरे समान हैं`।

मानव को जीव-मात्र के सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर आत्म-सत्ता की ओर इस प्रकार उन्मुख किया गया है :- `इहु जो सरीरु है सो तेरा टहलूआ है। अरु तेरा जो अपणा आप है। सो इस ते विलखण (विलक्षण) है। इह तेरे अंग जो बालक अवसथा विषै थे। सो अब तो वहि अंग नहीं। काहे ते जो वहु अंग सभ ही परिणाम करके बिनसे हूए हैं। - - तां ते तेरा सरूप सरीर नहीं। - - तां ते सरीर के नास होणे की चिंता न करु। काहे ते जो जब तेरा सरीर दूर हो जावैगा। तउ भी तेरा सरूप अबिनासी है`।

`मरण` :- इसी संदर्भ में मृत्यु को एक नए `कोण` से इस प्रकार देखा गया है :-

`इस मानुष का चेतंन सरूप अपणी आप करि इसथित है। अरु जीव का होवणा सरीर के अधीन नहीं। तां ते मरणी का अरथु इहु नहीं जो चेतंन सरूप का नासु होवै। परु म्रित होणी का अरथु इहु है। जो जब इस जीव की आगिआ सरीर विखै वरतमान नहीं होती। तब इसी कउ म्रित हुआ कहीता हैं।

इस विवेचन का फलितार्थ इस प्रकार दिया गया है, `तां ते तूं इही पुरषारथ करहु जो चेतंन रूप को पहचाणहि। काहे ते जो इह चेतंन रूपी रतन दुरलंभ (दुर्लभ) है। अरु देवतिअहु (फरिश्तों) की निआई निरमल सरूप है। अरु इस रतन की खाणि पार-ब्रह्म हैं।

ग़ज़ाली ने अपनी कृतियों में `रूह` को `ज्वाहर-ए-रूहानी` बार बार कहा है। पारसभाग में `चेतंन रूपी रतन` शब्द इसी के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

स्पष्ट है कि आत्म-चिंतन की दिशा में शरीर तथा मन से परे आत्म-तत्व की प्रतिष्ठा पारसभाग में की गई है। सम्भवत: इस्लामी दर्शन की परिधि में `आत्मन्` के संबंध में इस से अधिक कुछ कहना संभव नहीं है।

जीव: ईश्वर-कृत :- पारसभाग में समस्त सृष्टि स्थूल और सूक्ष्म इन दो वर्गों में विभाजित की गई है तथा जीव को सूक्ष्म सृष्टि के अन्तर्गत रखा गया है और इसे ईश्वर-कृत बताया गया है :- `चेतंन सता जो सूखम सरूप है। तिसकी मिकदारा अरु आकारु कछु नाहीं। अरु उहु अखंड है। - -- - - पर इसका नाम जीव इस निमित कहा है। जो इह भगवंत का उतपति कीआ हूआ है`। उत्पन्न पदार्थ अखण्ड कैसे हो सकता है? इस अन्तर्विरोध की ओर ग़ज़ाली का ध्यान नहीं गया। अस्तु।

ईश्वर-कृत इस जीव को 'सादि' ही माना जा सकता है। फलतः इस्लामी परम्पराओं के अनुसार जीव के 'अनादि' भाव का खंडन इस प्रकार किया गया है :- 'इह जीव अनादि है। सो इहु भी भूले हैं। - - - जो अनादि है। सो उतपति कीआ हुआ नहीं होता। अरु इह जो जीव है सो उतपति कीआ हूवा है'।

जीव : ईश्वर प्रतिबिंब। जीव को ईश्वर का प्रतिबिंब मानने वालों की धारणा का खण्डन इस प्रकार किया गया है :- 'जिनहु ने इस जीव कउ प्रतिबिंब जाणिआ है। सो वहु भी भूले हैं। काहे ते जो प्रतिबिंब आप कोर वसतु कछु नहीं (अर्थात् प्रतिबिंब 'स्वतः सिद्ध' नहीं) परु जीव सरीर का आसरा (आश्रय) है। तां ते इस कउ प्रतिबिंब भी कहणा परवांन नहीं।'

जीव : राजा : जीव संबंधी इस चर्चा का समापन पारसभाग में एक सुन्दर रूपक के माध्यम से किया गया है :- '- - - जीव रूपी राजा है। इह सरीर इसका राजमंडल है। अरु इस विखै सैना भिंन भिंन रहती है। - - - अरु सरीर की रखिआ के निमित दो प्रकार की सैना रची है। सो एक असथूल है। जो हाथ अरु पांव अरु नाना प्रकार के ससत्र (शस्त्र) इत्यादि दूसरी सैना सूखम है। सो बाहु (इच्छा) अरु क्रोध है। पर सरब कारजहु के पहचानणेहारी बुधि है। - - - स्रवण अरु तुचा (त्वचा), नेत्र अरु रसना नासका जो पंच इंद्रीआं हैं। सो इह भी बुधि ही के आस्रे हैं। अरु सरीर के 'प्रेरण' 'चतुस्ट अंतहकरण' हैं। सो इह सभ ही सैना भगवंत ने कारज निमित बनाई है। - - इह सूखम अरु असथूल जो सैना है। सो सभ ही जीव ही के अधीन है। सो जब रसना को आगिआ करता है। तब बोलणे लागती है। अरु हाथ ग्रहण करते हैं। - - - इसी प्रकार सरब अंगहु अरु सरब सुभावहु विखै जीव ही की आगिआ वरतती है'।

(सर्ग 5)

इस रूप का विस्तार एक ओर जो काव्यकी सुषमा से मंडित है तो दूसरी ओर दर्शन तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्व इसमें समाहित हुए हैं। साथ

ही ग़ज़ाली का 'राज-धर्म' संबंधी अभिमतता के दर्शन भी इस अवतरण में हो सकते हैं :-

'इह सरीर राजा (जीव) का नगर है। अरु सरब इंद्रीआं इस सरीर विषै वसणेहारे लोक हैं। अरु भोगों की अभिलाषा रूपी राजा प्रधान है। अरु क्रोध रूपी कुटवालु है। बुधि इसका मंत्री है। - - अभिलाषा रूपी जो प्रधानु है सो महांकूड़ा अरु पाषंडी है। - - - जब बुधि रूपी मंत्री साथ जीव सलाति ('मसलहत': सम्मति) करे। तब उस कउं मरजादा विषै राखै। इसी प्रकार क्रोध रूपी कुटवालु कउं भी प्रबल न होने देवे। - - तां ते इस करके प्रसिध हूआ। जो भोग अरु क्रोध भी सरीर की रखिआ के निमित उतपति कीए हैं। जैसे ही जल अरु अनाज भी सरीर का अहार बनाइआ हैं'।

मानसिक-स्तर पर भोग और क्रोध की भी उपयोगिता को स्वीकृत कर पारसभाग मनोविज्ञान की एक नव्यतम उपलब्धि का पूर्व-रूप प्रस्तुत करता है।

<u>हृदय : आत्म प्रतिष्ठान :-</u> अल-ग़ज़ाली ने हृदय (क़ल्ब) पर बड़े विस्तार से चर्चा की है। उसने स्थान स्थान पर हृदय के अलक्ष रहस्यों और उसकी रहस्यमयी शक्तियों का विस्तृत विवरण दिया है। इस विवरण से स्पष्ट होता है कि ग़ज़ाली ने हृदय को केवल 'मांस-पिंड' न मान कर 'चिति (आत्म) शक्ति' के अधिष्ठान का पद प्रदान किया है। पारसभाग में हृदय संबंधी इस विशिष्ट धारणा का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- 'सो इह वारता निरसंदेह है जो आतमा अरु मन अरु रिदा उसी चेतंन के नाम हैं। तां ते मैं जो रिदे का बरनन करता हौं। सो मेरा प्रोजन सरीर के <u>रिदे स्थान का</u> नहीं। काहे ते इस असथूल रिदे असथान का सरूप मांस अरु लहू करि रचिआ हूआ है। अरु पंच भूतहु का विकार है। तां ते जड़ रूप है।' अरु मानुष का <u>जो चेतंन रूप रिदा है सो असथूल द्रिस्ट (दृष्टि) ते विलखण है</u>। अरु इस सरीर विषै परदेसी की निआई कारज के निमित आइआ है'।

जीव की `चिति` शक्ति को ईश्वर कृत मानते हुए भी गज़ाली इसे अशरीरी मानता है। फलतः इस अशरीरी `चिति` शक्ति को पहचाने बिना `ब्रह्म` की सत्ता को भी पहचानना संभव नहीं है :- `जब लग चेतंन रूप कउं न पछाणिए तब लग रिदे के जथारथ रूप कउं पछाण नहीं सकता। तो इसी कारण भगवंत का पछाणना भी नहीं हो सकता`।

इस `चिति शक्ति` का अनुभव साधक अद्वैत दृष्टि के द्वारा करता है :- `जब एक भाव करि देखीए तब चेतंन रूप अति प्रगट है। काहे ते चेतंन रूप का होवणा सरीर के बाझे नाहीं। जैसे मृतक का सरीर अरु इंद्रीआं प्रगट होतीआं हैं पर चेतंन सता बिना उस कउं मृतक कहीता है`।

जीव की `चिति शक्ति` को पहचानने के लिए :- `नेत्र आदिक इंद्रीअहु कउं रोकै। अरु चेतंनता के अभिआस विखे सरब सरीर अरु असथूलजगत कउं विसमरण करे। तब निरसंदेह अपणे आप कउं पछाण लेवै। अरु जथारथ रूप आतमा कउं जाणै`।

<u>परलोक : वर्णन :-</u> जीव-संबंधी इस विवेचन के बाद पारसभाग में `परलोक` का वर्णन किया गया है। जीव शरीर-पात के बाद `परलोक` में प्रवेश करता है और वहां उसकी स्थिति और दशा के संबंध में इस्लामी मान्यताओं का स्पष्टीकरण पारसभाग में किया गया है।

सभी इस्लामी धर्म-ग्रंथों में परलोक (स्वर्ग -नरक आदि) की चर्चा बड़े विस्तार से हुई है। `डिक्शनरी आफ इस्लाम` में मरण उपरान्त आत्मा को स्वर्ग अथवा नरक में ले जाने वाले फरिश्तों (अपने शुभ - अशुभ कर्मों) का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इस्लामी परम्पराओं के अनुसार शरीर-पात के बाद प्रत्येक `रूह` एक बार अल्लाह के सामने पेश की जाती है। वहां से अभिनंदित या

अभिशप्त होकर पुनः कब्र में मृत शरीर में लौट आती है और 'रोज़-ए-क़यामत' की प्रतीक्षा करती रहती है। 'रोज़-ए-क़यामत' के बाद स्वर्ग के सुख-भोग अथवा नरक की अनंत यातनाओं का सिलसिला शुरू होता है।

स्वर्ग या नरक के भोग कौन भोगता है, यह एक रोचक प्रश्न इस्लामी धर्म-ग्रंथों में प्रायः उठाया गया है। आत्मा अशरीरी है, इस लिए वहां तो सुख दुख का अवकाश ही नहीं है। रहा शरीर, वह तो कब्र (भूलोक) में दफनाया पड़ा है। फलतः स्वर्ग या नरक में सुख दुःख कैसे और कौन भोगता है, इस प्रश्न का औचित्य सरलतया समझ में आ जाता है।

पारसभाग में भी परलोक संबंधी विस्तृत चर्चा मिलती है। जीव को अशरीरी मानते हुए (4।3)

परलोक के सुख दुःख भोगने के संबंध में इन प्रश्नों की योजना की गई है :-

<u>पूर्व शरीर की प्राप्ति</u> :- इस संबंध में प्रथम विकल्प यह है कि 'परलोक विषे इस जीव कउ बहुड़ि इही सरीर मिलता है'। परन्तु इस मान्यता का खंडन पारसभाग में बड़ी रोचक युक्तियों से किया गया है :-

<u>घोड़ा-सवार</u> :- घोड़े और सवार के पूर्व परिचित दृष्टान्त के द्वारा आत्मा (सवार) की यथावत् स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की गई है :- 'इह सरीर घोड़े की निआई है। भी जब घोड़ा अवर हूआ तब सवार तो अवर नहीं हो जाता'।

<u>परिणामी शरीर</u> :- अरु इहु सरीर तो बृध अवसथा पर्यंत परिणाम कउ पावता जाता है। पर जीव तो कदाचित् अंगा नहीं होता' अपरिणामी जीव की इस मान्यता को केन्द्र में रख कर इसी प्रसंग में कुछ और प्रश्न इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं :- एक मानुष कउ कोई दूसरा मानुष भक्षन कर जावे। तब यहु तो दोनों सरीरहु के अंग एक ही हो जाते हैं। बहुड़ि परलोक विषै दोइ जीवहु

कउं एक ही सरीर किउं बार मिलता है ?`

अर्थात् दोनों शरीरों ने अपने अपने सुख दुःख भोगने हैं, दोनों के एक हो जाने पर यह व्यवस्था कैसे निभेगी ?

दूसरा प्रश्न अधिक रोचक है। क्या अंगहीन मनुष्य परलोक में सुख दुःख अंगहीन रूप में ही भोगता है ? `कोई अंगहीण पुरुष होवै । अरु बहु भजन करै । तब परलोक विषै उस भजन के फल कउं अंगहीण होकरि भोगता है । कै अंगहु संजुगत भोगता है । परु जब कहीए जो बहु पुरषु पुन के फल कउं अंगहीण होइ करि भोगता है । तब स्वरग विषै तउ अंगहीण ही कोई नहीं होता` ।

इस प्रश्न के दूसरे विकल्प के बारे में लिखा है :-
`जो कहै जो अंगहु संजुगति भोगता है । तब उस कउं कहीए जो भजन अरु सुभ करतब विषै तउ उहु अंग उस मानुष के साथ न थे । तउ फल के भोगणे विषै किउं करि संगी हूए` ।

निश्चय ही इस प्रसंग में तार्किकता का उत्कर्ष देखने योग्य है । इस प्रसंग के अन्त में -- सिद्धान्ततः - यह मत स्थापित किया गया है :-
`परलोक विषै अवसमेव इस जीव कउं पूरब सरीर की अपेक्षा ही नहीं रहती` ।

पारसभाग की यही मान्यता इस्लामी जगत् को मान्य है । परलोक का सुख दुःख और उसका उपभोग ईश्वरी विधान है और इस विधान को समझ पाना साधारण मनुष्य के बस की बात नहीं । इस प्रकार के विचार इस संबंध में प्रायः मिल जाते हैं ।[5]

अल्लाह: इस्लामी परम्परा

जीव-सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों पर विचार करने के बाद पारसभाग में `अल्लाह` सम्बन्धी मान्यताओं का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

अल्लाह `(भगवंत : `पारसभाग`) शब्द `इलाह`(देवता) शब्द से[6] विकसित हुआ है और इसकी व्युत्पत्ति `अल + इलाह = अल्लाह` बताई गई है। हज़रत मुहम्मद ने अल्लाह शब्द का प्रयोग संभवत: ईश्वर (परब्रह्म) के अर्थ में किया है और अल्लाह की `अनन्यता` का बार बार जयघोष किया है।

विशेषण :- अल्लाह के लिए विशेषण रूप में आने वाले ९९ नाम बताए गए हैं। इन में सब से महत्वपूर्ण है `अर-रब्ब` (साईं :`पारसभाग`) इन ९९ विशेषणों को `अल्लाह` के गुण बोधक नाम कहा जाता है (` अस्मा-उस-सिफ़ात`) और अल्लाह शब्द ईश्वर का `तात्त्विक` नाम (`इस्म-उज-ज़ात`) बताया गया है।

इसके साथ ही इस्लामी विचारकों की यह धारणा भी रही है कि हज़रत मुहम्मद ने इन सब नामों के अतिरिक्त `अल्लाह` का एक गुप्त नाम (` इस्म -उल-आज़म` : सर्वोच्च नाम) कुरान की किसी आयत में गुप्त रूप से रखा है। फलत: इस गुप्त नाम को लेकर इस्लाम में बड़ी चर्चा हुई है।` आगशा` के अनुसार यह सर्वोच्च नाम केवल पैगंबरों और महान् सन्तों को ही प्राप्त होता है।[8]

स्पष्ट है कि इस्लामी साधना पद्धति में `नाम` और उसकी महिमा ठीक उसी प्रकार प्रतिष्ठित है जिस प्रकार भारतीय साधना पद्धति में। नाम-गणना भी भारतीय `सहस्रनाम` पद्धति से भिन्न नहीं है। कुरान में इन नामों को `अल-अस्मा-अल-हुस्ना` (सब से सुन्दर नाम) कहा गया है।

अल्लाह: परिभाषा

इस्लामी धर्म-शास्त्रियों ने अल्लाह को परिभाषित करते हुए, अल्लाह की सत्ता के ये सात `तत्त्व` निर्धारित किए हैं :- (1) हयाह (जीवन) (2) इल्म (ज्ञान) (3) कुद्र (शक्ति) (4) इरादह (इच्छा), (5) समाअ(श्रवण-शक्ति)[9]

(6) बसार[10] (दृष्टि) (7) कलाम[11] (वाक्)

इन तत्वों की स्थान स्थान पर विस्तृत व्याख्याएं की गई हैं। इस चर्चा का सारांश पारभाग में भी यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। अल्लाह के 'गुणों' और 'तत्वों' की संख्या पर प्रायः मतभेद नहीं है। 'गुण' (तत्व) अनादि हैं या सादि अथवा अल्लाह के भीतर हैं या उसके अस्तित्व से बाहर आदि प्रश्नों को लेकर इस्लामी जगत् में तीव्र मतभेद रहे हैं।[12]

<u>अल्लाह : स्वरूप:</u> - इस्लाम की दृष्टि से अल्लाह के स्वरूप के संबंध में सब से अहम बात है 'अल्लाह की अनन्यता'। इस अनन्यता को 'तौहीद' नाम दिया गया है। इसे 'एकेश्वर वाद' भी कहा जा सकता है।

अल-गज़ाली ने अल्लाह के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए 'नेति नेति' की प्रक्रिया से काम लिया है। इस प्रक्रिया के प्रमुख निष्कर्ष ये हैं :-

1. अल्लाह अशरीरी[13] और देश-काल की सीमाओं से रहित है।
2. संसार में विद्यमान कोई भी वस्तु उस जैसी नहीं है और न ही वह किसी सांसारिक चीज़ जैसा है।

इस अशरीरी अल्लाह का दर्शन आंतरिक भाव-दृष्टि ('इंट्यूशन') से ही हो सकता है। इस भाव-दृष्टि की प्राप्ति के लिए अल-गज़ाली कठोर साधना का विधान करता है। साथ ही गज़ाली ने हृदय (कल्ब) को चिति-शक्ति का अधिष्ठान मान कर अल्लाह के साक्षात्कार के लिए हृदय को ही प्रमुख साधन बनाया है :-

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'
गज़ाली की पहुंच गीता के इस वचन की निकटता को छू लेती है।

स्वरूप: जिज्ञासा । - सामान्यत: भगवंत के स्वरूप संबंधी प्रश्न को व्यर्थ बताया गया है :- `अरु जब कोई इह प्रश्नु करे जो वहु कैसा है। तो इह प्रश्न ही ब्रिथा है` ।

परन्तु जब जिज्ञासा-भाव से कोई साधक इस प्रश्न का समाधान चाहता है, उस स्थिति में कहा गया है :- `जब तूं इस संसे कउं दूर कीआ चाहे। जो जिस पदारथ का रंगु रूपु कछु न होवै। तब उस पदारथ कउं किउं करि सति जाणीए` ।

उत्तर :- तिसका उत्तर इह है। जो इस वारता कउं भी तूं अपणे अंतर ही देख। जो तेरा चेतंन सरूप है सो ब्रिजादा अरु परिणाम ते रहत है। अरु उसका सरूप वरनन विखै नहीं आवता` ।

इस गहन समस्या का समाधान इस युक्ति से भी किया गया है :- `जब इहु मानुख अपणे सरीर विखै वीचार करके देखै। तब सगल पदारथहु कउं रूप रंग ते रहत पछाणै। जैसे क्रोध अरु प्रेम अरु सुख जो है सो इह सभी पदारथ अरूप हैं ।

इन `अरूप` और अशरीरी पदार्थों का अनुभव सब कर सकते हैं। परन्तु इन्हें देख पाना संभव नहीं है। इसी प्रकार `राग` `सुगन्ध` आदि भी चाक्षुष प्रत्यक्ष के विषय नहीं हो सकते :- `तां ते जो कोई इह प्रस्न करे जो अरूप वसतु किउं करि सति होती है। सो इह प्रस्न ही बिअरथ है। काहे ते जो जब इह पुरख राग अरु सुगंध अरु सुआद के रूप अरु चिह्न कउं देखिआ चाहे। तब इनके आकार देखणे विखै भी असमरथ होता है। सो इसका कारनु इहु है। जो रूप रंग की ढूंढ भी मन के संकल्प करि होती है। जिसमें जिस पदारथ कउं नेत्र देखते हैं। तब उसकी मूरत संकल्प विखै द्रिढ़ हो जाती हैं ।

इसी बात को दूसरी युक्ति से इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-

<u>सबद : प्रत्यक्ष :-</u> ‘स्रवणहु की विषै जो सब्द है। सो किस विषै नेत्रहु का देखणा पहुंच नहीं सकता। अरु सब्द का रूप किछु भी पाइ कहु नहीं सकीता। तां ते जिस प्रकार सब्द नेत्रहु की दृष्टि ते विलक्षण है। तैसे ही रूप-रंग का देखणा स्रवणहु ते विलक्षण है’।

इस विवेचन का फलितार्थ इस प्रकार दिया गया है :- ‘इह मानुष अपणा अरूपता अरु निराकारता करके भगवंत की निराकारता अरु अरूपता कउं पहचाणै। अरु इउं भी जाणै जो जैसे इह जीव सात सरूप है। सो रूप रंग ते रहत है’।

‘अरु इह जो सरीर रंग-सहित है। सो जीव का देस है। तैसे ही सरब स्रिस्ट का जो ईसुर भगवंत है। सो अरूप और निराकार है’।

जीवात्मा और ‘भगवंत’ के स्वरूप (निर्लेपता) की तुलना इस प्रकार की गई है :- ‘भगवंत कउं जो अस्थान ते निरलेप कहा है। सो तैसे ही इस जीव कउं हाथ अरु पांव अरु सीस किसी अवर अंग विषै पाइ नहीं सकीता। काहे ते जो इह इंद्रीआं अरु सरब अंग खंडाकार हैं अरु चेतंन रूप जो जीव है। सो अखंडाकार है’।

इस ‘अखंडाकार’ जीव के संबंध में आगे कहा गया है :-

‘सो अखंडाकार पदारथ किसै खंड वसतु का इसथित होणा असंभव है।’ तां ते इह वडा अचरज है। जदपि जीव की सता ते कोई अंग भिंन नहीं। पर तउ भी उस कउं किसी एक इस्थान विषै कहि नहीं सकीता’। ‘अरु सरीर के सरब अंग जीव की आगिआ विषै अधीन हैं। अरु जीव सभनां का ही राजा है। तैसे ही सरब जगत भगवंत की आगिआ के अधीन है’।

‘भगवंत’ और जीव-गत इस मौलिक समानता को आधार बना कर ‘भगवंत’ की पहचान का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :[14] -

'भगवंत की पछाण'

'भगवंत की पछाण' का वर्णन विषय को सुगम रूप से प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा तथा जीव के 'स्व' (अस्तित्व) रूप तथा नाम-रूप-अतीत अवस्था की प्रतिष्ठा के साथ किया गया है :- 'जैसे इह मानुष अपणी होणी कउं जाणता है। जैसे मैं हौं। अरु इउं भी जाणता है जो केतेु काल ते आगै मेरा नाम रूप कुछ न था'।

'बिन्दु': सृष्टि :- 'बिंदु' से प्राणी की रचना करना 'भगवंत' की शक्ति का प्रमाण है :- 'बहुड़ि जब इहु मानुष अपणी आदि कउं समझै। तब आदि उतपति का कारणु बीजु है। सो मलीन जल की बूंद थी। उस बूंद विषै बुधि-श्रवण-नेत्र-सीस-हाथ-पांव-रसना-अस्त(अस्थि)-नाड़ी-मांस-तुचा कुछ न थी। ताते इहि विचार करे। जो सरीर विषै नाना प्रकार के अचरज उतपति हुए हैं सो इसने आप ही बनाए हैं। के किसी ने इसकी उतपति कीआ है - - जब इस प्रकार इहु मानुष अपणी उतपति कउं पछाणै। तब अपणी उतपति करणे हारे महाराज कउं सुगम ही पछाणि लेवै'।

स्पष्ट है कि जगत कर्तृत्व का श्रेय ईश्वर को देकर उसकी पहचान की बात शुरू की गई है। निश्चित ही यह दृष्टि भारतीय न्याय-दर्शन के अधिक निकट है।

जगत् रचना के साथ साथ जीव के 'शरीर यंत्र' की संरचना को ईश्वर की शक्ति बुद्धि और महिमा का द्योतक बताया गया है। ईश्वर की 'कारीगरी' का वर्णन इस प्रकार किया गया है :- 'जैसे इह दांत हैं। सो प्रथम दातहुं के सीस तीखण हैं अरु बहु तीखणता करके अहार कउं खंड खंड करते हैं। बहुड़ि दूसरे जो दांत हैं। सो तिनके सीस चउड़े हैं। तब तिनहु करि अहार पीसिआ जाता है। जैसे अनाज कउं जंत्र (चक्की-पनचक्की आदि) पीसता है। अरु जैसे जंत्र विषै नली करके अनाज इकठा होइ आवता है।'

'तैसे ही रसना भी ग्रास कउं एकठा करके दंतहुं तले देती है। बहुड़ि रसना के नीचे एक सरोवर राखिआ है। सो उस करके रसना ग्रास कउं भिगोई लेती है। तब अहार कउं भिगोवणी करके कोमलताई उपजती है तां ते वहु ग्रास सुखेन ही कंठ विषै उतर जाता है। -- तां ते जो कछु भगवंत ने कीआ है। सो उस ही विषै पुरन भलाई अरु सुंदरताई है'।

'भगवंत' की इस 'कारीगरी' को पारसभाग के प्रारंभ में ही इस प्रकार लक्षित किया गया है :- 'उसका ईस्वरजु अरु उसकी पुरनताई अरु समरथता को कोई जीउ पछाण नहीं सकता। -- तां ते सरब सुघहु (विचारों) का फलु इही है। जो उसका आसचरज कारीगरी कउं देख करि महाराज कउं पछाणहि'। यह 'कारीगरी' भी 'भगवंत' की 'पहचान' की कुंजी है।

शरीर यंत्र से आगे बढ़कर प्राकृतिक संपदा की चर्चा करते हुए कहा गया है :- 'अहारहु की उतपति का सनबंध जो मेघ अरु पवन अरु सीत उसन आदिक रुतों के साथ है सो तिस कउं पछाणै'।

'अरु अचरज रूप जो खाणीआ (खानें) हैं। सो तिनहु विषै लोहा अरु तांबा अरु रतिआदिक अवर धातु उपजतीआं हैं। --- इह सब ही पदारथ जगत विषै चाहीते थे। सो भगवंत ने आगे ही अपणी इछा करके कीए हैं।

पारसभाग के अनुसार प्रकृति के इस विशाल प्रांगण में फैली हुई इस सामग्री के माध्यम से इस के रचयिता 'भगवंत' की पहचान की जा सकती है।

'दया : पहचान' :- पारसभाग में वर्णित ईश्वर का रूप इस्लामी 'रब्ब' (जगत् पति) का प्रतिरूप है। 'कुरान' की परम्परा में ईश्वर का यह सामर्थ्य

देखने योग्य है :- ` - - - वहु ठाकुर ऐसा समरथु है जो जिस प्रकार किसी पदारथ कउं उतपति कीआ चाहै। सो कर सकता है। बहुडि इस ते वसेष किआ बरनन करीऐ उसका बलु। जो ऐसे मलीन जल ( वीर्य ) की बूंद ते इहु सरीर सुंदर बनाइआ है` ।

जगत् कर्ता इस ईश्वर को उसकी `दया` से पहचाना जा सकता है। इस संबंध में `अंबीबाई` की साखी प्रस्तुत की गई है :-` - - अंबीबाई भी कहा है। जैसे बालक के ऊपर माता पिता की दइआ होती है। तैसे ही सरब जीवहु पर भगवंत इससे भी अधिक दइआल हैं। तां ते इस जीव कै उतपति होणे करके भगवंत की दइआ पछाणी जाती है` ।

`निरलेपता: `सुधता` : पहचान :-` जगत के कर्ता दयालु `भगवंत` को पारसभाग में निरलेप और सुध बताया गया है :-` जैसी कछु असथूलता मन के संकल्प विखै आवती है। सो तिसते भगवंत निरलेप है। अरथु इह जो उसका सरूप संकल्प विखै नहीं आवता। बहुडि देस - काल ते भी निरलेप है। - - बहुडि म्रिजादा ते रहत है। अरु अखंड है। अरु अलप है। तां ते जो वसतु सरूप अरु म्रिजादा ते रहत होती है। उसका सरूप संकल्प विखै कदाचित् नहीं आवता` ।

जीवात्मा और `भगवंत` को संकल्प अर्थात् मन-बुद्धि की सीमाओं से परे बताते हुए कहा गया है :-- ` जिस पदारथ कउं नेत्रहु करि देखिआ होवै। अथवा उसकी निआई अवर वसत देखी होवै। तब उसका आकार संकल्प करि जाणिआ जाता है। सो तिसका अरथु इही है। जो अमकी वसतु कैसी है। अरु उसका रूप रंग किआ है। अरु उसकी म्रिजादा ( मर्यादा) कैसी है। बहुडि लघु अरु दीरघ है। सो उस चेतंन रूप विखै ऐसे संकल्पहु का मारग ही नहीं`। `भगवंत` का यही `निरलेपता` और `सुधता` उसकी एक `पहचान` है।

`भगवंत की पातशाही` :- जगत का समस्त क्रिया-कलाप `भगवंत` की आज्ञा से किस प्रकार चलता है, यह ज्ञान `भगवंत` की पहचान का साधन है :- `वहु महाराज अपणी पातशाही विषै किउं करि वरतता है। अरु सरब देवति अहु कउं किस प्रकार आगिआ विषै चलावता है। अरु देवते उसकी आज्ञा किउं करि मानते अरु चलते हैं। बहुड़ि जगत के कारजहु कउं किउं करि सिध करावता है। अरु आकास लोक ते उसकी आगिआ भूमलोक विषै किउं करि आवती है। अरु तारा मंडल कउं किउं करि फिरावता है - - इस विदिआ कउं भगवंत के वरततहु का पछानणा कहीता है`। `भगवंत` की `आगिआ` का विवरण इस प्रकार दिया गया है :-

`भगवंत` : आज्ञा :- आज्ञा वचन-रूप है। परन्तु भगवंत की आज्ञा इस स्थूल मानवीय आज्ञा के विपरीत केवल `परावाक` के रूप में ही अनुभव गम्य है और इस आज्ञा की पहचान `भगवंत` की पहचान है :- `परु उसका वचन रसना अरु अधर अरु दांत अरु कंठ करि नहीं होता। जैसे जीव के मन विषै किसी वचनवारता का सबद अरु अछर नहीं होता। अरु वहु सबद अखंड होता है। तैसे ही उस महाराज का वचन इस ते भी अधिक सूखम है। तां ते संतजनहु के रिदे विषै जो अकासबाणी हुई है। सो सभ ही भगवंत के वचन हैं। अरु परावाणी ते उतपति हूए हैं। बहुड़ि उही वचन संतजनहु के मुख ते जगत विषै प्रगटते हैं`।

परन्तु इस ज्ञान-वर्धक चर्चा का गला इस्लामी धर्म-शास्त्र की दुहाई देकर इस प्रकार घोंट दिया गया है :- `बहुड़ि भगवंत की जो निरलेपता अरु सुधता है। तिसका संपूरन भेद तब ही समझ सकीता है। जब जीव के जथारथ रूप का बरनन करीऐ। पर धरम सासत्र विषै इस वचन कउं प्रसिध करणे ते वरजिआ है। - - - जैसे साईं भी कहा है। जो इस मानुख कउं मैंने अपणे सरूप अनुसार उतपति कीआ है`। `सरह` में `अक्ल` की गुंजाइश नहीं। इसी

दृष्टि का विस्तार इस्लामी परम्पराओं के अनुरूप यहां तथा अन्यत्र भी कई स्थानों पर मिलता है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि `भगवंत` की पहचान पहले स्थूल दृष्टि के माध्यम से करवाई गई है। अर्थात् प्राकृतिक जगत की रचना के स्थूल धरातल पर `पहचान` की बात शुरु की गई है और फिर क्रमशः दया, निर्लेप-भाव, आत्मा आदि सूक्ष्म तत्त्वों की सहायता से `भगवंत` की पहचान करवाई गई है।

भगवंत: स्वरूप :- भगवंत को सृष्टि का कर्ता बताकर उसकी अनन्यता तथा उसके शाश्वत भाव की प्रतिष्ठा इस प्रकार की गई है :- `तेरे उतपति करणी हारा भगवंत है। सो सरब विस (विश्व) का उतपति करता भी वही है। बहुड़ि वहु एकु है। अरु उसकी निआई अवर समरथ कोई नहीं। अरु वहु किसी जैसा भी नहीं। बहुड़ि वहु अनादि है। अरु अबनासी है। जो उसका अंतु कदाचित नहीं आवता। अरु सरब काल विषै सरब रूप है। अरु कदाचित असत-भाव (असदु-भाव) कउं प्रापति नहीं होता`।

जगत् : कर्तृत्व :- जगत् कर्तृत्व के संबंध में भगवंत और जीवन दोनों की चर्चा की गई है। जगत के सामान्य कार्य प्रायः जीव-कृत हैं। परन्तु जीव को प्रेरित कर्ता ही कहा जा सकता है। इस इस्लामी मान्यता की पुष्टि इन पंक्तियों में की गई है :-- `तुझ कउं भगवंत ने करतब करणी का सस्त्र (शस्त्र) बनाइआ है। जैसे लिखारि (लेखक) के हाथ विषै कलम होती है। अथवा जैसे दरजी के हाथ सूई होती है। सो लिखाई अरु सीवणा कलम और सूई का करतब नहीं। काहे ते जो वहु दोनों पराधीन हैं`।

यह `निर्लेप` और असरीरी ईश्वर मानवीय कल्पनाओं से सर्वथा अतीत है :-`उसका रूप सरब ते निरलेप है। तां ते उस कउं कारण अरु कारज

नहीं कहाता । अरु तरीरु ते रहत है । अरु उसके सरूप समानि कोई आकार अर द्रिस्टांत नहीं संभवता । जो वहु रूप अरु रंग ते विलक्षण है । इसी कारांण ते जो कछु इस मानुष के संकल्प विषै आवता है । सो भगवंत उस ते परै है । काहे ते जो संकल्प अरु बुध विषै आवणेहारे पदारथ सभी उसके उत्पति कीए हूए हैं । अर उत्पति हूई वसतु ते उसका सरूप भिन्न है ।

चूंकि 'परमातमा' का 'सरूप' सर्व-सामान्य की समझ से परे है, इसलिए इस विषय पर अधिक कहना अनुचित है :- 'परमातम सरूप का वर्णिआण धरम-सासत्र विषै भी नहीं कहा । काहे ते जो जब संसारी जीव इस गुह्य भेद कउं स्रवण करहिंगे । तब प्रतीत ते हीण हो जावहिंगे । तां ते महाराज ने संत जनहु कउं इस प्रकार आगिआ करी है जो जीवहु की बुधि अनुसार उपदेश करहु'

गीता की :- ' न बुद्धि भेदं जनयेद् अज्ञानां कर्मसंगिनाम् '

इस मान्यता के साथ पारसभाग की इस मान्यता का साम्य स्पष्ट है ।

भगवंत : स्मरण : - इस निराकार तथा मन-बुद्धि से अगम 'भगवंत' का प्रतिक्षण स्मरण इस्लामी साधना का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । इसीलिए -' भगवंत के सिमरन' को समस्त साधना का फल बताते हुए 'साई' ' की साखी प्रस्तुत की गई है :-' जो तुम मेरा सिमरन करहु तब मैं तुमारा सिमरन करउं' । इस अवतरण को पढ़ कर गीता की ये पंक्तियां बरबस याद हो आती हैं :-

' ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस् तथैव भजाम्यहम्'

स्मरण के सम्बन्ध में 'महापुरुषों' के वचन तथा उन वचनों की पुष्टि में अनेक युक्ति-प्रमाण प्रस्तुत करते हुए 'स्मरण' की चार अवस्थाएं बताई गई हैं :-

कनिष्ठ अवस्था :- ' रसना विषै भगवंत का नाम उचार करणा । अर रिदे सिउं अचेत रहणा । सो इह कनिष्ठ अवस्था है'

तुलनीय : माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि,
मनुआ तो चहुं दिसि फिरै, यै तो सिमरन नाहिं

परन्तु इस कनिष्ठ अवस्था को भी सांसारिक वाद-विवाद तथा मिथ्या भाषण से उत्तम बताया गया है।

मध्यम अवस्था :- 'चित में भजन करणा। अरु जब भजन विषै चित की एकाग्रता न होवे। तउ भी हठ करके संकल्प कउं दूर करणा। अरु मन कउं भजन विषै इस्थित करणा। सो इह मधम अवस्था है'।

उत्तम अवस्था :- 'इस पुरुष का सदा भजन विषै इस्थित हो जावे। अरु भजन का रस (रस) ऐसा प्रबल होवे। तउ भी जतन करके चित कउं उसी ओर ले आवे। इह उत्तम अवस्था है'।

पूर्ण-प्रेम अवस्था :- नाम-जप एक स्थूल प्रक्रिया है। परन्तु इस प्रक्रिया से 'अजपा-जाप' स्थिति की प्राप्ति होती है :- 'भजन अर जाप अछरहु कर होता है। सो निरसंदेह असथूल है। अरु संकल्प रूप है। अरु परम अवसथा इह है जो संकल्प रूप है। अरु परम अवसथा इह है जो संकल्प अर अछरहु का अभाव हो जावे। अरु केवल ब्रह्म सता विषै इस्थित होवे। सो इह अवस्था पूरन प्रेम करि होती है'।

इस अवस्था का चरम उत्कर्ष इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है :- 'जब सरब पदारथहु की सता दूर हुई। तब केवल ब्रह्म सता ही शेष रहती है। सो वहु सता सति रूप है। - - - तब ऐसी अवसथा विषै वहु पुरुष परमातमा सों अभेद होता है'।

स्पष्ट है कि गुलाबदासी का यह अध्यात्म-चिन्तन एक ओर तो सूफी-चिन्तन के भक्ति मार्गीय तत्वों से मण्डित है तो दूसरी ओर वेदान्त की अभेद

(अद्वैत) दृष्टि तथा संतों के 'अजपाजाप' जैसे अनेक तत्व नाम-रूप खोकर गज़ाली की दृष्टि में समाहित हुए हैं।

भगवंत : दर्शन :- गज़ाली ने निर्मल हृदय के दर्पण में 'भगवंत' के दर्शन की बात कही है। पारसभाग में 'भगवंत' के दर्शन के संबंध में कहा गया है :- 'इस(जीव) का रिदा दरपन की निआई है। तां ते जो पुरुष इस विषै बुधि की द्रिस्ट कर देखता है। तब उस कउं भगवंत का दरसन प्रतख भासता है'।

दर्पण में प्रतिबिम्बित 'भगवंत' का रूप इस्लामी दृष्टि के अनुरूप है। 'भगवंत दरसन' की भूमिका में जीव का 'स्व' दर्शन निहित है। क्योंकि इस्लामी परम्पराओं के अनुसार जीव को 'भगवंत' ने अपने अनुरूप रचा था। इस संबंध में पारसभाग का यह अवतरण मननीय है :- 'प्रथमै इह मानुख अपणे सरूप के होणे करिके भगवंत के सरूप कउं पछाणे। अपणे गुणहु करिके भगवंत के गुणहु कउं पछाणे। - - - जैसे इह मानुख अपणे होणे कउं जाणता है। जैसे मैं हौं'।

निष्कर्ष यह कि भगवंत का बादरूप् प्रत्यक्ष तो संभव नहीं है केवल उसका प्रतिबिम्ब ही वासना-मुक्त हृदय में देखा जा सकता है।

ईश्वर : भगवंत :- पारसभाग में कुछ ऐसे वचन कई स्थानों पर मिलते हैं, जिनसे ध्वनित होता है कि ईश्वर तथा 'भगवंत' में एक विभाजक रेखा सी खींची जा रही है।

संभवतः जगत का कर्तृत्व 'रब्ब' ('रब्ब-उल-आलमीन') को दिया गया है और इस 'रब्ब' के ऊपर अल्लाह की कल्पना की गई है। 'रब्ब' शब्द का पूरा अर्थ-विस्तार साईं (स्वामी) शब्द में स्थापित किया गया है और इसी प्रकार परब्रह्म के स्थान पर अल्लाह शब्द रखा गया है। इस सम्बंध में यह विवेचन पर्याप्त रोचक है :- ' इह सरब स्रिस्टि ईसर के आसरे है। अरु ईसर

उस महाराज के अधीन है। अरु महाराज कउ जो ईसरहु के ऊपरि कहा है। सो अस्थूल ऊचता अरु नीचता भी उस विखै पाई नहीं जाती। तां ते बैकुंठ विखै भी उसका अस्थान नहीं कहि सकीता। जो बैकुंठ अरु बैकुंठवासी देवते सो सभी उसकी समृध्यता के आस्रे हैं। बहुड़ि वहु भगवंत जिस प्रकार स्रिस्टि की उतपति ते आगे था सो अब भी उसी प्रकार इसथित हैं। - - - ईश्वर के लिए बहुवचन सूचक 'ईसरहु' शब्द संभवतः देवताओं का सूचक है।

'वहु भगवंत अपणे गिआन कर सरब पदारथहु का गिआता है। अरु जो कछु जानणे जोग है। सो तिस कउ आगे ही जानता है। बहुड़ि उस ही के गिआन की अंस सरब पदारथहु विखै भरपूर है। - - इसी कारन ते प्रिथ्वी के अणु अरु ब्रिछहु के पाति अर जीवहु के सुआस अर रिदिअहु के संकल्प अर इति आदिक अउर सभ ही पदारथ भगवंत के गिआन विखै इसथित हैं'।

'भगवंत' का यह अशेष ज्ञानमय रूप 'परब्रह्म' की कल्पना के अधिक निकट है। भारतीय अद्वैतवादियों का प्रसिद्ध दृष्टान्त 'हस्तामलक' (अर्थात् सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष) भी इस अवतरण में बड़ी सफाई के साथ फिट किया गया है। ईश्वर को 'भगवंत' की इच्छा का स्थान इस प्रकार बताया गया है :- 'तैरा चैतंनता का अस्थान रिदा कहाता है। अरु उस करके सरब क्रिआ सिध होती है। तैसे ही भगवंत की इछा का अस्थान ईसर है। अरु ईसर की सत्ता करके सरब जगत का बिवहार सिध होता है'।

हृदय की महिमा के संदर्भ में - प्रसंगतः - 'भगवंत' और 'ईसर' का यह भेद इन शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है :- 'प्रिथमे भगवंत की इछिआ ईसर विखै आन फुरती है। अरु जैसे मेरी इछिआ रिदे असथान ते सीस विखै पहुंचती है। तैसे ही भगवंत इछिआ ईसर ते अवर देवति बहु कउ पहुंचती हैं'।

परन्तु सामान्यतः 'भगवंत' और 'ईसर' समानार्थी रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

ग़ज़ाली : नास्तिकवाद

इस्लामी परम्पराएं विशुद्ध नास्तिकवाद से प्राय: अछूती रही हैं। क्योंकि परम्पराओं पर प्रश्नचिन्ह लगाने की अपेक्षा परम्पराओं का पोषण करते चले जाना इस्लाम की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस्लामी परम्पराओं और आचार-मर्यादाओं में ज़रा सी भी शिथिलता लक्षित होने पर किसी भी मुसलमान को `काफिर` या `ज़िंदीक` कहा जाना इस्लामी इतिहास की जानी पहचानी घटना है।

फिर भी कुछ इस्लामी विचारकों ने बड़े साहस के साथ इस्लामी परम्पराओं के प्रति अपना अविश्वास कई बार प्रकट किया और इसी कारण उन्हें कठोर से कठोर यातनाएं भी भुगतनी पड़ीं।[15]

इन विचारकों में एक नाम है `अबान`। एक प्रामाणिक उल्लेख के अनुसार `अबान` ने पूछा था, `अल्लाह ने अपने को स्वयं बनाया है, अथवा किसी और ने उसे बनाया है?`।[16] इसी प्रश्न के कारण उस पर लानतों की बौछार की गई।

एक अन्य विचारक ने मानव को दो वर्गों में विभाजित किया है। एक बुद्धिमानों का वर्ग जो धर्म पर आस्था नहीं रखता और दूसरा मूर्ख वर्ग जो धर्म पर आस्था रखता है।[17]

एक अन्य विचारक ने लिखा, `पैगम्बरों की बातों पर ईमान न लाओ। वे सब बातें केवल जाल साज़ लोगों की (गढ़ी हुई) हैं`[18]।

यद्यपि इन नास्तिकवादियों की कोई पूर्ण रचना आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी यह मान लेने का एक औचित्य है कि इन लोगों ने अपने विचारों

का प्रतिपादन बड़े व्यापक स्तर पर किया था ।

इसीलिए इन नास्तिकवादियों का खंडन 'कलाम' (धर्म मूलक-अध्यात्म) के प्रत्येक व्याख्याता को करना पड़ा । अल-गज़ाली[19] ने इन नास्तिकवादियों को तीन वर्गों में विभाजित किया है :-

1. 'दुहरी' :- ये लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे । साथ ही ये लोग जगत् को अनादि भी मानते थे । इन्हें 'ज़िन्दीक' भी कहा जाता था ।

2. 'प्रकृतिवादी' : इन लोगों का ईश्वर में तो विश्वास था पर ये लोग ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानते थे । भारतीय सांख्य-दर्शन के समकक्ष इनकी दृष्टि जान पड़ती है ।

3. 'बहुदेववादी' :- यूनानी दर्शन-विशेषतः सुकरात, प्लेटो और अरस्तू - के अनुयायी ये लोग अल्लाह के सिवा कितने ही देवी-देवताओं पर विश्वास करते थे ।

इस्लामी इतिहास में - एक अन्य सूत्र के आधार पर - नास्तिकों के ये तीन वर्ग बनाए गए हैं :-

1. वे लोग - जो अनीश्वरवादी हैं और जगत को अनादि मानते हैं - नास्तिक हैं । संभवतः ग्रीक दार्शनिकों की ओर यह संकेत है ।

2. वे लोग - जो ईश्वरवादी हैं, परन्तु जगत् को अनादि मानते हैं - नास्तिक हैं । जैसे भारतीय ईश्वरवादी दार्शनिक ।

3. वे लोग -जो अल्लाह के अतिरिक्त देश, काल और आत्मा को भी अनादि मानते हैं - नास्तिक हैं । भारतीय परम्परा में भी ऐसे विचारक हैं ।

पारसभाग : नास्तिकवाद : - पारसभाग में एक दो स्थलों पर नास्तिकों की युक्तियों का खण्डन किया गया है। इन नास्तिकों को 'मूरख-मानुष' तथा 'संतजनहु की प्रिजादा ते उलंघित' बताया गया है। इन 'मूर्खों' (नास्तिकों) की 'अवज्ञा' और 'मूर्खता' सात प्रकार की बताई गई है :-

'भगवंत' : निषेध : ' प्रिथमे ऐसे मूरख मानुष हैं। जो उनकी प्रतीति भगवंत पर भी नहीं होती। अर इउं कहते हैं जो भगवंत भी कल्पना मात्र है। काहे ते जो जब कोई इस जगत का ईसर होता। तब उसका भी कछु रूप रंग होता। तां ते जिसका रूप, रंग अरु अस्थान, दिसा न पाई जावे। तब इस करके जाणिआ जाता है जो भगवंत कलपिआ हूआ है'।

इस कल्पित ईश्वर के 'अदर्शन' को आधार बना कर ईश्वर का निराकरण करते हुए ये 'नास्तिक' लोग जगत् व्यवहार के संबंध में यह उपपत्ति देते हैं :- ' इस जगत के कारज ततहु के सुभाव अरु निछत्रहु के आधीन पड़े होते हैं'। पंच तत्वों (भूतों) से जगत की व्याख्या करने वाले भारतीय 'चार्वाक' लोगों का[20] भी यही तर्क था। परन्तु नक्षत्रों का आश्रय लेने वाली बात विस्मयकारी है।

इस 'स्थापना' का स्पष्टीकरण आगे इस प्रकार किया गया है :- 'बहु मूरख ऐसे ही जाणते हैं। जो इह मानुष अरु जीव अरु नाना प्रकार की रचना अनेक गुणहु संजुगति देखीती है। सो ईसर बिना आप ही उतपति हूए हैं। अरु इउं ही इसथित रहैं। अथवा इनका उतपति होणा ततहु का सुभाव है'।

इस स्थापना का खण्डन करते हुए 'मूरख' तथा 'अपणी आप ते अचेत' जैसे विशेषण इस मत के स्थापकों के लिए - उत्तरपक्ष के प्रारंभ में ही --प्रयुक्त हुए हैं। फिर यह मरियल सी युक्ति दी गई है :- 'जैसे कोई पुरख सुंदर अक्षरहु कउं लिखिआ हूआ देखै अरु कहे। जो इह अक्षर विदिआवान अरु

समुग्ध लिखारी बिना आप करि लिखे हुए हैं। अथवा अक्षरहु की मूरति अनादि काल की चली आवती है।

इस युक्ति के आधार पर कहा गया है :- `जिनकी बुधि के नैत्र ऐसे अंध होवहिं। तब उनका इस प्रकार देखणा ही भागहीणता का मारग है` अर्थात् `भागों के पारस` से वे लोग वंचित रह जाते हैं।

`मूरखता` का दूसरा प्रकार `परलोक` में आस्था का अभाव बताया गया है :- ` - - इउं कहते हैं। जो इह मानुष भी घास अरु खेती की निआई है। तां ते जब यह जीव म्रित होता है। तब मूल ही नस्ट हो जाता है`
(वही)

इस `मूल` के नष्ट होने से धर्म शास्त्रों में विहित `पुंन अरु सुख दुख एवं ताड़ना सब ही विअरथ` हो जाती है और निश्चय ही यह स्थिति धर्म-शास्त्रियों के लिए चुनौती हो सकती है। पारसभाग में लिखा है :---
`इह ऐसे मूरख हैं। जो आप कउं भी घास अरु बेलहु अरु गरधप की निआइ जाणते हैं। अरु वहु आतमा जो चेतंन रूप अविनासी है। तिस कउं नहीं पछाणते`।

स्पष्ट है कि युक्ति-प्रमाण की अपेक्षा यहां केवल अपद्र-शब्दों के प्रयोग में ही कौशल दिखाया गया है।

तीसरी नास्तिकता यह है :-` वहु भगवंत अरु परलोक कउं मानते हैं। पर उनकी प्रतीति निर्बल होती है। - - अरु कहते हैं जो भगवंत कउं हमारे भजन करने की अपेक्षा किआ है`।

इतना ही नहीं वे यह भी कहते हैं :-` हमारे पाप करने करि उस कउं दुख किआ है। काहे ते जो वहु तौ ऐसा महांराज पातिसाहु है। जो उस

कउं भगत कै भजन करने की परवाह कछु नहीं । तां ते उसके निकट पाप अरु भजन समान हैं ।

इस प्रकार के युक्ति-वचन भारत में भी वेदांतियों के मुख से सुने जा सकते हैं । पारभाग में 'भगवंत' और 'साईं' के वचनों की उद्धरणी देकर तथा किसी वैद्य-द्वारा दिए गए पथ्य -कुपथ्य के दृष्टान्त से इन युक्ति-वचनों का निराकरण किया गया है ।

चौथा कोटि के 'मूर्ख' कहते हैं :- 'जो संतजनहु ने भोग अरु क्रोध रिदे कउं सुध करणा जो कहा है । सो इह असंभव है । काहे ते जो इह सुभाव तउ मानुख की आदि उत्पति विषै मिले हूए उपजे हैं ।

इन तत्त्व भावों की पूर्ण निवृत्ति उसी प्रकार असंभव है जैसे कोई 'काले कंबल कउं सुपेद कीआ चाहैं' ।

इस मान्यता का भी निषेध 'संतवचनों', अंबीआई और 'साईं' के वचनों को उद्धृत कर किया गया है । इस प्रसंग में 'सत्त्व-भावों के उन्नयन' की बात ही प्रकारान्तर से की गई है ।

पांचवें मूर्ख कहते है :- 'वहु भगवंत परम दइआल अरु क्रिपाल सरूप हैं । तां ते हमारे अवगुणां की ओर न देखेगा' ।

निराकरण :- 'इउं नहीं जाणते जो जदपि वहु महांराज परम दइआल है । पर तउ भी पापी मानुखहु कउं डंडु देणेहारा भी वही है'।

यह 'दण्ड-धर' ईश्वर रोग, कष्ट और निर्धनता आदि दुःख भी दण्ड के रूप में दे सकता है । यह बात वे 'मूर्ख' नहीं जानते ।

इन युक्ति-वचनों का उपसंहार करते हुए कहा गया है :-' जब वहु मुरख भगवंत कउं क्रिपाल रूप जाणते हैं । अरु भाइआ की त्रिसना का तिआग

नहीं कर सकते । अउ परलोक की वारता मुख से विवरण ही कहते हैं । जो हम कउं भगवंत वखसि लेयेगा । तो अपणे मन के सिखार हुए हैं । अरु वासना के दास हैं । अरु भगवंत की क्रिपा पर उन कउं प्रतीति ही कछु नहीं` ।

लगता है इस युक्ति-जाल के पीछे काम कर रही `दुष्प्रवृत्ति` को इन पंक्तियों में ठीक से पकड़ लिया गया है ।

छठे `मूर्ख` अपनी साधना के मद में चूर हैं :- `हम ऐसी अवस्था कउं प्रापति हुए हैं । जो हम कउं पापहु का सपरस नहीं होता । अरु हमारा धर्म `ऐसा द्रिढ हुआ है । जो उस कउं कदाचित मैल नहीं लागती` ।

इन दंभी लोगों की पोल इस प्रकार खोली गई है :-` जब कोई उनका एक वचन खंडत करके निरादर करें । तब सरब आरजा (आर्य-भाव) अपणा उसके विखे खावते हैं` ।

सातवें `मूर्ख` दम्भी और कपटाचारी होते हैं :- ` अपणी वासना की प्रबलता करके मूढ़ हुए - - कुमारगि विखे चले जाते हैं । अरु नाना प्रकार के भोग भोगते हैं । बहुरि सूखम बचनहु का उचार करते हैं । अरु आप कउं संत करि दिखावते हैं । अरु भेख भी संत जनहु का करते हैं` ।

इनकी विशेषता यह है :-` भोगहु कउं बुरा नहीं कहते । अरु इउं भी नहीं जाणते जो भोगहु करि दुख प्रापति होता है । अरु कहते हैं जो भोग कउ निंद नहीं । अरु भोगहु विखे दुख कहां हैं` ।

इन `मूर्खों`` का इलाज केवल `राज दण्ड` है :- ` इन कउं सैतान ने जीत लिया है । इह वचन अरु चरचा करके सीधे नहीं होते । काहे ते जो अजाणता करके नहीं भूले । अरु जाण बूझ के बावरे हुए हैं । तां ते उनका उपाव राजडंड है` ।

निष्कर्ष :- इस पूरे विवेचन को देखने से स्पष्ट होता है कि 'भगवंत' को न मानने वाले वास्तविक नास्तिक प्रथम प्रकार के नास्तिकों में ही आते हैं।

दूसरे प्रकार के नास्तिक केवल 'परलोक' में आस्था नहीं रखते। 'भगवंत' के सम्बन्ध में उनके विचारों का उल्लेख नहीं किया गया। तीसरे प्रकार के 'मूर्खों' को नास्तिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वे आस्थावान् हैं, चाहे उनकी आस्था कितनी ही निर्बल क्यों न हो।

नास्तिकों के शेष चारों प्रकार दम्भ और कपटाचरण से संबंधित हैं। इन्हें विशुद्ध नास्तिक कहने की अपेक्षा 'मनमुखी' कहना अधिक संगत है।

cccc

पाद टिप्पणियां

(1 से 20)

1- इस्लाम की दृष्टि से कुत्ता नापाक जानवर है। देखिए : 'डिक्शनरी आफ इस्लाम'।

2- शूकर भी इस्लामी 'नुजस-ए-निगाह' से नापाक है।

3- देखिए : अध्याय 1, सर्ग 7-8

4- 'नबी' का बहुवचन। अल-कुरान के 21वें 'सूरह' का नाम 'अंबीया' है। इसी 'अंबीया' को 'अंबीआई' रूप पारसभाग में दिया गया है। मुहम्मद से पूर्ववर्ती पैगम्बरों के लिए भी यह शब्द पारसभाग में कई बार प्रयुक्त हुआ है। 'नबी' के मूल में 'नबह' है और इसका अर्थ है 'घोषणा करना'। 'नबी' और रसूल प्राय: पर्यायवाची शब्द माने गए हैं।

5- विस्तार के लिए देखिए :-

क- 'दा रिलीजन आफ इस्लाम' (लाइफ आफ्टर डेथ) पृष्ठ 270-280

ख- 'डिक्शनरी आफ इस्लाम' (डेथ)

6- विस्तार के लिए देखिए : डिक्शनरी आफ इस्लाम।

7- अल्लाह के गुण बोधक नामों में 'अर-रहमान' (दयालु) 'अन नूर' (प्रकाश) और 'अस-सबूर' (सब्र करने वाला) आदि नाम प्रसिद्ध हैं और इन्हें 'अस्मा-उल-जमालिया' (प्रताप बोधक नाम) कहा जाता है। इनके विपरीत 'अल-क़वी' (शक्तिशाली), 'अल-मुंतकिम (बदला लेने वाला) और 'अज़-ज़ार' (दुख देने वाला) आदि नाम 'अस्मा-उल-जमालिया' (भयंकर नाम) कहे जाते हैं।

8- विस्तार के लिए देखिए : डिक्शनरी आफ इस्लाम

9- अल्लाह के बारे में कहा गया है कि वह बिना कानों से ही सब कुछ सुन लेता है। तुलनीय: 'पग बिन चलत, सुनत बिनु काना' (तुलसी)

10- 'बसर' अरबी भाषा में दृष्टि का बोधक है। बिना आँखों से देखने की शक्ति का भाव इस शब्द में भी निहित है।

11- अल्लाह का 'कलाम' पैगंबरों पर जिब्राइल फरिश्ते के माध्यम से उतरता है। 'कुरान' इसी माध्यम से हजरत मुहम्मद पर उतरी। परन्तु हजरत मूसा को 'अल्लाह' ने प्रत्यक्ष रूप से अपना 'कलाम' दिया था।

12- देखिए :-

क- 'इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स'

ख- 'दी रिलीजन आफ इस्लाम' (मौलाना मुहम्मद अली, पृष्ठ 153-60

13- कुरान में कई स्थानों पर अल्लाह के हाथों का जिक्र आया है। इन उल्लेखों से कुछ लोग अल्लाह को शरीरधारी मानने लग पड़े थे। परन्तु इस मान्यता का निराकरण अल-गजाली आदि अनेक विचारकों ने बड़े विस्तार से किया है। देखिए : दी रिलीजन आफ इस्लाम: मुहम्मद अली : पृष्ठ 156-164

14- 'भगवंत' - जीव की मौलिक समानता पर पारसभाग का यह मन्तव्य उल्लेखनीय है :- ' अपणे रूप की सधा करके भगवंत के रूप कउं पछाणिआ। अरु अपणे गुणहु करके भगवंत के गुणहु कउं पछाणिआ'।

15- विशेष विवरण के लिए देखिए :' इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स' (एथीज्मः मुहम्मदन)

16- देखिए : ' डिक्शनरी आफ लैंडमैन' उद्धृत' इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स'।

17- वही।

18- वही।

19- देखिए :' अल-मुनकिद-मिन-अल-जलाल'।

20- अदृष्ट ईश्वर को न मानने वाला नक्षत्रों और विशेषतः उनके अदृष्ट प्रभाव पर कैसे आस्था रख सकता है ? इस अंतर्विरोध को अनदेखा करते हुए नक्षत्र संबंधी यह मान्यता भी नास्तिकों के मत्थे मढ़ दी गई है।

ooooo
ooooo
oo

अध्याय-2

साधना (अन्तरंग) पक्ष

अन्तरंग विधि

1, तौबह

2, सब्र

3, शुक्र

4 मुहब्बत

साधना (अन्तरंग) पक्ष

अध्ययनमूलक: साधना :- अल-गज़ाली कोरा दार्शनिक ही न था । उसने परम्परा प्राप्त इस्लामी तथा सूफी साधना-पद्धति के अनुसार कठोर साधना से अपने व्यक्तित्व को निष्पाप बनाने का उत्कट प्रयास किया था । अपनी इस कठोर साधना से पूर्व उसने इस्लामी दर्शन विशेषतः इस्लामी साधना-पद्धति के सिद्धान्त-ग्रंथों का भी गंभीर पारायण किया था ।

'हदीस' साहित्य का तो वह अप्रतिम विद्वान् था । इस साहित्य की छोटी से छोटी चर्चा से भी वह पूर्णतः परिचित था । यही कारण है कि उसके लेखन में सैद्धान्तिक विवेचन के बाद 'हदीस' साहित्य से आवश्यक उद्धरण प्रायः मिल जाते हैं । 'इस्लामी फलसफे' की अल-कुरान के आधार पर प्रामाणिक व्याख्या करते हुए 'हदीस' साहित्य से आवश्यक दृष्टान्त देने की अपनी अद्भुत क्षमता के कारण ही अल-गज़ाली को 'इस्लाम का विवेक' (हुज्जत-उल-इस्लाम) विरुद् मिला था ।

पारवभाग में अल-गज़ाली का साधना एवं अनुभव से पुष्ट यह गंभीर इस्लामी चिन्तन कहीं भी पढ़ा जा सकता है । इस चिन्तन की सब से बड़ी उपलब्धि यह है कि अल-गज़ाली की प्रतिभा का स्पर्श पाकर यह चिन्तन केवल इस्लामी न रह कर सार्वभौम चिन्तन बन कर उभरा है और इस चिन्तन को गजाली के साधना-जन्य अनुभव ने अधिक विशदता और प्रामाणिकता प्रदान की है ।

साधना: सार्वभौम रूप :- अल-गज़ाली द्वारा प्रतिपादित साधना-पद्धति केवल इस्लामी नहीं है । इस्लाम की मूल भूत मान्यताओं पर प्रतिष्ठित होते हुए भी इस साधना-पद्धति को मानव की समस्त साधना (जीवन-चर्या) पद्धति के संदर्भ में रखा जा सकता है । क्योंकि इस साधना-पद्धति में स्थूल कर्म काण्ड से ऊपर

उठ कर मानव-मन के परिष्कार के लिए, मानवीय जीवन को अधिकाधिक सुखमय बनाने के लिए और सब से बढ़ कर सीमित धार्मिक (साम्प्रदायिक) आग्रहों से अछूती मानवीय 'दृष्टि' को प्रतिष्ठित करने के लिए अर्थात् मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए दर्शन, साधना और अनुभव की सहायता ली गई है।

विधि: निषेध :- इस अद्भुत साधना-पद्धति के दो प्रमुख पक्ष हैं, विधि और निषेध। विधि-पक्ष में अल-ग़ज़ाली की पारदर्शी प्रतिभा, उसकी तत्त्वस्पर्शी दृष्टि और इस्लामी परम्पराओं से उसका पूर्ण परिचय उभर कर सामने आता है। अल-ग़ज़ाली द्वारा प्रतिपादित यह विधि-निषेध विवेच्य पारसभाग में यथावत् विद्यमान है। इसमें मूल से अधिकाधिक निकट रहने की सजगता है और यही सजगता पारसभाग (अनुवाद) की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

अंतरंग :- इस विधि के दो पक्ष हैं। एक पक्ष सिद्धान्ततः चित्त-वृत्ति-निरोध मूलक है और इसे साधना का अन्तरंग पक्ष तथा बाह्य कर्मकाण्ड से सम्बन्धित आचार-व्यवस्था (संहिता) को साधना का बहिरंग पक्ष कहा जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विशुद्ध इस्लामी मान्यताओं को धर्म-सम्प्रदाय-जाति और साथ ही बाह्य-आचार-व्यवस्था को भी सामान्य तथा स्थूल धरातल से ऊपर उठा कर अल-ग़ज़ाली ने सार्वभौम एवम् सार्वजनीन स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। परन्तु 'तौबह' 'सब्र' और 'शुक्र' आदि तत्व इस्लाम के मूल तत्व माने गए हैं। इसलिए इनके सम्बन्ध में जितना आग्रह इस्लामी साधकों-विचारकों का रहा है उतना दूसरों का नहीं। अतः साधना के क्षेत्र में - तौबह, सब्र, शुक्र- इस्लामी तत्व कहे जा सकते हैं और इन्हें साधना के अन्तरंग पक्ष में रखे जाने का एक औचित्य है।

बहिरंग :- बहिरंग पक्ष में साधना के वे तत्व सम्मिलित किए जा सकते हैं

जिनमें 'शारीरिक-क्रिया' की ही प्रबलता रहती है। यद्यपि अल गज़ाली की अन्तर्दृष्टि और उनका सूक्ष्म-विवेक केवल 'शरीर' तक ही सीमित नहीं रहता। शारीरिक क्रिया के साथ साथ 'मनसा' ('मन्शा' : इच्छा) को भी गज़ाली ने अपने विवेक में समेटने का प्रयास किया है। जो भी हो, साधना का यह पक्ष मूलतः शरीर से सम्बन्धित है और इसे साधना का बहिरंग पक्ष कहा जा सकता है।

( ) 'तौबह' : - इस्लामी परम्पराओं के अनुसार पाप का प्रायश्चित करने से अल्लाह किए हुए गुनाह मुआफ कर देता है। इसीलिए अल्लाह को 'कुरान' में 'तव्वाब रहीम' (बहुत दयालु और क्षमाशील) कहा गया है।

पाप के प्रायश्चित को 'तौबह' कहा जाता है। सिर्फ ज़ुबान से 'तौबह' कहना काफी नहीं है। 'तौबह' की सार्थकता इन तीन बातों पर निर्भर है :-

1. गुनाह का अहसास होना।
2. पश्चाताप होना।
3. भविष्य में पाप न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना।

'तौबह' पर इस्लामी धर्म-शास्त्रियों ने विस्तार से विचार किया है। 'हदीसों' में 'तौबह' संबंधी अनेक विवरण और घटनाएं दी गई हैं। इस विस्तार का कारण यह है कि 'गुनाह' को इस्लामी परम्पराओं में 'अल्लाह' के कानून की 'ख़िलाफवर्ज़ी' ('कानून-शिकनी') माना गया है।

तौबह: पारसभाग :

अल-गज़ाली ने 'इह्या' में साधना के विधि-पक्ष का वर्णन करते समय पहला स्थान 'तौबह' को दिया है (41)। इसी का अनुसरण करते हुए पारसभाग में 'मोक्षदायक प्रकरण' इस शीर्षक के साथ 'तौबह' 'निवाग' अर्थात्

`पापहु के निवाग` का वर्णन किया गया है।

`तौबह` शब्द की मूल ध्वनि है `पाप से मन को हटाना`। इसलिए `रिपेंटेंस` अथवा `पार्डन` आदि अंग्रेज़ी शब्दों से `तौबह` का ठीक अर्थ नहीं खुलता। इन शब्दों की तुलना में `निवाग` और `पाप का निवाग` मूल अर्थ को ठीक से अभिव्यक्ति देते हैं। `निवाग` का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- `निवाग का अरथु इहु है जो अशुभ मारग की ओर की से अपणी मुख कउं फेरणा अरु शुभ मारग विषै सनमुख होणा`।

पाप: इस्लामी मान्यता

अरबी में `पाप` के लिए `ज़ंब` शब्द प्रयुक्त होता है। `ज़ंब` के दो वर्ग माने गए हैं। `कबाइर` (उत्कट पाप : `दीरघ पाप` पारसभाग), और `सग़ाइर` (सामान्य पाप: `लघुपाप` पारसभाग)। उत्कट पापों के लिए - यदि उनके लिए विधिवत् प्रायश्चित न किया जाए - नरक की घोर यातनाएं सहन करनी पड़ती हैं।

उत्कट पाप सामान्यतः 17 बताए जाते हैं। `कुफ्र` की गणना इन में सबसे पहले की जाती है। छोटे छोटे पाप लगातार करते जाना, अल्लाह की करुणा से निराश होना, झूठी क़सम खाना, जादू-टोना करना, शराब पीना, व्यभिचार, चोरी और हत्या करना तथा माता पिता की आज्ञा न मानना आदि पाप भी इस सूची में परिगणित किए गए हैं। इस विषय पर पारसभाग में अल-ग़ज़ाली की मान्यता का पूर्ण विस्तार दिया गया है :-

1. मानसिक दीर्घपाप : 4 :- दीर्घ पापों को छह भिन्न भिन्न वर्गों में विभाजित कर उनका विवेचन इस प्रकार किया गया है :- `इस (दीरघ पापहु के पहचानणे के) निरणै विषै भी विदिआवानों ने बहुत वचन कहे हैं। पर मेरे चित विषै इस प्रकार भासता है। जो चार दीरघ पाप तउ मन विषै होते

हैं। प्रिथम इहु भगवंत अर परलोक परि प्रतीति न करणी। दूसरा - - - पापहु विषै दोष द्रिस्ट न करणी। तीसरा - - - भगवंत की दइआ तें निरास होणा। चउथा - - - महाराज की बेपरवाही का भै न करणा।

2, <u>रसना-गतः दीर्घपाप : 4 :-</u> 'झूठी साख देणी, लोभ के निमित झूठी दुहाई देणी। मंत्र जंत्र करि के किसी मानुष कउ दुख देणा, अरु चउथा पापु निंदा है'।

3, <u>उदर-गतः दीर्घपाप :2:</u> - 'मद मांस का अहार करणा, अनाथों की दुखाई करि अपना इहु उदरि अपणा आवना करणी। ऐसे ही काम इंद्री विषै बिभचारु भी महांपापु है'।

4, <u>हस्तगतः दीर्घपाप :2:</u> - 'किसी मानुष का घातु करणा, किसी की बसतु चुराइ लेणी'।

5, <u>चरण-गत दीर्घपाप : 1 :-</u> 'असुभ करम की ओर गमनु करणा'।

6, <u>सर्व शरीर गत : दीर्घपाप 1 :-</u> 'माता पिता की सेवा से रहित होणा'।

निश्चय ही गज़ाली ने अपने पूर्व वर्ती विचारकों की पाप-संबंधी धारणा को एक नवीन 'कोण' से प्रस्तुत किया है और इस प्रस्तुति में गज़ाली के चिन्तन की गहराई प्रशंसनीय है। संख्या और वर्गीकरण की इस समस्या पर गज़ाली ने निष्कर्ष रूप से कहा है :- 'मेरे कहणे का परोजनु इहु है जो दीरघ पापहु विषै जगिआसी जन कउ अधिक भै कीआ चाहिए'।

<u>लघु पाप :-</u> लघु पापों के संबंध में विशेष विवरण नहीं मिलता। संभवतः परम्परा-प्राप्त आचार संहिता का थोड़ा बहुत उल्लंघन 'लघु पाप' कहलाता है। पारसभाग में लिखा है :- 'दूसरे (लघु) पाप ऐसे होते हैं जैसे भगवंत के भजन अथवा पाठ के नेम विषै कछु अवगिआ होवै। सो इस अवगिआ कउ दीनता करिके भगवंतु बखसि लेता है'।

ये 'लघु पाप' भी कई कारणों से 'दीरघपाप' बन जाते हैं। इन कारणों में प्रमुख कारण ये बताए गए हैं :-

1. 'दुभाव की द्रिढ़ता' :- ' मे अर पसचाताप करिके दीरघ पाप भी लघ हो जाता है। अरु दुभाव की द्रिढ़ता करिके लघ पाप भी दीरघ हो जाता है।

2. 'पाप उसतुति' :- 'जो पुरख पाप करमहु करि खुस होता है। अरु उस कउं बड़ा पदारथ जानता है। तब वह बड़ा पाप हो जाता है। जो मानुष पापहु करिके अपणी उसतति करते हैं। - - उन ही पाप करि के द्रित कउं पावैंगे'।

स्पष्ट है कि पाप के संबंध में इस्लामी मान्यताओं का एक प्रामाणिक विवरण पारसभाग में उपलब्ध है।

इसके अतिरिक्त पारसभाग में कुरान तथा 'हदीसों' एवं अन्य प्रामाणिक परम्पराओं के आधार पर 'तौबह' का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस विवेचन से पूर्व इस्लाम की यह मान्यता दुहराई गई है :-' इह मानुष प्रिथमे ही निहपाप नहीं होता। केवल निहपाप अर निरमल देवते ('फरिश्ते') कहते हैं'।

इसके साथ ही पाप-कर्म का तिआग और किए हुए पाप का 'पुनह चरन' (संभवत: पुरश्चरण: प्रायश्चित) करना तिआग की प्रथम भूमिका बताई गई है। इस 'भूमिका' का रूपकमय वर्णन इस प्रकार किया गया है :-
' तिआग का रूप मे अरु आसु है। अरु मूल इसका धर्म का प्रकासु है। अर पापहु का पुरसचरन करना इसकी आं साखां हैं। सरब इंद्री लहु कउं पापहु ते रोक राखणा अर भगवंत के भजन विखै सावधानु होणा इसका फलु है'।

पाप-भय :- पापों से त्रस्त होना 'सोबह' का मूल है। और यह त्रास केवल धार्मिक विलास मात्र नहीं है। इस त्रास की छाप साधक के प्रत्येक क्रियाकलाप पर देखी जा सकती है। फलतः त्रास का यह कारण किया गया है :- 'अपने पापहुं कउं दीरघ करि सरबदा दीनचितु अरु सविवांनु व्हे रुदन करता रहै। काहे ते जो जिस पुरष कउं अपणा मरना निकटि भासता है सो पसचाताप अर रोवणे ते कब रहित हो सकता है'।

इस भय का व्यावहारिक रूप इस प्रकार बताया गया है :- 'बालक अवस्था ते ले करि जिस जिस नेम ते अचेतु हुआ होवे। अथवा दसबंधु (दसम-अंश) न दीआ होवे। अथवा अधकारी बिना दसवंधु दिआ होवे। तब सभनहु का पुरसचरण ऐसे करे जो भजन अरु दान की अधिकता कउं बढ़ावे'।

'- - - जो दीरघ पाप कीआ होवे। तब उन कउं सिमरनु करि के मै संजुगति भगवंत सिउं बखसावे। सरीर पर लघु अरु जलु अधिक राखे'।

लघु पापों का 'पुरश्चरण' इस प्रकार बताया गया है :- 'जब अधिक बोलिआ होवे। तब मौन विखे इसथत रहै। अरु जउ असुभ ओरि द्रिस्ट करी होवे। तब लजा करिके नेत्रहु कउं मूंद राखे। ऐसे ही सभनहु विकरमहु विखे विपरजे भाव कउं अंगीकार करे। तब विकारहु की अधिकता दूरि हो जावे'।

इस पूरे विवेचन का तर्क संगत तथा व्यावहारिक निष्कर्ष इस प्रकार दिया गया है :- 'संपूरन पाप के तिआग होणे का प्रापति का मारगु इहु है। जो सनै सनै करि के प्रथमे दीरघ पापहु का तिआग करता जावे। बहुरिओ सरबथा निह्पाप होवे'।

'इस करिके जो इस मानुख ते सरब पापहु का तिआग एक ही बार नहिं हो सकता। तां ते चाहीए जो क्रम क्रम करि के तिआग ही के मारग विखे चलिआ जावे। तब सीघ्र ही संपूरन तिआग कउं पावता है'।

इस्लामी दृष्टिकोण से प्रस्तुत यह पाप और प्रायश्चित्त का वर्णन हिन्दी साहित्य में केवल पारसभाग की ही देन है।

2, सब्र

परिभाषा :- इस्लामी विचारकों ने 'सब्र' को कई प्रकार तथा कई दृष्टियों से परिभाषित किया है। 'सब्र' की परिभाषा देते समय इन विचारकों ने प्रायः अत्यधिक भावुकता से काम लिया है और इसीलिए 'सब्र' को ठीक से परिभाषित करने के स्थान पर उन्होंने अपनी अपनी कल्पना-प्रसूत भावनाओं से 'सब्र' के भिन्न भिन्न पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि अरबी के इस शब्द को किसी अन्य भाषा के एक शब्द के द्वारा समझाया नहीं जा सकता।

इस्लाम के कुछ प्राचीन विचारकों ने 'सब्र' को इस प्रकार परिभाषित किया है :-

1. '(जीवन की) कटुताओं को - बिना चेहरे पर शिकन लाए - पी जाना 'सब्र' है'। (अल-जुनैद)
2. 'सब्र वह घोड़ा है जो कभी भी लड़खड़ाती नहीं'। (तालिब)
3. 'अवांछित चीज़ों से दूर रहना, किस्मत के थपेड़ों को चुपचाप बर्दाश्त करना, और गरीबी में भी अपने को अमीर दिखाना सब्र है'। (हदीस)
4. 'जागरूकता के साथ समुचित व्यवहार में तत्पर रहना, सब्र है'।
(हुस्न-अल-अदब)

कुछ विद्वान 'सब्र' की मूल भावना पर यूनान के 'स्टोइक्स' लोगों की विचारधारा, ईसाइयों की 'पेशेन्स' (सन्तोष) भावना तथा तपस्वियों

(जुहदियों) की इन्द्रिय-निग्रह एवं परिव्रजन संबंधी दृष्टि का प्रभाव बताते हैं। जो भी हो, `सब्र` इस्लामी साधना की आधार शिला है, इस में सन्देह नहीं।

<u>कुरान: सब्र</u> :- कुरान में `सब्र` तथा `सब्बार` (सब्र करने वाला) ये शब्द कई बार आए हैं। अल-गज़ाली के अनुसार `सब्र` शब्द कुरान में 70 बार आया है (`इह्या`)। पारसभाग के अनुसार :- `विशेषता सब्र की इसी वास्ते है जो सांई (`रब्ब`) भी अपने गुण सों सबरि सेरि फिरि फिरि कित कीआ है `(अध्याय-4, सर्ग-2)।

कुरान की व्याख्या के संदर्भ में भिन्न भिन्न व्याख्याताओं ने `सब्र` की महिमा, इसकी धार्मिक उपयोगिता तथा दैनिक जीवन में इसके व्यवहार आदि पर विस्तार से विचार किया है। यहां तक कि कालांतर में अल्लाह के 99 नामों में अन्तिम नाम `सबूर`(सब्र से भरपूर) भी जोड़ दिया गया। इस नाम के औचित्य पर विचार करते हुए `हदीसों` में कहा गया है कि :- `अल्लाह का सब्र सब व्यक्तियों से बढ़कर है और इसी कारण अल्लाह अपने ऊपर `ईमान` न लाने वालों को भी क्षमा-दान दे सकता है`।

वस्तुत: इस्लाम की परिधि में `सब्र` को `ईमान` की पहली शर्त माना गया और फिर अल्लाह की `रज़ा` पर सब कुछ छोड़ देना `सब्र` की चरम परिणति मानी गई है।

भारतीय दृष्टि से केवल प्रभु परायणता शब्द ही `सब्र` की मूल भावना के अधिक निकट है। गीता की :-

`मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु,
मामेव यास्यसि मद्ं ते, मा ते संगोस्त्वकर्मणि।`

यह दृष्टि ही `सब्र` की मूल-भावना के अधिक निकट जान पड़ती है। साथ यह भी उल्लेखनीय है कि बहुत से विद्वान् इस्लाम का अर्थ ही `अल्लाह

परायणता` ( रज़िगनेशन टू अल्लाह`स विल` मानते हैं ।

सब्र : गज़ाली :

सब्र की इस भावना पर अल-गज़ाली ने पहले `इह्या` (रुब 4, अध्याय) में और फिर `कीमिया` (रुक्न 4, अस्ल) में भिन्न भिन्न `कोणों` से विस्तार तथा गहराई के साथ विचार किया है।

`इह्या` में `सब्र` - संबंधी पूरा विवेचन इन सात खण्डों में इन शीर्षकों के साथ किया गया है :-

1. `एक्सेलेंस आफ सब्र`
2. `इट्स नेचर एंड कान्सेप्शन`
3. `सब्र` दी हाफ फिलीफ`
4. `सिनोनिम्स विद रेफरेन्स टू दी आब्जेक्ट आफ दी सब्र`
5. `काइंड्स आफ `सब्र` एज़ रिगार्ड्स स्ट्रैंग्थ एंड वीकनेस`
6. `ओपिनियन्स रिगार्डिंग नेसैसिटी आफ सब्र`
7. `कनवेलेसेंस आफ सब्र एंड मीन्स आफ अटेनिंग इट`

(इन्साइक्लोपेडिया आफ इस्लाम)

`जैसे शरीर का मेरु सिरु है, तैसे धरम का मेरु सबरु है` ।

(पारसभाग)

`इह्या` के इस `सब्र` संबंधी विवेचन को पारसभाग (अध्याय 4, सर्ग2) में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

1. `अथ दूसरे तरग विषै सबर अरु सुकर का बरनन होवैगा` (विभाग: 1)
2. `अथ प्रगति करणा रूप सबर का` (विभाग : 2)
3. `अथ प्रगति करणा इसका जो सबर आधा धरम किस प्रकार हैं`

(विभाग : 3)

4. `सरब अवसथा अरु सरब काल विषै सबरु ही चाहीता हैं`

(विभाग : 4)

5. `उपाउ सबर है पावणी का` (विभाग : 5)

`इह्या` और पारसभाग के इन शीर्षकों में जहां एक मौलिक समानता विद्यमान है, वहां `इह्या` की `सब्र` संबंधी पूरी सामग्री भी `पारसभाग` में इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत संकलित की गई है। `इह्या` के चौथे, पांचवें और छठे शीर्षकों की सामग्री का अन्तर्भाव पारसभाग के उपर्युक्त चौथे विभाग में हुआ है।

सब्र : महिमा :- `पारसभाग` में अल-गज़ाली द्वारा प्रस्तुत `सब्र` की विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं। `सब्र` संबंधी इस चर्चा से पूर्व `त्याग` को `सब्र` मूलक बताते हुए कहा गया है :- `तिआगु सबर बिना सिधि नहीं होता। सुभ करतूति (`अमाल`)करनी अरु पापहु का तिआगु करना भी सबर बिना सिधि नहीं होता`।

`सब्र` के लाभ बताते हुए कहा गया है :- ` जो जो उत्तमु पदारथ है सो सभ सबर करि सिधि होते कहे हैं ` इसके साथ ही `ईमान` या `आधा` सब्र को ही बताया गया है :- `आधानी जो है धरम का मारग का सो सबरु ही कहा है`।

अन्त में अपनी `सब्र` संबंधी इस दृष्टि को कुरान तथा अल्लाह सम्मत बताते हुए कहा गया है :- `महांपुरखु ( हज़रत मुहम्मद) ने कहा है जो सबरु है सो आधा धरमु है ` ।

कुरान में 70 बार आने वाले `सब्र` शब्द की प्रशंसा करते हुए दूसरा `विभाग` इस अर्थवाद के समाप्त हुआ है :- `बहुतु फलु सबर ही वाले कउं है`।

सब्र : रूप :- `सब्र` को `भूखण` का रूपक देते हुए तथा इस भूखण को पहनने का अधिकार केवल मनुष्य को देते हुए पारसभाग में लिखा है :-` सबर महां

उत्तम पुरुषार्थु है। इसके पहिरने वाला मानुष ही है। अरु सबरु करना पशू का काम नहीं। उनके विषै सबर की समरथता नहीं। काहे ते जो पशू अति नीच हैं। अरु देवतिअहु (फरिश्तों) कउं लोड़ (जरूरत) ही नहीं सबर की। काहे ते जो उह आगे ही सुध हैं। अरु भोगहु ते मुकति हैं`।

आगे `सब्र` के `रूप` को एक बहुत रोचक और साथ ही सार्थक `रूपक` के माध्यम से स्पष्ट किया गया है :- `भोग भोगणे की जो इछा थी सो असुरहु की सेनां थी। अरु भोगहु के निवरति करणेहारी जो इछा है सो देवतिअहु की सेनां है। सो भोग भोगणे की इछा का नाम वासना का इसथंभ ( स्कंध `थंम` पंजाबी।स्तम्भ) है। अरु भोगहु के दूरि करणे की इछा का नाम धरम का इसथंभ है। सो इनहु दोनों सेनां विषै सदा विरोधु अरु लराई रहती है। काहे ते जो असुरहु की सेनां कहती है जो भोगहु कउं भोगीए। अरु देवतिअहु की सेनां कहती है जो इनका तिआगु करीए।

सो इहु मानखु दोनों की बीचि विषै रहता है। पर जब इहु पुरखु धरम की द्रिढता विषै अपणे मरणा ठहरावै। अरु भोगहु की वासना सौं लराई विषै सावधानु होवै। सो इसी सावधानता का नामु सबरु है`।

निरंतर चलने वाले इस आंतरिक युद्ध तथा सैन्य-संस्थान से इस चक्रव्यूह में साधक की सतत जागरूकता को ही `सब्र` कह कर पारसभाग में एक भाव-स्थिति को शब्द और व्यवहार की परिधि में बांधने की चेष्टा की गई है।

परन्तु इतनी जागरूकता सब साधकों के बस की बात नहीं। इस व्यावहारिक कठिनाई की ओर भी पारसभाग में संकेत किया गया है :-` ऐसा कोई विरला होता है। बहुते पुरखहु की अवसथा तो ऐसे होती है। जो कबहुं उनकी जीति होती है। कबहुं हानि होती है। अरु इहु जो कबहूं भोग प्रबल होते है। कबहूं धरम की प्रबलता होती है पर सब की द्रिढता बिना इस गढ़ की कदाचित जीति नहीं होती`।

निश्चय ही 'सब्र' जैसी भावभूमि को इससे अधिक स्पष्टता प्रदान नहीं की जा सकती ।

सब्र: अंग :- अल-गज़ाली ने 'सब्र' के ये तीन अंग बताए हैं । 'मारिफ़' (ज्ञान), 'हाल' (भावदशा) तथा 'अमल' (क्रिया)। अल-गज़ाली की इस धारणा को पारसभाग में इस प्रकार पल्लवित किया गया है :- ' जदप धरम के लछण बहुत हैं । पर सभनउ का मूल इह तीन पदारथ है । एक बूझ 'मारिफ़' दूसरा चित का अवसथा ('हाल'), तीसरा करतु ('अमल') । जो इन तीनहु बिना कोई लछणु धरम का सिधि नहीं होता । जैसे तिआग का मूल इहु है जो पापहु कउं बिखावत जानणा सो इहु बूझ है ।' अरु अवसथा इहु है जो आगे पाप कीआ होवै तिसका पसचातापु करणा । सो इह भावना हैं । अरु फलु इहु है जो पापहु का तिआगु करणा । अरु भजन विखै सावधान होवणा । सो इह तिआग का करतु है । तां ते बूझ अरु अवसथा अर करतु इह तीनों धरम का रूप हैं । पर इन तीनहु विखै बूझ विसेख है' ।

सब्र: इस्लामी इतिहास

इस्लामी इतिहास और इस्लामी रीति-रिवाज़ - विशेषत: प्रतिशोध की आदिम भावना के संदर्भ में 'सब्र' का विनियोग इस प्रकार किया गया है :- 'साईं' (अल्लाह) भी कहा है जो जे करि कोई पुरखु तुम कउं दुखावै । अर तुम सहणसील होवहु । तउ भला है । अरु जे बदला करहु तउ मिरजादा अनुसार करहु । अधिक न करहु' ।

ईसा : वचन :- 'अरु मिहतर (महत्तर) ईसे भी अपणे प्रीतमहु कउं कहा था । जो जदप आगे तिनहुं ने इउं भी कहा है जो जे कोई इसका हाथु काटे । तब उसका

भी हाथु काटीए । --तौ तब इस वक्त कउं भी फुरमा नहीं कहता । पर मैं तुम कउं इस प्रकारि उपदेसु करता हौं । जो बुराई का बदला बुराई न करीए । अरु जो कोई तुम कउं दाहने ओरि मारे तब बावा अंगु भी उसके आगे राखहु । अरु जे कोई तुमारी पाग उतारि लैवे तब तुम उस कउं जामा भी देवहु । सो सचिआर (सत्य + आचार) पुरखहु का लछनु इही है ।

इस्लामी और क्रिश्चयन दोनों ही दृष्टियों का यह युक्तिपूर्ण समन्वय हमारे प्राचीन साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है ।

`सब्र` के प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व `सरब अवसथा अरु सरब काल विषे सबरु ही चाहीता है `इस शीर्षक के अन्तर्गत मनुष्य को प्रत्येक संभावित स्थिति में `सब्र` ही करना चाहिए, यह विधान किया गया है । इस विधान के अन्तर्गत `महापुरखु` के नाश्य पर कहा गया है :- ` साईं की वडिआई जानणी इहु है जो कछु दुखु अरु सवादु इस कउं आइ प्रापति होवै । तब उस दुखा कउं लोकहु के आगे प्रसिधि न करे । अरु प्रसंन रहे `।

निष्कर्ष यह कि इस्लामी साधना की एक मूलभूत मान्यता -`सब्र`- का इतना तार्किक साथ ही इतना व्यावहारिक रूप हिन्दी में केवल पारसभाग में ही मिलता है । पर्याप्त युक्ति-प्रमाणों-विशेषत: इस्लामी तथा क्रिश्चयन स्रोतों से ली गई सामग्री - के आधार पर प्रस्तुत किया गया यह `सब्र` संबंधी विवेक बहुत मूल्यवान है ।

3, `शुक्र` :

`सुकरु ही भजनु है` (पारसभाग 416)

इस्लाम के बुनियादी उसूलों में `सब्र` के बाद `शुक्र` की गणना की जाती है । कुरान में `सब्र` और `शुक्र` साथ साथ आए हैं (`सूरह` 14,5 आदि)।

`हदीसों` तथा `कुरान` की `तफसीर` (व्याख्याओं) में भी `सब्र` और `शुक्र` की महिमा बहुशः गाई गई है। एक स्थान पर लिखा है :- `ईमान वाले की वृत्ति आश्चर्यजनक है। उसके लिए सब कुछ सर्वोत्तम है। सुख की स्थिति में वह प्रभु को धन्यवाद देता है और यह उसके (आध्यात्मिक जीवन के) लिए उपयोगी सिद्ध होता है। यदि उस पर मुसीबतें टूट पड़ें तो वह प्रभु-परायण भाव के साथ उसे स्वीकार करता है। यह भाव-दशा भी उसके लिए सर्वोत्तम है।

`सब्र` के बाद `शुक्र` का विवेचन इस स्पष्टीकरण के साथ किया गया है :- `इह (शुक्र) पदारथ पद रूप है। तां ते सुकर का वखिआणु पोथी के अन्त विषे करणा था। पर इस कारन करि ईहां कहा है जो सब्र साथि सुकर का सनबंधु है। अरु सुकर की वडाई बहुतु है`।

शुक्र : महिमा

अल्लाह के फरमान, रसूल-ए-पाक के आदेश, और रसूल-ए-पाक की पत्नी आयशा द्वारा बताई गई एक घटना तथा खलीफा उमर के एक प्रश्न को उद्धृत करते हुए पारसभाग में `शुक्र` की महिमा इस प्रकार प्रतिष्ठित की गई है :- (`साईं`) इउं भी कहा है जो तुम मेरा सुकरु करहु अरु मनमुखी न करहु। इसी पर `महांपुरख` भी कहा है जो पुरखु भोजनु खाइ करि सुकरु करे। तब ऐसे फल कउ प्रापत होता है। जो जैसा फलु सबरु करि के व्रत करने हारे कउ होवे`। `आयशा` ने एक संत को `रसूल` के `शुक्र` के संबंध में यह घटना सुनाई थी :- `एक दिन उनहुंने (हजरत मुहम्मद) ने संधिया-काल का भजन कीआ। बहुड़ि समूह (समस्त) रैनि खड़े होकरि रोवते रहे। तब मैं (आयशा) कहा जो तुमारे पाप तउ भगवंत ने खिमा कीए हैं। अब तुम किस निमति रोवते हो। महांपुरख कहा मैं भगवंत का सुकर करने हारा हौं। तां ते मैं सुकरु करि रोवता हौं`।

शुक्र : स्वरूप

'शुक्र' की महिमा के बाद धर्म के मूल भूत तीन पदार्थों - 'मारिफ़' (बूझ), हाल (अवस्था), और अमल (करतूत) - के संदर्भ में 'शुक्र' का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया गया है :- 'शुकर की 'बूझि' इह है जो जैते गुण अरु पदारथ भगवंत ने इस कउ दीए हैं सो भगवंत की दइआ करके जाणें। अरु 'अवसथा' शुकर की इह है जो भगवंत के उपकार की प्रसनता रिदे विषै द्रिढ़ होवै। अर 'करतूति' शुकर का इह है जो वहु पदारथ उसी ओरि लगावै'।

'शुक्र' के इस स्वरूप को साधक की दृष्टि से जीवन के विभिन्न संदर्भ देकर स्पष्ट किया गया है। फलतः 'शुक्र' मात्र एक मौखिक स्थिति न रह कर एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि के रूप में उभरता है।

उदाहरण के लिए किसी राजा द्वारा किसी को 'सिरोपाव' ('सिरोपा') मिला :- 'वहु पुरखु इउ जाणै जो वजारतु की छुला करि मुझ कउ सिरोपाउ मिलिआ है। तब ऐसे जानणी करि संपूरनु शुकरु पातिसाह का न हूआ'।

अन्ततः पूर्ण 'शुक्र' का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया गया है :-

जब इउं जाणै जो मेघ अरु बादल पवन सूरज चंद्रमा निछत्र अरु अवर जो इनकी निआई सरब देवते अरु सरब पदारथ भगवंत की आगिआ विषै चलते हैं। अरु इह सभी उसके हाथ की कलम है। अरु आप कारि समरथ नहीं। तब ऐसे जानणी करि शुकरु पूरन होता है।

श्रद्धा : पिआदा

जब कोई व्यक्ति किसी को कुछ देता है तो शुक्रिया किस का अदा करना चाहिए, अल्लाह का? या देने वाले का? इस प्रश्न का उत्तर ईश्वर-प्रेरित श्रद्धा को 'पिआदा' बना कर दिया गया है :- 'जब कोई मानुष शुक

कउं कुछ देवै । अरु तूं उसी मानुष ते जाणै । तब इह पूरणता होती है । अरु इस करिके शुकर खंडित होता है` ।

`पर जब इउं जाणै जो इस मानुष ने इहु पदारथु मुझ कउं तब दीआ है । जब भगवंत ने उसकी औरि अपना पिआदा भेजिआ है । सो उसने अपने बल करि दिखाइआ है । अरु वहु पिआदा सरधा है जो उस मानुष के अंतरि भेजी है` ।

इतना ही नहीं, वस्तुत: दाता किसी दूसरे को नहीं स्वयं अपने को ही देता है :- `उसने अपने परोजन करि दीआ है । अरु लोक अथवा परलोक किछु उसने अपना भला चाहिआ है तां ते उसने आप ही कउं दीआ है । -- जब इस प्रकार देखीए तब भगवंत ने ही दीआ है`।

`शुक्र` : हज़रत मूसा

हज़रत मूसा ने `आदम` की `शुक्र-भावना` के संबंध में भगवंत से प्रश्न किया था :- `भगवंत सों मिहतर मूसे ने पूछा था जो तुमने अपनी इछा साथि आदम कउं उतपति कीआ था । अरु नाना प्रकारि करि के सुख उस कउं दीए । बहुरि उसने तुमारा सुकरु किउं करि कीआ ।

तब साईं कहिआ जो आदम ने सरब सुखहु कउं मेरी औरि ते जाणिआ । अरु अवर किसी औरि अपना रिदा (हृदय) नहीं दीआ । सो इस करिके उसका सुकरु संपूरन हूआ` ।

`शुक्र` : `भलाई` :- ` रसूल-ए-पाक ने `शुक्र` को ध्यान में रख कर धर्म-संबंधी विभिन्न आस्थाओं का एक तुलनात्मक विवरण इस प्रकार दिया है :- `महांपुरख भी कहा है जो साईं कउं निरलेप अरु अकरता जानणे करि दस गुणा भलाई होती है । अरु जब इउं जाणै जो साईं एकु है अरु इसकी निआई`

अवरु कोई नहीं । तब बीस गुणा भलाई होती है । अरु भगवंत कउं सरब पदारथहुं का करता जाणि करि सुकरु करणे विषै तीस गुणा भलाई होती है ।

`शुक्र` : विभिन्न कोटियां :- साधक (व्यक्ति) भेद से `शुक्र` की कितनी ही कोटियां निर्धारित की गई हैं, इनमें `सकाम` और `निष्काम` `शुक्र` विशेषतः उल्लेखनीय हैं :- `जिस भगवंत ने दइआ करिके सुख कउं ऐसे सुख दीए हैं। सो अवर भी अनेक सुखु देवैगा । अरु सुखहु की प्रापति कउं भगवंत का दइआ जाणै । अरु अवर सुखहु की आसा करै । तब इह भी सहकामी (सकाम) सुखु होता है` ।

निष्काम `शुक्र` को `संपूरन शुक्र` बताते हुए कहा गया है :- ` इह सरब सुख भगवंत की दाति है अरु धरम का वसीला है । काहे ते सुखहु कउं पाइकरि मैं विदिआ अरु भजन विषै द्रिढ़ होवउंगा । अरु सरब पदारथहुं कउं भगवंत अरथ लगावउंगा । सो इस प्रकार प्रसन होवणा संपूरन सुकरु है` ।

`संपूरन सुकर : लक्षण :- `शुक्र` की पूर्णता को शब्द-बद्ध करते हुए कहा गया है :- `संपूरन सुकरु का लक्षण इहु है । जो जिस पदारथ कउं देखि करि इस पुरख कउं मोहु उतपति होवै । तब इस पदारथ कउं आपदा जाणै । जब वहु पदारथु दूरि होवै तब खुसी अरु भलाई जाणै । अरु उसके दूरि होणे विषै सुकरु करै` ।

शिबली :- `इसी पर शिबली साईंलोक ने भी कहा है जो भगवंत के उपकार का सुकरु इहु है जो सुख देने हारे कउं देखै सुख कउं न देखै` ।

सब्र : शुक्र :- `सब्र` और `शुक्र` विचार-सापेक्ष हैं । विचार के अभाव में `सब्र` नहीं होता और `सब्र` के बिना `शुक्र` नहीं किया जा सकता :-

'जो पुरषाहु इंद्री अहु के गुणाहु विषै लंपटु होता है। सो तिस ते ऐसा सुकरु नहीं हो सकता। काहे ते जो नेत्र रूप कउं चाहते हैं - - - अरु अवर इंद्रीआं भी अपणी अपणी विषै कउं चाहता हैं। सो ऐसे विषाई पुरष कउं वीचारु नहीं होता। अरु वीचारु बिना सबरु नहीं होता। अरु सबरु बिना सुकरु नहीं होता।

मन: 'शुक्र' :- 'शुक्र' का संबंध शरीर, मन और जिह्वा से साथ है। मन के 'शुक्र' का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है :- 'मन करिके सुकर का करतबु इहु होता है। जो सरब स्रिस्टि का भला चाहे। अरु किसी के धन, धन अरु मान कउं देखि करि ईरखा न करें'।

जिह्वा : 'शुक्र' :- जिह्वा साथि सुकर का करतबु इउं होता है। जो सरब अवसथा अरु सरब समें विषै सुकर का उचारु करें। अरु सुख देणी हारे भगवंत परि चित की प्रसनता प्रगटि करें। - - - जो इस ते कोई पुछै जो तेरा किया हालु है। तब सुकरु ही का उतरु देवे। तउ दोनों पुरष फल को प्रापत होते हैं। - - - अरु जे कोई किसा ते पुछै अरु कहणे हारा पुरषु अपणा दुखु गिलानु बरननु करें। तब दोनों पापी होते हैं। तां ते जदप इहु पुरषु दुखी भी होवे। तउ भी भगवंत का सुकरु बरनन करें। - - - - - काहे ते जो जदप इहु जीव नहीं जाणि सकता। पर तउ उस ही दुख विषै उसकी भलाई होवे। तां ते सुकरु ही करणा भला है'।

इस विवेचन के अंत में 'शुक्र' का विकल्प 'सब्र' बताया गया है :- 'जउ सुकरु न करि सकै तउ सबरु करै'।

'शुक्र': इस्लामी परम्पराएं

'शुक्र' के संबंध में अनेक इस्लामी परम्पराएं तथा अनुश्रुतियां पारसभाग में संकलित की गई हैं। इनमें से एक यहहै :----' अरु हातम ('हातिमताई')

नामा एक साहिब लोक हुआ है। तिनने इउ कहा है। जो साईं परलोक विषै बहु प्रकारि के मानुषहु कउं बहु पुरुषहु की ओर साखां (साखियां) देकरि पूछेगा।

प्रथमे सुलेमान की साख देकरि धनवानहु कउं पूछेगा। जो तुम सुलेमान की निआईं किउं न वरते धन अरु राज विषै।

अरु दूसरा यूसुफ की साख देकरि रूपवानहु की परीखिआ करेगा। बहुड़ि ईसे की साख देकरि बैरागी बहु सिउ पूछेगा। जो तुम ईसे की निआईं संपूरन तिआगी अरु निसप्रेही (निस्पृह) किउं न हुए।

बहुड़ि अयूब की साख देकरि रोगी अरु दुखी बहु सिउ पूछेगा। अरु उनके धीरज की परीखिआ करेगा।

तां ते सुकर की विदिआ का लोड़ना इतना ही बहुत है'।

निष्कर्ष यह कि प्रत्येक संभावित स्थिति में रख कर 'शुक्र' का विस्तृत विवेचन पारसभाग में किया गया है। साथ ही 'शुक्र' संबंधी अनेक इस्लामी परम्पराओं और अनुश्रुतियों को हिन्दी जगत् के सामने रखने का श्रेय पारसभाग के लेखक को ही दिया जा सकता है।

4, मुहब्ब, शौक, रिज़ा :

इस्लामी (विशेषतः सूफी) साधना-पद्धति में मुहब्ब, (प्रेम शौक और 'रिज़ा' (लालाभ-संतुष्टि) उच्चतम 'मुकाम' माने गए हैं। अल-गज़ाली ने 'इह्या' में इनके संबंध में विस्तृत चर्चा की है। इसी आधार पर पारसभाग के अंतिम ('मुनजीत') प्रकरण में भी इस चर्चा को प्रस्तुत किया गया है और इस प्रकरण के प्रथम सर्ग का नाम रखा गया है, 'प्रीति अरु प्रेम अरु भगवंत की रजाइ (मानणी विषै)'।

इस सर्ग के प्रारंभ में `भगवंत` की प्रीति को सब `अवस्थाओं` (अहवाल`) से उत्तम बताया गया है। पापों का त्याग, सद्गुणों का ग्रहण, हृदय की शुद्धि आदि सभी साधनाओं की चरितार्थता केवल `भगवंत` की भक्ति में ही माना गई है :- `इस पुरुष की पुरनताई इह है जो इसके रिदे विषे भगवंत की प्रीति प्रबलु होवे। अरु अवर किसी पदारथ की प्रीति न रहे`।

भगवंत-प्रीति: इस्लाम।- परन्तु अनेक इस्लामी तत्व चिंतकों ने `भगवंत` के साथ प्रीति होना असंभव बताया है। क्योंकि अशरीरी `भगवंत` के साथ प्रीति संभव नहीं है :- `पुरबवरती पंडित भगवंत की प्रीति कउ समझते ही नहीं। अर इउं कहते हैं जो प्रीति उसके साथ होती है। जिसका रूप मानुष की निआई होवे। अन्यथा नहीं होता`।

अल-कुरान में आए भगवत्-प्रीति विषयक वचनों की संगति वे पूर्ववर्ती पंडित इस प्रकार लगाते हैं :- `भगवंत की प्रीति का अरथु इहु है जो भगवंत की आगिआ मानणी`। इस संगति पर यह टिप्पणी देखने योग्य है :- `जिस का इहु निआवा होवे। तब जाणीए जो उस कउं धरम के मूल की सूझ नहीं`।

इस भूमिका के साथ `भगवंत` संबंधी प्रीति के संबंध में `संतजनों` की `साखीआं संजुगत` `भगवंत की प्रीति` प्रमाणित की गई है।

इस्लामी परम्पराएं :- भगवंत के प्रति प्रीति भाव को लेकर प्रमाण और उदाहरण के रूप में इस्लामी परम्परा से अनेक वचन पारसभाग में उद्धृत किए गए हैं। संतजन, साईं, महांपुरुष, पिहतर ईसा तथा दूसरे अनेक `अनाम` साधकों के कुछ वचन उद्धृत किए गए हैं। इन में से मुख्य ये हैं :-

1. `भगवंत साथ प्रीति करनी अधिक परवान है` (संतजन)
2. `जो पुरुष मेरे साथ प्रीति करते हैं तब मैं उनके साथ प्रीति करता हौं` (साईं)

3. `जिस पुरुष केवल भगवंत की प्रीति का रसु चाखिआ है सो सरब संसार ते मुकति होता है` । (अबू बकर)

4. `जिस पुरुष भगवंत कउं पहचानिआ है सो उसकी प्रीति भगवंत ही साथ होती है` (हसन बसरा)

5. `हम भगवंत को प्रीति करि खीण हुए हैं । मिहतर ईसा उनके पास बैठा । अरु कहने लागा जो तुम भगवंत के निकटि वरती हो` (ईसा)

अंत में साईं के इस वचन के साथ `भगवत` संबंधी प्रीति का औचित्य, उसकी संभाव्यता, और उस से बढ़ कर उसकी अमित महिमा की प्रतिष्ठा की गई है :- ` साईं इउं भी कहा है जो मैं तुम कउं सरब प्रकार प्रीतमु राखता हौं । तां ते चाहीए जो तुम भी मेरे साथ प्रीति करहु` ।

प्रीति : रूप : - `अशरीरी `भगवंत` की `निर्गुण` रूपा इस प्रीति की `कठिनता` को लक्षित करते हुए तथा इस संबंध में `कहने वाले सूक्ष्म वचनों` का (द्रिस्टांत साथ`) सरल उपन्यास करने की प्रतिज्ञा के साथ भगवत्-प्रीति का रूप निर्धारित करने का प्रयास किया गया है । भगवत्-प्रीति का स्पष्टीकरण करने से पूर्व प्रीति का मूल पहचानने की बात का गई है :- `प्रीति का अरथु इहु है जो पदारथु इस पुरुष कउं इसट होता है । सो तिस किसे चित की ब्रिति कउं खींच होता है । अरु वही खींच जब द्रिढ़ होती है । तब उसी कउं प्रेम कहते हैं` ।

प्रीति का विपर्यय इस प्रकार लक्षित किया गया है :-

`बिप्रीत ( बे प्रीत ? ) का अरथु इहु है जो पदारथु अनिस्ट होता है । तब चित की ब्रिति उसते गिलान (ग्लानि) पकड़ती है` ।

आकर्षण : विकर्षण :

`खींच` (आकर्षण) तथा `बिप्रीत` (बे प्रीत : विकर्षण)

के आधार पर सांसारिक पदार्थों के 'इस्ट' 'अनिस्ट' और 'इस्ट-अनिस्ट' ये तीन भेद किए गए हैं। इस प्रसंग का समापन इस प्रकार किया गया है :- 'जो इह सभी पदारथ इंद्रीअहु के इस्ट हैं। अरु चित्त को खैंचणे हारे हैं। पर इह सकल पदारथ पसूअहु कउं भी प्रापत होते हैं'।

'खसटम इंद्री' :- इन स्थूल-पदार्थों का भोग प्रत्येक जीव स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से करता है। परन्तु इन स्थूल इन्द्रियों से परे एक सूक्ष्म ज्ञान का केन्द्र 'हृदय' है और इसमें 'बूझ' (ज्ञान) नामक छठी इन्द्रिय का निवास है :- 'खसटम इंद्री बूझ है। सो केवल मानुख के रिदे विखै होती है। अरु उसी बूझ कउं प्रकासु कहीऐ अथवा बुधी कहीऐ अथवा ग्यानु (ज्ञान) कहीऐ सो एक ही वसतु के नाम हैं। अरु इसी बूझ करिके मानुख पसूअहु ते बसेख है'।

भारतीय परम्परा में स्वीकृत 'अन्तःकरण चतुष्टय' (मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार) के केन्द्र को जनमसाखी ने सफलता पूर्वक पहचान लिया है। इस 'बूझ' का 'विषय' भजन का आनंद है और इसी 'बूझ' के द्वारा साधक सांसारिक पदार्थों से विरक्त होकर प्रभु-प्रेम में मग्न हो जाता है। साधक की इस उच्च स्थिति (हाल) का वाङ्‌मय विवरण इस प्रकार दिया गया है :- 'जिस पुरख की बुधि उजलु होती है। अरु पापहु के सुभाव ते भिंन होता है। सो बुधी के नेत्रहु करि भगवंत की सुंदरताई के देखणे कउं प्रीतमु राखता है। अरु भगवंत की सिफ्ताई अरु उसके सरब गुणहु कउं पछाणता हैं'।

इन्द्रिय-रसः विरस :- 'जैसे इह नेत्र सुंदर रूप अरु बणी के अरु बागहु कउं देख करि प्रसंन होते हैं। तैसे ही बुधिवांन पुरख निरगुन सरूप की सुंदरताई कउं इनते भी अधिक प्रीतमु राखता है। काहे ते जो जिस कउं भगवंत का सरूप प्रगटि होता है। तिस कउं सरब इंद्री अहु के रस विरस हो जाते हैं'।

अर्थात् निर्गुण भगवान की अनंत सुखमा, उसका अपार वैभव और उसका असीम सामर्थ्य साधक के लिए एक प्रबल आकर्षण बन जाता है और यही

आवरणा 'भगवत् प्रेम' का बाज है ।

'भगवंत' की अनंत सुषमा का विवरण देने से पूर्व सौन्दर्य शास्त्रीय ('एस्थैटिक्स') दृष्टि से 'सुंदर' तथा 'रूप' को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है ।

'सुन्दरताई': स्थूल स्वरूप

'सुंदरताई' के विवेचन का प्रारंभ पशु (स्थूल) दृष्टि से सौन्दर्य की पहचान के वर्णन के साथ शुरू किया गया है और अन्ततः इस स्थूल दृष्टि को अनुपयोगी ('अजोगु') बताया गया है 'जिस पुरुष को सुधा पसुलहु की निआई होती है। अरु नैत्रहु की इंद्री बिना अवर कोई पारगु नहीं समझता । सो वहु इउं ही कहता है जो सुंदरताई इसी का नामु है जो जिसके बदन का रंगु लालु अथवा उज्लु होवै । अरु तरह भी उसके समान अरु सुंदर होवहिं । तउ उसी कउं सुंदरु कहीता है' ।

'सो इस विषै इहो प्रसिध होता है जो जहां रंगु अरु अकारु न होवै तहां सुंदरताई भी नहीं होती । सो इह उनका कहणा अजोगु है' ।

वस्तुतः इस स्थूल दृष्टि से सौंदर्य को आंक पाना संभव नहीं है । इस 'अजोग' दृष्टि की स्थूलता को लक्षित कर 'सुंदर सैर', 'सुंदर नगर', 'सुंदर बाग' तथा 'सुंदर सराई' (सराय) आदि प्रयोगों के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है और सिद्धान्त रूप से पदार्थों की 'पूर्णता' तथा उपयोगिता को आधार बना कर सौंदर्य की एक व्यावहारिक पहचान इस प्रकार बताई गई है :- 'सुंदरताई का अरथु इउं जाणिता जाता है जो पदारथ का पूरनताई अरु कारजु है सो उस पदारथ विषै संपूरन पाइआ जावै । तब उस कउं सुंदर कहीता है। - - - सरब पदारथहु की सुंदरताई और पूरनताई भिंन भिंन होती है' ।

<u>अकार : सौंदर्य :-</u> इस सिद्धान्त वचन के आधार पर 'आकारों' की सुंदरता इस प्रकार लक्षित की गई है, 'अकारहु की सुंदरताई इहु है जो वहु अकार समांन अरु सुघ होवहिं'। इसके साथ ही 'इस (अकार घर आदि) सौंदर्य से नेत्रों को प्रसन्नता मिलती है' यह भी कहा गया है। इस विवेचन का फलितार्थ इस प्रकार दिया गया है,' इस करिके प्रगटि हुआ जो सुंदरताई केवल मुख के रंग पर नहीं (निर्भर करती)।

<u>सूक्ष्म: सौन्दर्य :-</u> अकार, घर-बाग आदि पदार्थ स्थूल हैं। अत: इनका उदाहरण सूक्ष्म (प्रभु) तत्व के लिए अनुपयुक्त है, इस आशंका का समाधान सूक्ष्म-भावों और पदार्थों के क्षेत्र से उदाहरण देकर किया गया है। स्वभाव, विद्या, वैराग्य, शूरता (सूरमताणु) 'निरलोभता' 'संजमु' और उदारता आदि अशरीरी तत्व भी प्राय: सुंदर कहे जाते हैं। इसका कारण यह बताया गया है :- 'अवर भी इसकी निआई जो सुभ गुण है सो तिन कउ अस्थूल नेत्रहु करि देखिआ नहीं जाता। अरु बुधी के नेत्रहु करि देखि सकीता है'।

इस बुद्धि-गत दर्शन-शक्ति से साधक अनेक अशरीरी भावनाओं का साक्षात्कार करता है। पारसभाग में इस विषय का प्रतिपादन सौंदर्य के -- स्थूल और सूक्ष्म- दो भेद मान कर किया गया है। उदाहरण के लिए प्राचीन काल के अनेक 'महांपुरखों' के साथ साधकों के प्रेम का उल्लेख किया गया है :- 'बहुते पुरखहु की प्रीति अबू बकर अरु उमर अरु अवर जो साईं लोक हैं सो तिन के साथ होती है। अरु इह प्रीति ऐसी है जो उनकी प्रतीति अरु प्रीति विखे सरीर अरु धन कउ कुरबांन करते हैं। सो इह प्रीति उनके सरीर की सुंदरताई के निमित्त नहीं होती'।

<u>हृदय : सौन्दर्य :-</u> 'काहे ते जो उनके सरीर कउ इनहु पुरखहु ने देखिआ भी नहीं। अरु उनका अकारु (आकार) प्रितक का रूप हो गइआ है। तां ते इह प्रीति उनके रिदे का साथ होती है। सो वहु रिदे की सुंदरताई लिखिआ अरु

वेरागु अरु सुभ गुण हैं इसी कारन ते अवारजहु अरु अवतारहु (पैगंबर) कउं धरमवांन पुरषहु प्रीतम राषते हैं ।

इस मान्यता की पुष्टि करते हुए कहा है :- ` तां ते जो किसी महांपुरष साथ प्रीत राषता है । सो उसकी द्रिस्टि उनके सरीर की ओरि कछु नहीं होती । काहे ते जो उसकी भावना उनके गुणहु की ओरि होती है । सो इह बारता प्रसिधि है जो उनहु गुणाहु का रंग अरु अकारु कछु नहीं । अरु इनकी प्रीति उन पुरषहु कउं निरसंदेह द्रिढ़ होती है` ।

अशरीरी भावों और तत्वों से प्रीति की इस भूमिका में स्थूल सौन्दर्य के प्रति बुद्धिमानों की वितृष्णा और भाव-गत सौंदर्य के प्रति उनका लगाव इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है :- `सरीर की तुचा अरु मांसादिक तउ प्रीति के अधिकारी ही नहीं । तां ते जो बुधिवांन पुरष होता है सो सूषम सुंदरताई कानतकारु (निषेध) नहीं करता । अरु अस्थूल रूप की सुंदरताई कउं विरसु जानता है । इस रिदे की सुंदरताई कउं विरसु जांनता है । इस रिदे की सुंदरताई कउं प्रीतमु राषता है` ।

अतीत काल के संतों के साथ प्रीति का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया गया है :- ` जब कोई मूए हूए मानुष की उसतति करने लागता है । तब उसके नेत्र अरु मुष की उसतति नहीं करता । उसकी उदारता अरु विदिआ अरु सूरमतणु (शूरत्व) अरु धीरज कउं सिमरणु करि के उसतति करता है ।`

इसी प्रकार जब कोई निंदा करता है,` तब उसके बुरे सुभाव की निंदा करता है । अरु उसके सरूप की कुरूपता का वरननु नहीं करता ।

इस प्रसंग को समाप्त करते हुए कहा है :- ` तां ते इह प्रसिध हूआ जो सुंदरताई दुहु प्रकार की है । एक सूषम है । दूसरी असथूल है । सूषम सुंदरताई असथूल रूप ते अधिक सुंदर है । जो बुधीवांन पुरष है सो तिनकी प्रीति निरगुण सरूप विषे होती है`।

स्पष्ट है कि निर्गुण निराकार (भगवंत) के प्रति प्रीति संबंधी यह विवरण निर्गुण वादी दृष्टि के इतिहास में कदाचित् अद्वितीय है।

<u>सिद्धि: व्यर्थता :-</u> भगवंत- विषायक इस अनन्य प्रीति का भक्तिदान साधक प्रीति के अतिरिक्त कुछ नहीं मांगता। सिद्धियों का पूर्ण प्रत्याख्यान तथा स्वर्ग आदि की कामनाओं से पूर्ण वितृष्णा इस परम प्रीति का फल बताया गया है। `बायाजीद` नामक किसी साधक के ये वचन इस संबंध में मननीय हैं :- `किनहु पुरषहु ने जो तेरा भजनु कीआ है। तब उन कउं तैं सिधता का बलु दीआ है। तां ते वहु पुरषु जलहु ते तूबे ही उतरि जाते हैं। अरु अकास विषै उडणी लागते हैं। पर मैं इनहु सरब सिधिहु ते तेरी रषिआ चाहता हौं `।

--- गति न चहौं निरबान,

जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन`

तुलसी की भाव-भूमि को छूती हुई पारसभाग की `भगवंत प्रीति` विषायक ये मान्यताएं सचमुच मर्मस्पर्शी हैं।

ccccc
ccc
c

अध्याय-3

साधना (बहिरंग) पक्ष

बहिरंग विधि

1. दान: इस्लामी परम्परा
2. फकीरी
3. व्रत
4. (कुरान)पाठ
5. पवित्रता
6. मंत्र (ओंकार)

विधि (अलिंग) पक्ष

दान : (ज़कात) इस्लामी परम्परा :- इस्लाम के अनुसार नमाज़, ज़कात (दान) रोज़ह, हज्ज और जिहाद प्रत्येक मुसलमान के लिए नियत रूप से विहित है। 'नमाज़' और 'ज़कात' को ईमान का व्यावहारिक रूप बताया गया है।

व्युत्पत्ति के अनुसार 'ज़कात' का अर्थ है 'पाप से पवित्र होना'। पारसभाग में संभवत: इसी लिए पवित्रता के बाद 'ज़कात' का वर्णन किया गया है (७म प्रकरण)।

सामान्यत: अपनी आय में से दसवां भाग 'ज़कात' में देना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य माना गया है। परन्तु मुस्लिम शासकों ने 'ज़कात' को राज्य के स्तर पर एक 'कर' के रूप में वसूल करने की परम्परा स्थापित की और इस प्रकार प्रत्येक चल-अचल सम्पत्ति पर 'ज़कात' की वसूली की जाने लगी। 'हग्ज़' ने इस 'ज़कात' के नौ वर्ग बनाए हैं। (डिक्शनरी आफ इस्लाम)

दान : पारसभाग :- पारसभाग में जीव और 'अकार' (आकार) भेद से दान के दो रूप बताए गए हैं और कहा गया है :-'जब लग ऐसे भेद कउं न समझै। तब लग इहु दान देणा भी जीव बिना सरीर की निवार्ई क्रितक होता है।

(प्र८ 11 वर्ग 3.)

इस भेद का स्पष्टीकरण करते हुए 'पारसभाग' में दान को साधक की परीक्षा बताया गया है :- 'सो परीखिआ इह है जो अपणे मन ही प्रीतम पदारथ भगवंत परि वार देवै। सो धन इस जीव का अधिक प्रीतम है। तां ते परीखिआ के नमित धन का देणा परवांन कहा है'।

दान के इस भेद को जानने वाले व्यक्ति तीन प्रकार के बताए गए हैं :-

(क) सविचार (सत्यनिष्ठ) :- 'प्रथम पुरष ऐसे सविचार हैं। जो उनहु ने अपणे सरबंस (सर्वस्व) कउ भगवंत के ऊपर वारिआ है। वहु पुरष दसवंध के दान देणे कउं भी क्रिपनता जानते हैं। तां ते उनहु ने सरब तिआग कीआ है'।

'अबू बकर सदीक' और 'उमर' के जीवन से सर्वस्व दान देने की प्रेरणा ली गई है।

(ख) मध्यम अवस्था :- दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जो अबू बकर की तरह सर्वस्व दान तो कर नहीं सकते। फिर भी :-'अरथी जीवहु कउं उदारता सहित देते हैं। जैसे अपणे सनबंधीअहु की प्रतिपाल करते हैं। तैसे ही अभिआगतहु कउं भी प्रीत संजुगति देते हैं'। इसे मध्यम अवस्था कहा है।

(ग) दसमांश: दान। तीसरे वर्ग में 'दसमांश' देने वाले हैं और :- 'भगवंत की आगिआ जाण करि 'दसवंध' (दशमबंध :'बंधान' 'दसौंध') देणे विखै प्रान होते हैं। अरु जिन कउं देते हैं तिन के ऊपर अपणा उपकार नहीं जानते। काहे ते उस दान देणे विखै अपणी ही भलाई समझते हैं। सो इह कनिष्ठ अवस्था है'।

दान: प्रयोजन।- दान देने के तीन प्रयोजन बताए गए हैं। भगवंत के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति (परीक्षा 'पारखनाग') दान देने का प्रथम प्रयोजन है। दान का दूसरा प्रयोजन कृपणता के मल को दूर करना है :- 'दान करके क्रिपनता रूपी मलीनता ते जीव का रिदा सुध होता है। काहे ते जो भगवंत के निकटि पहुंचणे विखै इह क्रिपनता ही बडा पटल है। - - - क्रिपनता कउं दूर करणेहारी उदारता है'।

दान का तीसरा प्रयोजन 'भगवंत' के दिए धन-आदि संपत्ति के लिए 'भगवंत' का शुक्र करना :- 'जो ब्रत अर भजन करणा सरीर के सुख का सुकर है। तैसे ही दान देणा धन का सुकर है'।

दान: `जुगति` (विधि) :- दान देने की छह विधियां बताई गई हैं। इन में से मुख्य ये है :- `प्रिथम जुगति इह है। जो दावंध देणी विषै विलंबु न करे`।

गुह्य-दान :- `दूसरी जुगति इह है जो दान कउं गुप्त ही देवे। - - जब कोई दान देइ करि आप ही वरनन करने लागता है। तब वहु दान ही विअरथ होता है। इसी कारन ते जगिआसी जनहु गुह्य दान देने के निमित बहुत जतन कीए हैं`।

इसके साथ ही दान की तीसरी विधि प्रत्यक्ष दान है। परन्तु यह विधि केवल उन व्यक्तियों के लिए है जो दंभ, पाखण्ड आदि से परे हैं :- काहे ते जो उसकी उदारता देख करि इतर जीवहु कउं भी रुचि उपजती है। पर इह अवसथा उस पुरष की होती है जिस कउं निंदा अर उसतति समान होवे`।

चौथी विधि दाता के व्यवहार से संबंधित है :- `जब इहु पुरष दान देणी के समे अरथी कउं कठोर बचन कहै। अथवा क्रूर द्रिसटि देखै। अर निरधन जाण करि उसका निरादर करे। इस करके दान देणा निस्फल होता है`।

इस पूरे प्रसंग में दान देने वाले को उपकृत तथा दान लेने वाले को उपकारी सिद्ध किया गया है :- `जब भली प्रकार बीचारकरके देखीए। तब अरथी पुरष इसके ऊपर उपकार कीता है। जो दान कउं अंगीकार करके इस कउं नरकहु की अगनि ते बचाइआ है`।

इसके साथ ही धनवान को निर्धन का `टहलूआ` बता कर धन-संपत्ति का विनियोग निर्धन के लिए करने का आदेश इस प्रकार दिया गया है :-`धनवानहु कउं इस लोक विखै भगवंत ने निरधनहु का टहलूआ बनाइआ है। पर परलोक विखै जो धनवानहु ते निरधन पुरष निरसंदेह अधिक सुखी होवहिगे।

दान संबंधी इस विवेचन का समापन हजरत मुहम्मद के इस वचन के साथ किया गया है :- `पाप रहित इक दान देणा भी सरपा संजुगति बसेख है।

पापरहित (सात्त्विक) भाव से श्रद्धा सहित दिया गया इस प्रकार का दान भारतीय परम्पराओं के भी अनुरूप है। इस्लामी दान की यह विधि अपने पूरे विस्तार के साथ- सभी दृष्टियों से विचारोत्तेजक है।

दान : 'पात्र' (अधिकारी)

दान देते समय 'पात्र' के चुनाव पर विशेष बल दिया गया है। 'पात्रता' के पांच आधार बताए गए हैं और इस संबंध में नियामक वचन यह है :- 'अधिकारी बहु (पात्रों) कउं दान देणा बखेश है। - - - दान देणे के नमित बड़े महंतहु अरु कुलवंतहु कउं ढूंढहि नहीं '। (वही)

अन्तत: साधना की उच्चावस्था तथा आवश्यकता के आधार पर 'पात्रता' का निर्णय किया गया है :- 'जैसा कछु किसी कउं अरधु (आवश्यकता) अधक होता है। तैसा ही उसके देणे का फल भी अधक होता है'।

साथ ही उत्तम अधिकारी का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है:- 'उत्तम अधकारी उउ तिस कउं कहीता है जिस कउं परलोक मारग की चितवना होवै। अर माइआ के विवहार का उसने तिआग कीआ होवै। तब ऐसे पुरष कउं देणा अतिअंत फलदाइक होता है'।

दूसरे 'अधिकारी' विद्यार्थी हैं। और तीसरे अधिकारी वे हैं :- 'जिनहुने अपणा निरधनताई कउं गुझ कीआ है। अर मांगणे ते रहा हूए हैं'। चौथे अधिकारी वे हैं :- 'जिनका कुटंबु बडा होवै। अर धन ते हीण होवै। अथवा रोगी होवहिं '।

अपने निर्धन-संबंधी अथवा मित्र को पांचवां अधिकारी बताया गया है क्योंकि,'उस कउं देणे करके सनबंधी के भी सनमुख होता है अर पुन कउं भी पावता है'।

दान के प्रयोजन तथा उसके अधिकारियों की चर्चा के बाद 'दान लैणी की जुगति' शीर्षक (विभाग) के अंतर्गत पांच 'जुगतियां' वर्णित की गई हैं :-

पहली 'जुगति' में धनवानों के प्रति भगवंत के इस वचन :- 'मेरे प्रीतम मानुष धन ते रहत हैं। जो तिनकी सेवा करहु। जो वहु माइका के विवहार ते भी मुक्ति होवहिं। अरु सरबदा मेरे ही भजन विषै इसथित होवहिं' को आधार बना कर प्रस्तुत की गई है। यह प्रस्तुति धनवानों के प्रति इस धारणा :- 'धन का संग्रहि अरु उनका कलेस धनवानहु कउं प्रापत होआ है'। तथा 'जिनके ऊपर भगवंत की दइआ है। तिन कउं माइका विवहार की विखेपता ते राखिआ होआ है' पर आधारित है।

अन्त: हजरत मुहम्मद के इस वचन को 'दान देणेहारे ते लैणी हारा वसेख तउ नहीं होता। पर जब वह संजम संजुगति लै करि भजन विषै इसथित होवै तउ भला है'। उद्धृत कर दान देने की पहली जुगति का वर्नन किया है।

दान को भगवंत का उपकार मानना, 'अशुध' दान को स्वीकार न करना, केवल तात्कालिक कार्यमात्र के लिए ग्रहण करना तथा :- 'कामना के निमित का (दान) अंगीकार न करे। अरु जब वहु कहै। जो इह(दान) निरधनहु के निमित का है। अरु इस कउं अत्यंतक चाहीता होवै। तब लैवै। अनंथा न लैवै'

सकाम भाव से दिया गया दान न ग्रहण करने की विधि के साथ 'दान बरनन नाम सरगह' समाप्त हुआ है।

इस पूरे प्रसंग में लेखक का अद्भुत व्यक्तित्व, उसकी व्यावहारिक दृष्टि तथा सूक्ष्म भेद-उपभेद स्थापित करने की उसकी अपूर्व क्षमता सर्वत्र प्रतिफलित हुई है।

फकीरी (अपरिग्रह)

इस्लामी साधना-पद्धति में 'अपरिग्रह' की अमित महिमा बताई गई है। अरब के साधक 'अपरिग्रह' के लिए 'फ़क्र' शब्द प्रयुक्त करते रहे हैं। 'फ़क्र' शब्द ग़रीबी का बोधक है। परन्तु ग़रीबी का तात्पर्य भौतिक ग़रीबी नहीं है। 'हुज्वी' ने लिखा है कि 'फ़कीर' शब्द प्रभु-कृपा के आकांक्षी तथा नम्रता सम्पन्न साधक का बोधक है। (डिक्शनरी आफ इस्लाम)

अल-ग़ज़ाली ने 'इह्या' के चौथे प्रकरण की चौथी 'किताब' में 'फक्र' और 'ज़ुह्द' पर विचार किया है। इसी आधार पर पारसभाग में भी चौथे प्रकरण के चतुर्थ 'सर्ग' में 'निरधनता' और 'वैराग' का वर्णन किया गया है। 'निरधनता' को अपना लेने के लिए आवश्यक भाव-भूमि इस प्रकार प्रस्तुत की गई है :- 'माइआ कउं दुख रूप जाणि करि तिआगणा है। अर परलोक मारग की साधना विखै सावधानु होणा है। तां ते सरब सुभ गुणहु का फलु इही है। जो इसका अपना आपु भगवंत के सरूप विखै लीन हो जावै। अरु माइआ के पदारथहु ते विरकति होइ करि परलोक के अविनासी सुख विखै इसथित होवै। काहे ते जो माइआ की प्रीति इस जीव की सुधि कउं नासु करती है। अरु जो इस ते विरकति हूआ है सो मुकति है'।

'माइआ' (माया) का स्थूल प्रतीक धन-सम्पत्ति को मान कर अपरिग्रह (धनहीनता) को साधना का प्रमुख तत्व स्वीकार किया गया है और 'महापुरुष' के साक्ष्य पर 'माइआ' को इस प्रकार त्याज्य बताया गया है :- 'इहु माइआ निरधना धनु है। अरु निघरा घरु है। अरु इसको संचणेहारे भी मूरख हैं'।

'निरधना धन' और 'निघरा घर' शब्द संभवतः क्रमशः 'धनत्वहीन धन' तथा 'गृहत्व हीन गृह' के लिए प्रयुक्त हुए हैं। तात्पर्य यह कि माया न सच्चा धन है और न ही सच्चा घर।' माइआ' के इस त्याज्य रूप पर 'मिहर

ईसे की गवाही भी पेश की गई है :- 'एक बार मिहतर ईसे ने मारग विषै एक बार किसी कउं सूता देखिआ था । तब उस कउं कहत भइआ । जो उठ करि भगवंत का भजन करि । उस पुरष ने कहा जो तूं मुझ कउं किआ कहता है । जो मै ने माइआ तो माइआधारी जहु कउं तउंप दीनी है । तब मिहतर ईसे ने कहा जो जब तैने ऐसे कीआ है तउ अचिंत होकरि सोइ रहु' ।

'मिहतर मूसा' को 'अकाशवाणी' हुई थी :- 'जब निरधनताई तेरे निकटि आवै । तब तूं प्रसन्न हो करि उस कउं अंगीकार करहु' ।

हज़रत मुहम्मद ने भी अपने अनेक वचनों में 'निरधनताई की महिमा' और 'माइआ' की निंदा की है । इस प्रकार के कुछ प्रमुख वचन ये हैं :-

1. 'जब मैंने धिआन विषै स्वरग कउं देखिआ था । तब उहां अधिक तउ निरधन द्रिस्ट आवते थे । अरु नरकहु विषै धनवान ही बहुतु देखे थे' ।

2. 'हज़रत मुहम्मद के अनुसार परलोक में 'निरधनों' को 'भगवंत' इस प्रकार कहेगा,' हे मेरे प्रीतमहु, मैंने तुम कउं नीचु जाणि कर निरधनु नहीं कीआ । परु अपणा बखसीस देणे निमित धन ते बचाइ राखिआ है । जो भोगहु अरु पापहु ते तुमारा राखिआ होवै' ।

3. हज़रत मुहम्मद ने अपनी एक प्रिय पत्नी (आयशा) को कहा था :- 'जो तूं परलोक विषै भी मेरी संगति चाहती है । तब निरधनहु की निआंई आरबला (आयु) बितीत करहु । जब लगु तेरा बसत्र अतखंतक पुराणा न हो जावै । तब लगु उस कउं उतारि करि नइआ न पहिरु अरु धनवानु की संगति का तिआगु करु' ।

स्पष्ट है कि भारतभाग की 'निरधनताई' अपरिग्रह की सर्वोच्च भाव-भूमि है और इसका विधान जीवन की यथार्थ समस्याओं पर ध्यान रख कर किया गया है । 'निरधनता' के इस भाव की पुष्टि इस मान्यता से होती है कि जगत में 'धनी' केवल 'भगवंत' है और शेष संसार उसके दर का भिखारी है ।

फिर भीख चाहे वह प्राणों की हो या अन्न-धन और सम्पत्ति की । उसके लिए `भगवंत` के सामने ही हाथ पसारने होते हैं :- `प्रिथमे अउ इस कउं अपणा जीवणा चाहीता है । अरु जीवणे के सनबंध विषे खान पान बसत्र आदिक अवर भी अनंत पदारथ चाहीते हैं । सो एते पदारथहु मों काई वसतु इसके हाथ विषे नहीं । - - - तां ते सिध हूआ जो इह सभ ही जीव अति निरधन अरु दीन हैं । अरु सभनहु का धनु एकु महाराजु है` ।

वास्तव में यह `निरधनता` का `फलसफा` नहीं है बल्कि इसे साधक का अनंत मानसिक विभूतियों की सम्पन्नता ही कहा जा सकता है ।

3. व्रत :

व्रत के लिए `सौम` (अरबी) और `रोज़ह` (फारसी) शब्द प्रचलित हैं । इस्लामी परम्पराओं के अनुसार व्रत सात वर्गों में विभाजित है । उन में से प्रमुख ये हैं :-

1. `रमज़ान` : महीने के 30 दिन व्रत रखना दैवी आज्ञा का पालन माना जाता है ।
2. `मुहर्रम` के दसवें दिन का व्रत बहुत उत्तम माना जाता है ।
3. प्रत्येक सोमवार और बृहस्पतिवार का व्रत `हदीसों` में अनेकशः विहित है ।
4. प्रत्येक महीने की 13वीं, 14वीं और 15वीं तारीख का व्रत भी धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है ।

इन व्रतों के बारे में हदीसों में अर्थवादात्मक वचन पाए जाते हैं । परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि व्रत - विशेषतः निराहार व्रत-रखना इस्लामी साधना पद्धति का मुख्य अवयव है । रमज़ान के महीने के व्रत की महिमा तो इस्लामी साहित्य में बार बार गाई गई है और इस व्रत की चर्या का पूरा

विधि-विधान ब्दातों में विस्तार से दिया गया है।

वस्तुतः व्रत के संबंध में इस्लामी परम्पराओं ने एक कठोर चर्या का विधान किया है और इस चर्या से हृदय का शुद्ध होना माना है। भारतीय साधना पद्धतियों में भी व्रत को लगभग इतना ही महत्व दिया गया है।

व्रत: पारसभाग :

इस्लामी परम्पराओं से प्रेरणा पाकर पारसभाग में व्रत का विधान-भारतीय परिवेश के अनुरूप - बड़े विस्तार से किया गया है।

`व्रत` विषयक `भगवंत` की आज्ञा को उद्धृत करते हुए व्रत के तीन प्रमुख प्रकार बताए गए हैं :-

1. `प्रिथम` प्रकार `चित-वृत्ति` निरोध मूलक तथा `वृत्ति` को `भगवंत` के स्वरूप में स्थिति से संबंधित है। इस व्रत की सूक्ष्मता तथा कठिनता को इस प्रकार लक्षित किया गया है :- `जब भगवंत बिना कछुक संकल्प भी इसके रिदे विषे फुरे। तब वहु व्रत खंडित हो जाता है। - - दिन विषे रात्र के अहार का संकल्प लिआवे तउ भी परवान नहीं।

स्पष्ट है कि स्थूल व्रत से ऊपर उठ कर सूक्ष्म भावों के स्तर पर इस व्रत को प्रतिष्ठित किया गया है और इसी लिए इस व्रत को `महांउत्तम` बताया गया है।

2. व्रत का दूसरा प्रकार इंद्रियों को पाप कर्मों से रोक रखना है। इन्द्रियों में भी नेत्रों के ऊपर विशेष अंकुश लगाया गया है :- `नेत्रहु की द्रिस्टि कांम बाण है। और इस बाण के ऊपरि विखु लपेटी हुई है` निश्चय ही यह व्रत मध्यम कोटि का है।

3. व्रत का तीसरा प्रकार है खान पान का त्याग। इसे `संसारी जीवों` का व्रत कहा गया है :- `वहु केवल खांन पांन ही का तिआग करते हैं। अर

इंद्रियाँ कुछ पापपूर्ण से नहीं रोक सकते । सो यह व्रत कनिष्ट है । परन्तु इस कनिष्ठ कोटि के व्रत का इतना तो महत्व तो है ही कि :- जो उस समै विषै कछुक इंद्रीआ निबल होतीआं हैं ।

व्रत: खंडन :

पारसभाग में पांच कर्मों द्वारा व्रत खंडित होना बताया गया है । ये कर्म है - (1) निंदा (2) झूठ (3) झूठी दुहाई (4) कठोर वचन (5) 'काम द्रिस्टि देखणी' । इनके अतिरिक्त व्यर्थ के वाद-विवाद से भी व्रत के लिए बिलकुल घातक बताया गया है ।

निष्कर्ष यह कि व्रत-संबंधी इस्लामी परम्पराओं और विधि-विधानों को - भारतीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए - पारस भाग में प्रस्तुत किया गया है ।

4, (कुरान) पाठ (तिलावत)

कुरान के 'पाठ' को लेकर इस्लामी-क्षेत्रों में एक पूरा 'शास्त्र' निर्मित हुआ है ।इस शास्त्र में कुरान के शब्दों की वर्तनी, कुरान में पाठ-भेद तथा कुरान के शब्दों का शुद्ध उच्चारण आदि प्रश्नों के साथ साथ कुरान के पाठ-संबंधी विभिन्न विधि-निषेधों का भी वर्णन किया गया है । इस शास्त्र को 'तिलावत' या 'इल्म-उल-तजवीद' कहा जाता है ।

पारसभाग में इस 'इल्म' को 'पोथी का पढणा' बताया गया है और इसे 'उत्तम भजन' का पद दिया गया है । साथ ही 'जंग' (मोरचा) लगे दर्पण की तरह मलीन हृदय को निर्मल बनाने की शक्ति पाठ में ही बताई गई है ।

इस पाठ को ईश्वर द्वारा भेजी गई `पत्री` का `पाठ` बताया गया है `साई`` के शब्दों में `यह जो मेरे वचन हैं। सो मानों कुमारी और पत्री आई है। इस पत्री कउं वाचार करके इसके अनुसार करतत करहुं`।

इसके साथ ही पाठ को बिना अर्थ समझे केवल दुहराते जाना अधिक लाभप्रद नहीं है। इस लिए `पाठ` के साथ साथ उसके तात्पर्य पर दृष्टि केन्द्रित करना तथा उसके अनुसार आचरण करना अधिक श्रेयस्कर है :- `पढ़ने का फल यह है जो वचनहु के भेद कउं समाफि करि उसके अनुसार करतत करें`।

पाठ की `महिमा` और `विधि` के बाद पाठ की इन छह स्थूल `जुगतियों` का विवरण दिया गया है :-

1. दास की भांति नम्र-भाव से पाठ करें।
2. धीरे धीरे - अर्थ को हृदयंगम करते हुए -पाठ करें।
3. यथावसर भय और प्रीति-विशेषत: रुदन- के साथ पाठ करें।
4. `पाठ` में आए विभिन्न भावों को अपने में ही अनुभव करें।
5. कपट और विक्षेप रहित हो कर पाठ करें।
6. तल्लीन हो कर कोमल ध्वनि से पाठ करें।

इन स्थूल `जुगतियों` के बाद सूक्ष्म युक्तियों का विवरण भी विस्तृत रूप से दिया गया है। सूक्ष्म युक्तियां ये हैं :-

1. पाठ के समय मन में यह धारणा बनाए रखे कि यह `भगवंत` के वचन हैं अर्थात् स्थूल शब्द-अर्थ से परे इन वचनों का एक विशिष्ट तात्पर्य है।

2. जिस `महाराज` के ये वचन हैं, उस महाराज को सर्वदा अपने सामने विद्यमान देखे।

3. पाठ के समय चित्त की एकाग्रता बनाए रखे।

4. पाठ के सब वचनों पर बारम्बार विचार करे।

5. वचनों के विभिन्न भावों के अनुसार अपने को बना लेवें। 'भय' संबंधी वचनों के पाठ के समय भय का अनुभव करे और दया के वचनों का पाठ करते समय 'भगवंत' की दया का अनुभव करे।

6. पाठ के समय वचनों को 'भगवंत' के मुख से निकलता जाने।

इन छह मुख्य युक्तियों का विवरण देते हुए पारसभाग में - अवांतर रूप से - अनेक विषयों की चर्चा की गई है।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार भी अर्थ-ज्ञान के बिना पाठ या जप करना व्यर्थ है। पारसभाग का यह पाठ-संबंधी विवेचन इस्लामी और भारतीय इनदोनों परम्पराओं के अनुरूप है।

5, पवित्रता :

पवित्रता ('तहारत') के संबंध में इस्लामी ग्रंथों में बहुत चर्चा हुई है। कभी कभी ('हदीसों के आधार पर) पवित्रता को आधा 'ईमान' भी कहा गया है। पवित्रता को आठ वर्गों में विभाजित किया गया है। 'गुसल' (स्नान) और 'वज़ू' (आचमन) इसके मुख्य वर्ग हैं।

धर्म की दृष्टि से पवित्रता मुख्य रूप से दो प्रकार की मानी गई है। शारीरिक और मानसिक। दूसरी ओर, कानून की दृष्टि से पवित्रता वास्तविक (हकीकी) और धार्मिक (हुक्मी) दो प्रकार की मानी गई है। इस प्रकार पवित्रता को अनेक दृष्टियों से विवेचित और विभाजित किया गया है।

पारसभाग : पवित्रता :- पारसभाग में पवित्रता का विवेचन पर्याप्त विस्तार और गहराई के साथ किया गया है। जल आदि से शरीर तथा

वस्त्रों को पवित्र रखना केवल एक स्थूल प्रक्रिया बताई गई है। तदनंतर सूक्ष्म पवित्रता का विवरण देते हुए इसके चार प्रकार बताए गए हैं :- 'प्रिथमै जीव आतमा की पवित्रता है। अरु इस पवित्रता का अरथ इहु है। जो अनातमै ('अनात्म') ते भिंन अरु जुदा होवणा। अरु सरब पदारथहु कउं विस्मरन करना। अरु भगवंत के सरूप विखै अपणी चित की ब्रित कउं लीन करना'

अनात्म पदार्थों से हट कर अपने 'स्व' रूप में यह अवस्थिति 'महापुरुषों' की अवस्था बताई गई है।

पवित्रता का दूसरा रूप हृदय से संबंधित है :- 'इस पवित्रता का अरथु इहु है। जो मलीन सुभावहु ते सुध होवणा। जैसे ईरखा, अभिमान, पाखंड त्रिसना, वैर भाव, इतिआदिक सभी बुरे सुभावहु का तिआग करे। अरु भले सुभावहु की सुंदरताई साथ अपणी रिदे कउं सुंदर बणावे। जैसे निंम्रता अरु संजम अरु तिआग धीरज भगवंत का भै अरु उसकी आसा। अरु प्रीत आदिक जो उत्तम सुभाव हैं। सो इह जगि आसी जनहु की पवित्रता है'।

जिज्ञासु के लिए मन की यह पवित्रता नितान्त काम्य है। सात्विक पवित्रता का रूप यह है :- 'सरब इंद्रीअहु कउं पापहु ते सुध करणा। जैसे निंदा अरु झूठ अरु असुध जीविका चोरी अर पर द्रिस्ट (द्वैत भाव) देखणी। सो ऐसे अपकरमहु का तिआग करणा। अरु सरब इंद्रीअहु कउं संजम विखै अरु संतजनहु की म्रिजादा विखै राखणा। सो इहु सातकी मानुखहु की पवित्रता है'।

पवित्रता का चौथा प्रकार शरीर-वस्त्र की शुद्धता से संबंधित है :- 'अपणे वसत्रहु अरु सरीर कउं मलीनता ते सुध करणा। अरु पवित्र होकरि अपणे इस्ट की पूजा अरु जाप विखै सावधान होवणा'।

पवित्रता की तथा संभावित दुष्ट-अवस्थाएं पारसभाग में विस्तार से वर्णित की गई हैं। स्थूल पवित्रता विशेषत: पवित्रता के दम्भ को इस प्रकार लक्षित किया गया है :- `पर सभी किसी ने अपणा पुनर सरीर अरु बसत्रहु की पवित्रता की ओर कीआ है। अरु सरबदा इस ही सुचता ( शौच) के जतन के विषै लागते हैं। सो इहु पवित्रता महांनीच है` ।

इस `महांनीच` पवित्रता का आखों देखा हाल इस प्रकार बयान किया गया है :- `जो सरबदा बासनहु ( बर्तनों ) अरु बसत्रहु कउं धोवते रहते हैं। अरु पवित्र जल कउं ढूंढते हैं। अरु बासनहु कउं भी भिंन राखते हैं। जो अवर कोई उस कउं हाथ न लावै`

किसो को दु:ख देकर अपनी पवित्रता की रक्षा न करे। इस `जुगति` का विस्तार इस प्रकार दिया गया है `जैसे कोई मित्र इस कउं मिलणे लागे। अरु इहु पुरुष उसके शरीर अरु अंगहु के प्रस्वेद करके सकुच रहै`

शरीर-शुद्धि के साथ साथ आहार-व्यवहार की शुद्धि पर भी ध्यान दे। इस `जुगति` के द्वारा पवित्रता के दंभ को इस प्रकार अनावृत किया गया है :- `जब कोई मानुष अचानक ही उनके आसणा अथवा बासणा (बर्तन) साथ छुहि जावै। तब उसका निरादर करते हैं। अरु कठोर बचन करके उसका रिदा दुखावते हैं। सो ऐसी क्रिया अरु पवित्रता सभी अजोग है`

पवित्रता के `मोह` में न डूबे। इस `जुगति` का मर्म इस प्रकार उद्घाटित किया गया है :- `पवित्रताई की क्रिया विषै ऐसा आसक्ति न होवै। जो बसत्र अरु बासनहु कउं पड़ा धोवै। अथवा आपणी सुध जावका के कारज ते रहि जावै। - - सो इह सभ निंद है। - - अधिक पवित्रता विषै ऐसे ही विघन उपजते हैं` ।

इस्लामी क्षेत्रों में प्रचलित पवित्रता का यह दम्भ भारतीय सन्दर्भ में भी काफी सच है। वैष्णव साधकों का पवित्रता के प्रति अंध मोह एक सामाजिक त्रुटि के स्तर तक पहुंचा है।

परन्तु इस 'महानीच' कोटि की पवित्रता से भी साधक को आध्यात्मिक लाभ हो सकते हैं यदि साधक इन 'जुगतियों' के प्रति जागरूक रहे :-

1. सभी विहित कर्मों का अनुष्ठान ।
2. कपट और दम्भ से चित्त की रक्षा ।
3. अधिक संशय में ग्रस्त न हो अर्थात् 'जिस प्रकार का संजोग आइ बने तिसी भांति वरत लेवैं' ।

इस पूरे विवेचन का फलितार्थ इस प्रकार दिया गया है :- 'तां ते जिग्यासी कउं इस प्रकार चाहीता है । जो अधिक पुरषारथ सुधम पवित्रताई ही विषै करे । अरु सरीर की पवित्रता कारज मात्र ही करि लेवैं' ।

७. 'भै' (ख़ौफ़)

इस्लामी साधना में 'अल्लाह का ख़ौफ़' एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है । 'हदीसों' में हज़रत मुहम्मद के इस वचन को उद्धृत किया गया है कि 'अल्लाह के ख़ौफ़' से भयभीत रहने वाला साधक दोज़ख की आग से बच निकलता है ।

पारसभाग में 'भै' को हृदय की अग्नि बताया गया है और इस अग्नि का कारण विद्या और बूझ (समझ) बताई गई है :- 'जब इस मानुष कउं परलोक के दुख की बूझ प्रापत होती है । अरु अस्थूल भोगहु कउं अपणी हाणि का कारण जाणता है । तब सुभावक ही भै रूपी अगनि उपजि आवती है'

इस 'भै' की 'बूझ' 'महाराज' की अपार शक्ति तथा दण्ड देने की उसकी असीम क्षमता के विचार से उत्पन्न होती है :- 'जिसने

महाराज के ईस्वरज कउं ऐसे समझिआ है जो सरब ब्रहमंडहु का नास करि डारे । तउ भी उसका कछु घटता नहीं । अरु जब सभनहु कउं नरकहु विखै डारि देवे । तउ भी उस कउं कछु दोखु नहीं लागता । - - तां ते ऐसे जानणे हारा पुरखु सरबदा 'भै' विखै इसथित होता है'

इस 'भै' का साधक के पूरे आचार-व्यवहार पर गंभीर प्रभाव पड़ता है । क्योंकि 'भै' की यह भावना सर्व इन्द्रियों - विशेषतः हृदय-पर छाई रहती है ।

इस 'भै' की पहचान यह है :- ' उस कउं सरब भोग विरस हो जाते हैं । - - - इसी कारन ते अभिमान, ईरखा, त्रिस्ना, अचेतनता उस कउं कछु नहीं रहती । - - - सरीरु ही खीण अरु दुरबल हो जाता है । इंद्रीआ भी पापहु विखै प्रवेस नहीं करती आं । अरु सुभ करमहु विखै सावधानु होतीआं हैं ' ।

'भै' : निडरता :- इस 'भै' को उत्तम अवस्था कहा गया है । वैराग्य और संयम इस 'भै' का फल है । इस 'भै' के धारण करने वाला साधक स्वयं सर्वथा निर्भय रहता है । पर उस से पूरी सृष्टि भयभीत रहती है :- 'जिस पुरख कउं भगवंत का भै है । सो तिसके भै करके सरब स्रिस्टि डरती है । अरु जिस कउं भगवंत का भै कछु नहीं सो सरब पदारथहु ते डरता रहता है' ।

इस 'भै' से रुदन करना तथा रोमांच हो आना साधना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है :- 'अपणे पापहु के सिमरनि अरु भगवंत का भै करिके जिस के रोम खड़े होइ आवते हैं । सो तिस के पाप ऐसे झड़ते जाते हैं जैसे सरदरुति के विखै ब्रिछहु के पात गिरते हैं ' ।

'भै' संबंधी इस विवेचन को प्रामाणिक बनाने के लिए शिबली 'साईलोक', याहया 'साईलीक' हसन बसरी 'साईलोक', महापुरुष और अबू बकर

सद्दीकी के मूल्यवान् विचार संकलित किए गए हैं। अबू बकर ने कहा है :-
'जो भगवंत के भै संजुगति रुदन करहु। अरु जब सुभावक ही तुम कउं रोवणा न आवै। तब जतन करके भी चित कउं कोमल करहु'।

भय और भयजनित रुदन इस प्रकार इस्लामी साधना के महत्वपूर्ण तत्व बन गए हैं।

अध्याय-4

निषेध (अन्तरंग) पक्ष

निषेध: इस्लामी परम्परा

1. भले-बुरे `सुझाव`
   रूप: दृष्टि
2. विषय-क्रोध-काम:
   मर्यादित रूप
3. दम्भ: स्वरूप: प्रकार
4. दम्भ: सार्वजनिक उपयोगिता

निषेध (अन्तरंग) पक्ष

साधना का विधि-पक्ष जितना महत्वपूर्ण होता है, निषेध-पक्ष का भी उससे कम महत्व नहीं होता । भारतीय साधना-पद्धति में 'चित्तवृत्ति-निरोध' को इसीलिए सब साधनाओं का मूल माना गया है ।

अल-ग़ज़ाली ने इस्लामी-परम्पराओं के संदर्भ में दर्शन अपने अनुभव और शास्त्रीय प्रतिभा के आधार पर साधना के अनेक 'विघ्नों' का विशद विवरण दिया है ।

निश्चय ही इन 'विघ्नों' को अल-ग़ज़ाली ने अपनी साधना के गम्भीर क्षणों में स्वयं अनुभव किया और अपने इन वैयक्तिक अनुभवों की पुष्टि के लिए उसने इस्लामी परम्पराओं, इस्लामी-दर्शन, इस्लामी-साधना और 'हदीस' साहित्य का गम्भीर पारायण भी किया ।

यही कारण है कि उसकी प्रत्येक मान्यता को इस्लामी क्षेत्रों में पूर्णतः परीक्षित, अनुभूत एवं प्रमाणित माना जाता है । इन मान्यताओं के समर्थन में ग़ज़ाली ने जो कुछ भी लिखा, उसका मूल इस्लाम के प्राचीन साहित्य में प्रायः मिल जाता है ।

इस प्रकार 'हदीस' के अनेक वचन, इस्लामी साधकों के अपूर्व अनुभव और उनकी अमित प्रेरणा-प्रद जीवनियां पारसभाग के सरल भाषा-रूप में मिल जाती हैं ।

निषेध के दो पक्ष हैं । एक का संबंध मानवीय भावनाओं के सूक्ष्मतर विश्लेषण-विवेचन से है । इसे हम निषेध का अन्तरंग पक्ष कह सकते हैं ।

निषेध का दूसरा पक्ष 'माइआ' के स्थूल रूप 'अति अहार' धन तथा रसना संबंधी 'विघ्नों' के साथ सम्बद्ध है ।

इस विवेचन में मानवीय भावनाओं और दुर्बलताओं को व्यावहारिक मनोविज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इन भावनाओं और दुर्बलताओं की विश्वसनीयता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

`प्रकरण विकार निषेध` :- `इन्ज्या` के तीसरे `रुक्न` को `घातक पाप` (`डेडली सिन`) शीर्षक दिया गया है और इसके अन्तर्गत मानसिक और आत्मिक चर्या (`साइकोलाजिकल एंड स्पिरिच्युअल डिसिप्लिन`) का विशेष विधान किया गया है।

साधना के मार्ग में विघ्न रूप भावनाओं और व्यवहारों का विवरण पारसभाग में भी बड़े विस्तार से दिया गया है। यह विवरण तीसरे प्रकरण के दस सर्गों और कितने ही `विभागों` में समाप्त हुआ है और इसे `प्रकरण विकार निषेध` कहा गया है। पारसभाग का यही प्रकरण आकार की दृष्टि से सब से बड़ा है। हमारी आधार प्रति (हस्तलिखित) में इस प्रकरण के 184 पत्र अर्थात् 184 = 368 पृष्ठ हैं। पारसभाग की नागरी प्रति (मुद्रित) में यह प्रकरण २८5 पृष्ठों में समाप्त हुआ है।

`भले सुभाव` : उसतति` :- इस प्रकरण के प्रथम सर्ग ( विभाग 1) का प्रारंभ `भले-सुभाव की उसतति बरनन` के साथ हुआ है और इस प्रकार `विकार-निषेध` वर्णन के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार की गई है। इसमें `साई`, `महांपुरष` और अबू बकर किताई आदि के `वचन` उद्धृत करते हुए अर्थवाद शैली में `भले सुभाव` की `उसतति` की गई है। इस विभाग के ये `वचन` उल्लेखनीय हैं:-

1. क- `भला सुभाव ही धरम है` (महांपुरष)

ख- `परलोक विषे जो महां उत्तम पदारथ होवैगा सो भला सुभाव ही होवैगा`। (महांपुरष)

ग- `मुझ कउ साई भले सुभाव के पूरन करणे कउ इस लोक विषे भेजिआ है `(महांपुरष)

घ- `भला सुभाव सरब करतबु ते उत्तम` (महांपुरष)

2. 'भले सुभाव ही का नाम फकीरी है' (अबू बकर किलानी)

3. 'कठोर सुभाव ऐसा पाप है जो इसके होते कोई शुभ गुण लाभ नहीं करता' (अज्ञात)

'बुरे सुभाव' :- 'भले सुभाव' के इस रूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए 'बुरे सुभाव' की कुछ घटनाएं पारसभाग में दी गई हैं। इन में एक घटना किसी धर्म परायण परन्तु 'बुरे सुभाव' की महिला से संबंधित है - 'वह दिन कउं व्रत राखती है अरु रात्र कउं जाग्रत करती है। भजन विखै सावधान रहती है'।

'परु सुभाव उसका बुरा है। पड़ौसी अहु कउं दुरबचन करिके दुखावती है। तब महां पुरुष कहा वह इसत्री नरक विखै प्रापति होवेगी'।

स्पष्ट है कि मानवीय सद्-व्यवहार के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान श्रेयस्कर नहीं है, इस केन्द्रीय दृष्टि से साथ पारसभाग में धर्म (साधना पक्ष) का विवरण दिया गया है।

इस विभाग की समाप्ति पर कहा गया है :- 'कोमल सुभाउ ऐसा भजन है। जो इस करिके नरक पापहु का नास होइ जाता है। अरु कोई पाप विघन नहीं कर सकता'।

भला सुभाव : रूप :- भला 'सुभाव' व्याख्या-सापेक्ष्य शब्द है। इस की 'उसतति' करना जितना सरल है इसका स्वरूप निर्धारण करना उतना ही कठिन है। पारसभाग में लिखा है :- 'भले सुभाव के निरणै विखै बचन बहुत प्रकार के आए हैं। जैसा जैसा किसी की बुधी में आइआ है। तैसा तैसा ही वरणिआणु कीआ है। पर संपूरनता भले सुभाव को किसी नहीं कही'।

दृष्टि-भेद :- भले सुभाव को व्याख्यायित करते हुए व्याख्याताओं का दृष्टि-

भेद इस प्रकार लक्षित किया गया है :- `जो किसी ने इउं भी कहा है जो प्रसंन मस्तक राखणा इही सुभाव भला है। अरु किसी (संभवत: ईसा) ने कहा है जो कोई इस कउं दुखावे तो सहि जावणा इही भला सुभाव है`। इन वचनों से भले सुभाव का रूप ठीक से नहीं उभरता। क्योंकि `इह सरब भले सुभाव के अंग हैं। अरु संपूरन भला सुभाव इनका नाम नहीं`।

इस अवतरणिका के साथ `भले सुभाव` को प्रकट करने की प्रतिज्ञा की गई है।

जीव सौन्दर्य : `भला सुभाव` :- `भले सुभाव` को `जीव` के आंतरिक सौन्दर्य के साथ समन्वित करते हुए शरीर के `अस्थूल` सौंदर्य से बात शुरू की गई है : `सरीर अरु जीव इनहुं दोनहुं की सुंदरताई भी है। अरु कुरूपताई भी है। सरीर की सुंदरताई कउं इस लोक विखै रूपवंत असथूल कहते हैं। अरु जीव की सुंदरताई भले सुभाव करु कहीती है`।

जीव और शरीर के सौंदर्य को दो पृथक् पृथक् स्तरों पर पृथक पृथक मानदण्डों से इस प्रकार निर्धारित किया गया है : `रूपवांन भी उसी कउं कहते हैं जिसके नेत्र, मस्तक, मुख अरु नाक अरु अवर सरब अंग सुंदर अरु समान होते हैं।`

सौन्दर्य : समग्रता। - `तैसे ही जीव की सुंदरताई भी तब ही संपूरन कहीती है। जब इसके विखै चार गुण पाए जावहिं। सो एक विदिआ अरु दूसरा भोगहु का जीतणा। तीसरा क्रोध का जीतणा। चउथा बीचार। सो बीचार इनहुं तीनहुं विखै वरतता है`।

अर्थात् विचारमूलक विद्या एवं इन्द्रिय जय और विचारमूलक क्रोध-शमन जीव-सौन्दर्य के निर्णायक हैं। जिस किसी व्यक्ति में ये लक्षण विद्यमान हों, उसे भले सुभाव का व्यक्ति कहा जा सकता है।

<u>विचारमूलक विद्या</u> :- विद्या का फल 'बूझ' (ज्ञान) बताते हुए 'बूझ' को सत्य-असत्य का निर्णायक माना है। विचार और व्यवहार दोनों स्तरों पर सत्य-असत्य की पहचान इस 'बूझ' से ही बताई गई है। अन्त में इस 'बूझ' से उत्पन्न होने वाले 'अनुभव विशेष' को 'भले सुभाव' का मूल बताया गया है :- 'जब वचन अरु करतब अरु निसचा भली प्रकार समझता है तब इसके रिदे विषै अनुभव उतपति होता है। सो एहि अनुभव सरब गुण अरु सरब भलाई अहु का मूल है'।

विद्या, इन्द्रिय जय और क्रोध शमन इन तीनों को विचार मूलक बताते हुए भोग को घोड़ा और क्रोध को शिकारी कुत्ता बताया गया है और कहा गया है कि इन दोनों को एक दूसरे की सहायता से वश में रखे :- 'क्रोध कूकर सिकारी की निआंई है। अरु भोग घोड़े की निआंई है। अर बुधि असवार की निआंई है। तां ते कबहु ऐसे होता है जो घोड़ा असवार ते प्रबल हो जाता है। अरु कबहुं आगिआ बीच चलता है'।

'तैसे ही कूकर भी कबहुं आगिआ विषै चलता है कबहुं आगिआ ते विपरजे हो जाता है। परन्तु जब लग घोड़ा अरु कूकर असवार की आगिआ बीच न होवहिं तब लग असवार कउं सिकार हाथ नहीं लागता'।

इस विकट स्थिति से केवल विचार ही उबार सकता है :- 'भोग अरु क्रोध कउं बुधि अरु धरम की आगिआ विषै राखै। कबहूं भोग कउं क्रोध ऊपरि प्रबल करे। जो क्रोध के वेग को हटावे। अरु कबहूं क्रोध कउं भोगहु ऊपरि प्रबल करके भोगहु के बल कउं नास करें'।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- 'अरथ इहु जो भोगहु कउं इस रूपी क्रोध करि हटावे। अरु क्रोध कउं भोग अथवा मान की लालच देकरि वसि करे। इस प्रकार इन दोनों को अपणे अधीन राखै'।

`सुभाव की कुरूपता` :- इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि विद्या, क्रोध अरु भोग इन तीनों का विवेचन और विश्लेषण एक मानसिक अनिवार्यता के रूप में किया गया है और इन सबकी एक मर्यादा निश्चित की गई है। इस मर्यादा का उल्लंघन `सुभाव की कुरूपता` का कारण बन जाता है।

विद्या : `प्रिजादा` :- `जब विदिआ इसकी प्रिजादा ते अधिक होती है। तब नाना प्रकार की मलीनता विखै बुधि पसरि जाती है। चपलताई अरु चतुराई आदि उतपति होती है जिस करके अभिमानी हो जाता है`।

विद्या: न्यूनता :- `अरु जब विदिआ प्रिजादा ते थोरी होती है। तब मूरखता कउ प्रापति होता है`।

विद्या : मर्यादित रूप :- `अरु जब विदिआ इसकी प्रिजादा अरु धरम के अनुसार होता है। तब उसते सुमति भली अरु बीचार अरु संकल्प सुध अरु बूझ उत्तम इह गुण उतपति होते हैं`।

क्रोध: अधिकता :- `जब क्रोध का बलु अधिक होता है। तब उसते अभिमान अरु अहंकारु अरु दुरबचन अरु अपनी उनतति कढ़ावणा अरु निसंक होकरि आप कउ भैआनक अस्थानहु विखै डारना। सो क्रोध की अधिकता विखै ऐसे ही अवगुण उतपति होते हैं`।

क्रोध : न्यूनता :- `अरु जब इही क्रोध प्रिजादा ते कम होता है। तिस ते निरमानता (मनस्विता का अभाव) अरु पराधीनता अरु कपट अरु अवर इसकी निआई बुरे सुभाव उतपति होते हैं।

क्रोध: मर्यादित रूप :- `अरु जब क्रोध का बल प्रिजादा अनुसार होता है। तब इस पुरख का चित द्रिढ़ होता है। बलु अरु पुरखारथ अरु सहनसीलता अरु नम्रता इनकी निआंई अनेक सुभ गुणहु कउ पावता है`।

मर्यादित क्रोध जहां व्यक्ति की एक मानसिक आवश्यकता है वहां क्रोध के अतिरेक से उत्पन्न होने वाले 'अशुभ प्रभावों' से बचाव भी इसी मर्यादित क्रोध से संभव है।

भोग : अधिकता :- 'भोग का बल जब अधिक होता है। तब त्रिस्ना, अरु क्षुधता, अरु क्रिपणता अरु ईरखा अरु लोभ करके अपमान चाँहणी धनवानहु की। अरु निरधनहु का निरादर करना। इसकी निवाई अवर भी उपलक्षण आन उपजते हैं'।

भोग : अभाव :- 'जब सरबथा भोगहु ते रहत होता है तब निरबलता अरु निरासता अरु दुख कउं प्रापति होता है' अर्थात् खान पान आदि भोगों से विरक्त व्यक्ति निर्बल हो जाता है और निर्बल व्यक्ति शरीर और मन दोनों ही स्तरों पर केवल दु:ख ही भोगता है।

भोग : मर्यादित रूप :- 'जब भोगहु का बल म्रिजादा के अनुसार होता है। तब संजम अरु संतोख अरु धीरज अरु भाव इह गुण प्रापति होते हैं'।

स्पष्ट है कि यह व्यावहारिक दृष्टि है। अतिवादिता से बच कर मानवीय प्रकृति और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर इस मर्यादा का विधान किया गया है :- 'इह मानुष के अधीन नहीं जो भाणां, पीणां इतिआदिक जो सरीर के भोग हैं सो सरबथा इनते मुक्त हो सके। परु इतना कारज मानुष तें ही सकता है जो जतन अरु पुरखारथ करके क्रोध अरु भोगु कउं म्रिजादा के अनुसार कर लेवे।

इस मर्यादा को 'बाल से भी सूक्ष्म' और कठिन बता कर पारसभाग साधना-संबंधी इस भारतीय दृष्टि को छू लेता है :-

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथः तत् कवयो वदन्ति।'

अर्थात् साधना के इस मार्ग पर चलना :-
`तरवार की धार पे धावनो है`।

इस कठिन साधना को सुगम बनाने के लिए इस मार्ग के संभावित तथा अनुकूल विघ्नों का वर्णन पारसभाग में बड़े विस्तार से किया गया है। इस विस्तार का कुछ अंश हम दे रहे हैं :-

(१) कांम: विघ्न

सृष्टि मूलक `कांम` को `भगवंत` की रचना बता कर इसकी प्रबलता की निंदा की गई है। मिहतर मूसा, दाऊद यूसुफ के वचनों तथा उनके आदर्शों को सामने रख कर `कांम` की प्रबलता का निषेध इस प्रकार किया गया है :-
`मिहतर मूसे ने सैतान कउं पूछिआ था जो तेरा अधिक निवास किस असथान विषै होता है। सैतान ने कहा जो जहां इसत्री पुरष इकांत विषै बैसते हैं। तहां ही मेरा अधिक निवासु है`।

इसी प्रकार `मिहतर दाऊद ने उपदेस कीआ था। बडे अजगर, सिंघ के सनमुख जावणा परवान है पर इसत्री के सनमुख जावणा अजोग है`

नारी के अतिरिक्त `रूपवान बाल` भी साधना के मार्ग में विघ्न बताए गए हैं। नारी का परिध्यान, नारी के साथ हंसी मजाक आदि का निषेध बड़ी सख्ती के साथ किया गया है :- `इनके बसत्र का देखणा भी जागिआसी कउं परवान नहीं। इसत्री आदिकहु साथ बोलणा अरु उनके बचन कउं सुनणा - - - हांसी आदि जैसे बिवहार हैं। सो सभ ही निंद हैं`।

पारसभाग का यह `कांम` निषेध भारतीय साधना-पद्धति में स्वीकृत ब्रह्मचर्य की मर्यादा के अनुरूप है।

(2) क्रोध -1

क्रोध: स्वरूप

क्रोध को 'मलीन सुभाव' बताते हुए, क्रोध का कारण 'मनोरथ' बताया गया है :- 'जब कोई इसकी प्रीतम वस्तु कीआ चाहता है। तब सीघ्र ही क्रोध उपजि आवता है। पर जिस पदारथ विषै इसका मनोरथ कछु नहीं होता। तिस ते दूर होणे करि क्रोध नहीं उपजता। जब लग अहार अरु बस्त्र अरु इस्थान के परोजन ते मुकति नहीं हो सकता। अरु जब कोई इनहुं पदारथहु कउं हिरिआ (हरण करना) चाहता है। तब निरसंदेह इस कउं क्रोध उपजता है'।

क्रोध :कारण :- पारसभाग में क्रोध के ये पांच कारण बताए गए हैं :-

1. **अभिमान** :- 'अभिमानी पुरष किंचत ही बचन अरु निरादर करके क्रोधवान हो जाता है। इसका उपाव दीनता है'।

2. **हांसा** :- हांसा ते भी क्रोध उपजता है। - - इसका उपाव - - - वाद-विवाद-हांसा से विरक्त रहें'।

3. **निंदा** :- 'जब कोई इसकी निंदा करता है। अथवा इस पर कछु दोष राखता है। तउ भी दुहुं ओर ते क्रोध उपजता है। उपाव - - आप कउं निरदोष न जाणै। अरु इस प्रकार समझै। जो मैं तो अवगुणहु करि भरपूर हौं। तां ते किसी करि क्रोधवान किउं होता हौं'।

4. **तृष्णा: ईर्ष्या** । - ' - - इह सभी मलीन सुभाव है। - - - त्रिस्नावान पुरष इस लोक विषै भी दुखी रहता है। अरु परलोक विषै भी बड़े दुख कउं भुगता है। - - - त्रिस्ना ('ईरषा') कउं रिदे सौं दुर करें'।

5. **'क्रोधवानों' की संगति** :- 'क्रोधवानों की संगति ते भी क्रोध उपजता है। सो बहु मानुख ऐसे पुरष होते हैं जो क्रोध की अधिकता कउं अपणा पुरषारथ समझते हैं। - - - अमके (अमुक) पुरष कउं जीत लिआ। अरु

उनके संत एक ही स्राप दे करके उनके मानुष कउं भसम करि डारा । अरु उसका ग्रिह धनु सभ ही नास कर दीआ । - - जिस क्रोध कउं संत जनहु ने कूकरहु का सुभाव कहा है । सो तिस कउं पुरषारथ अरु बडाई जाणते हैं । अरु सहणसीलता जो महा पुरखहु का लछण है सो तिस कउं बल हीणता कहते हैं` ।

दाभि : ग्रंथि :- दाभि को क्रोध की `गांठि` बताया गया है । और कहा गया है :- `जब इह पुरष किसी संजोग अथवा अपणी निबलता करके क्रोध न करे । अरु रिदे विखै अभिमान रहै । तब इस करके चित मैं क्रोध की गांठि हो जाती है सो इह महां निंद है` ।

इस `दाभि गांठि` के ये आठ पुत्र बताए गए हैं :- `ईरखा`, `वैरभाव`, `क्रोध करके उसके साथ राम राम भी न करै` । `सत्रु कउं गिलान साथ देखै । उस कउं दुरबचन बोलता रहै । उसके छिद्रहुं कउं प्रसिध करता रहै । उसका घातु चितवता रहै । उसके किसी कारज विखै सहायता नहीं करता` ।

क्रोध शमन :- क्रोध और इस दाभि ग्रंथि के शमन और निवारण का उपाय इस प्रकार बताया गया है :- ` जब क्रोध की अधिकता देखै तब मुख ते ऐसे कहे । जो हे भगवंत । इस क्रोध रूपी दुस्ट ते मेरी रखिआ कर । बहुड़ि जब खड़ा होवै । अरु क्रोध की प्रबलता देखै । तब बैठ जावै । अरु जब आगे ही बैठा हूआ होवै । तब सैन ( शयन) कर रहै । अथवा सीतल जल साथ इसनान करि लेवै । तब सुभावक ही क्रोध का बल छीण हो जाता है` ।

क्रोध : आवश्यकता :- क्रोध और दाभि के इस विस्तृत विवेचन के साथ ही क्रोध को एक मानसिक आवश्यकता के रूप में भी स्वीकृत किया गया है तथा क्रोध को `भगवंत` का दिया शस्त्र बताया गया है :- `भगवंत ने इहु क्रोध भी इस निमित रचिआ है । जो इही क्रोध इस पुरष का सस्त्र होवै । और

इस हो ससत्र करके अपणे शत्रुअहु का नास करे । अरु सरीर की रछिआ विषे सावधान होवे । - - - जब क्रोध मुल ही नस्ट हो जावे । तब कुसंग अरु अपकरमहु की गिलान दुर हो जाती है । तां ते वाहार भी इह क्रोध म्रिजादा ते अधिक भी न होवे । अरु अति अंत सुंन भी न होवे ।

क्रोध की निंदा के वचन तो कहीं भी मिल सकते हैं । परन्तु मानसिक धरातल पर क्रोध की आवश्यकता सिद्ध करने वाली दृष्टि प्राय: दुर्लभ है । पारसभाग के चिंतन में यही दुर्लभ दृष्टि स्थान स्थान पर पाई जाती है ।

पारसभाग के क्रोध सम्बन्धी इस चिन्तन-विवेक का मूल्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की क्रोध सम्बन्धी इस धारणा के साथ तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है :-

`क्रोध न तो मनुष्यता का ही चिन्ह है और न स्वभाव के सरल किंवा आत्मा के शुद्ध होने का चिन्ह है । वह भीरुता अथवा मन की क्षुद्रता का चिन्ह है । क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक क्रोध आता है, नीरोग मनुष्यों की अपेक्षा रोगियों को, युवा पुरुषों की अपेक्षा बुड्ढों को और भाग्यवानों की अपेक्षा अभागियों को । जो मनुष्य क्षुद्र है उन्हीं को क्रोध शोभा देता है, सज्जन, उदार और सत्पुरुषों को नहीं` ।

गज़ाली से एक हज़ार वर्ष पीछे आने वाले भारतीय विचारक सामान्यत: क्रोध के सम्बन्ध में इसी ढर्रे पर सोचते रहे ।

3, दम्भ: स्वरूप

साधना मार्ग में `दम्भ` का निषेध बड़े विस्तार तथा बड़ी गहराई से साथ किया गया है । दम्भ की छोटी से छोटी प्रवृत्ति भी इस `निषेध` की सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं सकी है । `दम्भ` का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया

गया है :- `दंभ का अरथु इहु है। जो आप कउं बैरागी अरु भजनवांन देखावणा। अरु भेख करके जगत का मिलाप बढावणा। अरु अपणी वसेखताप्रगट करणा। अरु अपणे ऊपरि लोकहु की प्रतीति बढावणी`।

दम्भ: प्रकार :- इस दंभ का प्रयोग दंभी लोग पांच प्रकार से करते हैं :-

(1) शारीरिक : दंभ :- `बदन का रंगु पीला करके अपणी जाग्रत लखावणी। अथवा देह कउं दुरबल करणा। त्रिकुटी चढाई करि आप कउं भेवान देखावणा। ऊंचा सबदु न बोलणा। जो मैं ऐसा गंभीर हौं। अधर सुके ( शुष्क) राखणे। जो मैं व्रती हौं। जब ऐसी क्रिआ लोकहु के छलने के निमित करे। तब जाणीए जो केवल दंभी है`।

2. परिधान : दंभ :` बसत्र मलीन अथवा रंगीन अथवा पुरातन पहरने। आप कउं तपसी जनावणा अथवा म्रिगछाला आदिक अंबर ओढणे। - - ऐसी क्रिआ करके लोकहु की पुजा करते है`।

3. वाणी : दंभ : `सदीव (सदैव) अधर हलाइ करि आप कउं भजनवांन दिखावणा। नाना प्रकार के सासत्रहु के बचनहु का वखिआनु करणा। आप कउं बुधवंत जनावणा। - - - सो इह केवल पाखंड होता है`।

4. भजन: दंभ :- `लोकहु के देखते मसतकु बहुतु टेकणा। सीस नीवा करके बैठणा। - - - जगत कउं दिखाइ करि दानु देवणा`।

5. `सिख- साखा: दंभ `: `अपणे सिख-साखा अधिक दिखावणे। अपणी ईस्वरता कउं सभा विखे आप ही प्रगट करणा। - - - मैं ऐते बरख पर्यंत बडे बडे महांपुरखहु का सेवा कीनी है`।

इस दंभ प्रपंच को `महां पाप` का रूप इस प्रकार बताया गया है, `तात परज इहु जो दंभी मानुख अपणा मान के निमित बडे कपट करता है।

अरु एक ही ब्रीहि(जौ) का अहार करता है। अथवा निराहार ब्रती रहता है। तो इह सब ही करतब महांपापहु का रूप है`।

इस महांपाप का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- 'दंभु) महांराज की ओर ते मैमुणाई है। तां ते इसके समान अवर रोगु कोई नहीं। काहे ते जो भेखधारी मानुख की मनसा सरबदा इही होती है। जो किसी प्रकार लोक हमारा भजन देखहिं। अरु हम कउं भजनारथी जानहिं। सो जिस भजन विखै ऐसी कामना होती है। तब उस कउं भगवंत का भजनु नहीं कहीता। अरु इह केवल जगत की ही पूजा होती है`।

दंभ-मूलक भजन करने वालों को परलोक में इस प्रकार कहा जाएगा, :` हे पाखंडीअहु। तुमहुने जिन कउं दिखावणे के निमित मेरा भजन कीआ है। सो अब भजन का फल भी उनहीं ते मांगहु`।

`महांपुरख` ने तो `दंभ` रूपी इस नरक से बचाने के लिए भगवंत से बार बार प्रार्थना की है। इसी प्रकार `उमर` (द्वितीय ख़लीफा) और अला `साईं लोक` आदि कितने ही संतों के बचन और उनके साक्ष्य पर `दंभ` और इसकी अनेक सूक्ष्म दशाओं का निषेध किया है। इस संबंध में फुज़ैल` साईं लोक` की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है :- `आगे जगिवासी जन दंभ बिना सुभ करम करते थे। अरु इस समे लोक सुभ करम कीए बिना ही दंभ करते हैं`

दंभ : उपाय : इस `महांपाप` `महांरोग` (दंभ) की निवृत्ति के उपाय के संबंध में कहा है,` बड़े धीरज अरु पुरखारथ बिना इसका उपाय नहीं हो सकता। काहे ते जो इस दंभ का सुभाउ मन की ब्रिती साथ मिस्रत होता है`।

परलोक: भय :- दंभ को `मनोवृत्ति` के रूप में रख कर `परलोक-भय` के द्वारा इसकी निवृत्ति संभव बताई गई है, `जदपि दंभ के समे मुरख कउं

प्रसंनता होती है। तउ भी परलोक विषै दंभ के नमित ऐसी ताड़ना होवैगी। जो मैं उस कउं सहि न सकऊंगा। सो जिसने इस वारता कउं निसचै पछाणिआ है। तिस कउं दंभ का तिआगु करना सुगम हो जाता है।

परलोक में दंभी को इस प्रकार फटकारा जाएगा, 'हे दंभी, हे कपटी, हे महांपापी, तैंने भगवंत के भजन कउं जगत की उसतत के नमित वेचिआ है। अरु तूं ऐसा निरलज है। जो तुझ कउं इस वारता ते लजा भी नहीं आवती। जो तैंने जगत को प्रसन कीआ। अरु भगवंत की अप्रसनता का भै न कीआ। जगत की निकटता कउं अंगीकार कीआ। महांराज की दूरी का भै न कीआ'।

परलोक का भय 'दंभ' की मनोवृत्ति पर अंकुश का काम करता है और इस भय से दंभ का 'बीज' नष्ट हो जाता है।

दंभ का दूसरा 'उपाव' इस प्रकार वर्णित है, 'इस करके दंभ का बलु खीण होता है। पर मूल ही ते दूरि नहीं होता'। इस 'उपाव' का स्पष्टीकरण इस अवतरण में किया गया है:- 'बारंबार इही वीचार करै। जो जगत का जानणा मेरे किस काम आवता है। काहे ते जो जगत कउं उतपति करणेहारा भगवंत सरब जीवहु का अंतरजामी है। तां ते उसका ही जानणा मुझ कउं विसेख करि लाभदाइक है'।

दंभ: सार्वजनिक उपयोगिता :

दंभ को मनुष्य के मनोजगत् से एकदम निकाल फैंकना संभव नहीं है। हां, इसका उदात्तीकरण किया जा सकता है। दंभ के इस उदात्तीकरण पर पारसभाग में अनेक दृष्टियों से चर्चा की गई है:- 'भजन की गुप्तता विषै इहु लाभु प्रसिध है। जो दंभ ते मुकति रहता है। तैसे ही भजन की प्रगटता विषै

भी बड़ा लाभ है। जो भजनवानं कउं देख करि अवर लोक भी भजन विखै हरषित होते हैं। अरु उनकी सरधा सातकी क्रिया मौं व्रिध होती है।

दंभ की इस सार्वजनिक उपयोगिता पर 'महांपुरख' की साखी प्रस्तुत की गई है :- 'जब इह पुरख सातकी करम की नींव द्रिढ़ राखता है। उस करम कउं देख करि अवर मानुख भी सुभ क्रिआ विखै लागते हैं। तब प्रिथम पुरख कउं अपणी करतत का फल भी प्रापति होता है। अरु अवर मानुखहु के फल भाग भी पावता है।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है :- 'तातपरज इह जो जिसका मनसा दंभ ते रहित होवै। अरु अवर जीवहु के कलिआण निमित भजन अरु सुभ करम कउं प्रगट करै। तब इह भी उत्तम अवस्था है।

'परु जिसके रिदे विखै दंभ की वासना उपजि आवै। तब उस कउं अवर जीवहु के कलिआण निमित भजन कउं प्रगट करणा लाभदाइक नहीं होता'।

भजन जब दंभ की सीमा छू लेता है, इस संबंध में साधक को अनेक प्रकार से सावधान किया गया है :- 'परु प्रगट भजन करणी हारे कउं इस प्रकार चाहीता है। जो अपणी रिदे कउं भली प्रकार पिछान करके देखता रहै। काहे ते जो केते पुरखहु के रिदे मौं दंभ की प्रीति गुह्य होती है। अरु अपणी चित विखै इस प्रकार अनुमान करते हैं जो हम जगत के कलिआण निमित भजन कउं प्रगट करते हैं। बहुड़ि दंभ की प्रीति करके अपने धरम कउं नस्ट कर देते हैं।

पारसभाग की दम्भ सम्बन्धी यह समस्त सामग्री मानव की चिन्तन-धारा के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

निषेध(बहिरंग) पक्ष :

पारसभाग के तीसरे प्रकरण के पांचवें वर्ग में `माइआ की प्रीति त्रिस्ना का निषेध` का वर्णन किया गया है। इसी स्वभावों में सबसे पहले `माइआ` को लिया गया है।`छहुया` में भी तीसरे `कब` की छठी `तुक` का विषय `वर्तंगी गुझ` दिया गया है।

(1)`माइआ`

`माइआ` : स्वरूप :- पारसभाग में `माइआ`(माया) का स्वरूप निर्धारित करते समय उसके स्थूल रूप(आहार, वस्त्र और स्थान) का विस्तृत विवरण दिया गया है :-` एक अहार है। दूसरा बसत्र है। तीसरा सीत उसन की राखिआ के निमित अस्थान भी चाहीता है।-- माइआ के सरब पदारथहु का मूल इहो है`।

`नासवंत पदारथ` :- सामान्यतः `माइआ` को `नासवंत पदारथ` के रूप में प्रस्तुत किया गया है :- `नासवंत पदारथहु का तिआग करहु। अरु सति सरूप के विखै सावधान होवहु` स्पष्ट है कि पारसभाग में `माइआ` शब्द अद्वैत-वेदान्त की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं हुआ।

सांसारिक पदार्थों के प्रति घोर मोह `माइआ` का रूप बताया गया है और कहा गया है कि यह `माइआ` अपने प्रेमियों (`भगवंत ते बेमुख`) तथा अपने शत्रुओं (भक्तों) को भी समान रूप से `वैरन` है :-(`भगवंत के प्रीतमहु) के आगे आप कउ सुंदर करि दिखावती है। अरु नाना प्रकार के छलहु कउ पसारती है। इसी कारण ते बहु जगिआसी बैराग करि इसके तिआग विखै जतन करते रहते हैं। अरु आप कउ बचाइआ चाहते हैं`

फलतः भक्तों के साथ `माइआ` का सतत द्वन्द्व चलता रहता है। परन्तु `माइआ` के पीछे भटकने वाले सामान्य प्राणियों-अपने प्रेमियों - के साथ भी `माइआ` का व्यवहार शत्रुओं सा ही रहता है :-` प्रिथमे उन कउ अपणी ऊपरि उरझावती है। अरु जब अधक प्रमाद करके मोहत होते हैं। तब उनका भी तिआग करि जाती है। अरु दुराचारन इसत्री की निआईं ग्रिह ग्रिह विखै भटकती फिरती है। अरु अपने प्रीतमहु कउ सरबदा ही पड़ा दुख देती है`

अध्याय-5

निषेध (बहिरंग) पक्ष

1. माइआ: स्वरूप
2. माइआ: व्यभिचारिता
3. माइआ: राकसी
4. माइआ: बहुभोग
5. माइआ: केवल निन्द्य नहीं
6. अति अहार
7. क्रम: 'माइआ विरह की बाणी'
8. 'रसना विघ्न'

अध्याय-6

भाषा

क- पारसभाग : साहित्यिक भाषा

1, प्रवाह

2, सुबोधता

3, बिम्बमयता

4, तार्किकता

5, सहज-स्निग्धता

ख- पारसभाग: भाषा शास्त्रीय सर्वेक्षण

1, भाषाई परिपार्श्व

2, भाषा के तीन स्तर

3, क- ध्वनि परिवर्तन: (स्वर)

ख- ध्वनि परिवर्तन: (व्यंजन)

4, 'रूप' विवेचन । 'उकार-बहुलत्व' । सर्वनाम, विशेषण, भाववाचक ।

क्रिया : कृदन्त-रूप । भविष्यत् । विधि-संभावना, कर्मवाच्य: रूप । संयुक्त क्रिया । अरबी-फारसी शब्दावलि ।

'माइआ' : व्यभिचारिता । 'दुराचारन इसत्री' के इस रूप के माध्यम से 'माइआ' को व्यभिचारिणी बता कर उसका घिनौना रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :- 'मिहतर ईसै ने सुपने विखै माइआ कउं इसत्री के सरूपवत देखिआ । तब उस ते पूछणे लागा । जो तैने कितने भरते कीए हैं । बहुड़ि माइआ ने कहा जो मेरे भरते अणगत हैं । तब मिहतर ईसै ने पूछिआ जो वहु सभ ही म्रित हूए अथवा उनहु ने तेरा तिआग कीआ है'

'माइआ ने कहा । जो मैने ही सभनहु कउं मारा है । तब मिहतर ईसा कहणे लागा । जो लोकहु की मूरखता का मुख कउं असचरज आवता है । काहे ते जो जिन की प्रीति तेरे साथ द्रिढ़ हूई है । सो तिनकी नासता अरु दुखी होणा भी देखते हैं । अरु बहुड़ि तेरे ऊपरि उरझि करि आसकत होते हैं । अरु मै नहीं करते'

माइआ : राक्षसी :- 'माइआ' के इस घिनौने रूप को 'राक्षसी' की भयानक भूमिका में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :- 'महां पुरख ने भी कहा है । जो परलोक विखै माइआ का मूरत कुरूप ब्रिध इसत्रीवत दिखावहिगी जो उसके नैत्र भैआनक अरु दांत मुख ते बाहर निकसे हूए होवहिगे ।पर जब इह मानुख उस कउं देखहिगे । तब अरदास करहिगे । जो हे महाराज, इस ते हमारी रखिआ करु । अरु कहैगे जो इह महांराखसी कउन है' ।

'तब अकासबाणी होवेगी । जो जिस माइआ के नमित तुम ईरखा अरु आपस मैं विरोध करते थे । अरु जीवहु का घात करते थे । भाव अरु दइआ ते रहत होते थे । अरु तुम जिस के ऊपर अभिमान करते थे । सो इह वही माइआ है' ।

माइआ :'नासवंत' :- 'माइआ' की नश्वरता को इस प्रकार रूपायित किया गया है :- 'जब कोई माइआ के आदि अंत का विचार करे । तब निरसंदेह

जाणै । जो इह माइआ आदि भी न थी । अरु अंत भी न रहैगी । तां ते मध (मध्य) भाव किछु कुछ दिन स्थित है । - - - संसार की आदि पंगूड़ा (पालना) है । और अंत मसाण (शमशान) हैं

पारसभाग के अनुसार 'माइआ' के पाश से बचे रहने का उपदेश हज़रत मुहम्मद से पूर्व अनेक पैगंबर दे चुके थे :-

1. 'मिहतर ईसा' :-

क- 'माइआ को अपना सुआमी न बनावहु । तब तुम को इह माइआ अपणा दासु न करे । अरथु इहु जो माइआ के साथ अधिक प्रीति न करहु' ।

ख- 'इह माइआ अरु परलोक ऐसे हैं । जैसे एक पुरख कीआं दो इसत्रीआं होवहिं । अरथ इह जो जब एक प्रसन होती है तब दुसरी दुखात होती है । तैसे ही जब इह पुरख माइआ विखै सावधान होता है तब परलोक ते बेमुख होता है । अरु जब परलोक के मारग विखै सावधान हूआ चाहता है । तब माइआ साथ विरोधु होता है'

ग- सरब पापहु का मूल प्रीति है । अरु सरब भोगहु का फल सोक अरु दुख है । जैसे जल अरु अगनि का मिलापु नहीं होता । तैसे ही भगवंत अरु माइआ की प्रीति किसी प्रकार एक नहीं होती'

2. 'सुलेमान'

'मेरे ईस्वरज (ऐश्वर्य) ते एक बार भगवंत का नाम लैणा विसेख है । काहे ते जो महाराज के नाम का उचार असथिर(स्थिर) रहेगा । अरु मेरा ईस्वरज सभ ही नस्ट हो जावेगा'

अर्थात् 'माइआ' का ऐश्वर्य-प्रपंच क्षण भंगुर है' ।

3. `पिछ्छर नूह` :- `जैसे सराँई के दरवाजे विचो अंदर वड़ा जाईऐ । अरु दूसरे दरवाजे ते बाहरि निकसीऐ सो मैं ने रही (`सढ्ढ्र बरस परजंत`) आरबला (आयु) विचो जीव का जीवणा ऐसा ही देखिआ है`

अर्थात् जगत का समस्त व्यवहार मिथ्या है ।

षट्भोग :- पारसभाग में `अली गाजाली` के आधार पर माइआ के सार रूप ये `षष्ट भोग` बताए हैं :- `खाणां, पीणां, पहरणा, सुंघणा, अरु घोड़िअहु परि चढना, अरु इसत्री आदिकहु नालि मिलणा` । इन छहों भोगों की `महांमलीनता` का विवरण बहुत विशद और मर्म-स्पर्शी है :-

1. खाणां :- `सरब रसहु ते बसेष माखी (माक्षिक। मधु) है । सो मखीअहु (मक्खियों) की थुक ते उतपति होती है ।

अर्थात् `थूक` इस स्थूल (माइआ) भोजन की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है ।

2. पीणा :- `सरब सरबतहु विचो जल विसेष है । सो सभ किसी कउं एक समान प्रापति होता है`

अर्थात् सर्व-सुलभ पेय जल पर क्या इतराना ?

3. पहरणा :- `पहिरण पट (रेशमी वस्त्र) सभ ते चोखा है । सो भी कीटहु की लार ते उतपति होता है` ।

`लार` के इस परिधान पर गर्व कैसे किया जा सकता है ?

4. सुंघणा :- `सरब सुगंधहु ते उत्तम कस्तूरी है । सो भी म्रिगहु का रुधर है` ।

खाने-पीने-पहनने के घृणित पदार्थों की इस सूची में `रुधिर` एकदम फब रहा है ।

5. घुड़सवारी :- `घोड़िअहु पर चढ़णा ऐसे है जैसे अगहुं करि बीर करि वरणित करीऐ` ।

अर्थात् अपने शरीर को खिलवा कर ही घोड़े की सवारी की जा सकती है।

6. स्त्री-आदिक भोग :- "इसत्री आदिक भोग तो प्रसिध मलीन हैं। जो विस्टा मूत्र अरु हाड हैं"

भर्तृहरि ने भी स्त्री मुख को कफ-श्लेष्म का आगार बता कर इसी कोटि के 'जुगुप्सा भाव' की अभिव्यक्ति दी है।

'माइआ' के भोगों को इस घिनौने रूप में प्रस्तुत करना प्रायः सभी अध्यात्मवादियों का परम-प्रिय विषय रहा है। पारसभाग में इस्लामी परम्परा के अनुरूप 'माइआ' के इसी रूप को विशदता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

माइआ: केवल निन्द्यनहीं। - माया के निन्द्य रूप के साथ साथ कुछ ऐसे भौतिक पदार्थों का भी उल्लेख किया गया है जो पदार्थ 'माया' की सीमा में होते हुए भी मननीय है :- "माइआ विखे सभ ही पदारथ निंद हैं (इउं नहीं जाणिआ चाहीआ)। काहे ते जो केते पदारथ इस संसार विखे ऐसे भी पाए जाते हैं। जो माइआ ते रहत हैं। जैसे विदिआ अरु सुभ करतू जो हैं। सो इस संसार ही विखे प्रापति होते हैं पर माइआ ते रहत हैं। अरु परलोक विखे भी जीव के संगी अरु सहाइता करने हारे हैं"

"जदपि प्रलोक विखे इस विदिआ के अखर अरु वचन नहीं पहुंचते। पर तउ भी विदिआ का जो गुण है सो जीव के साथ रहता है" अतिवादिता से बचते हुए 'माइआ' का यह स्वरूप निर्धारण प्रशंसनीय है।

(2) 'अति अहार'

1. 'अति अहार' :- 'बुरे सुभाव' के अन्तर्गत 'विकार-निखेध प्रकरण' में सब से पहले 'अति अहार निखेध' का विवेचन किया गया है।' अति अहार' और

'कांम' को बुरे स्वभावों में सर्वोपरि और शेष विकारों की अपेक्षा इन्हें प्रबल भी स्वीकार किया गया है। इस स्वीकृति का औचित्य इस प्रकार बताया गया है :- 'सरब जीवहु परि अहार का विखै अति प्रबल है। अरु प्रबलता इस की इह है। जो जब उदर पुस्ट होता है। तब कांम की अभिलाखा उतपति होती है। अरु कांम की अभिलाखा तब पूरन होती है। जब धन का संग्रह होता है। बहुड़ धन की उतपति पापहु करि होती है। अरु धन का उतपति कैनिमित ईरखा अरु वैरभाव अरु क्रोध अरु कपट अरु अभिमांन आदिक अवगुण उपजते हैं। तां ते अहार की अधिकता विखै आसकति होणा सरब पापहु का मूल है'।

'अतिअहार' के विरुद्ध महांपुरुष (हज़रत मुहम्मद) तथा 'मिहतर ईसा' के वचन उद्धृत करते हुए 'अतिअहार' का निषेध इस प्रकार किया गया है :-

(क) '<u>अल्प आहार</u> :- 'अपणी रिदे कउं म्रितक न करहु। जो अहार की अधिकता करके रिदा म्रितक हो जाता है। जैसे अधिक जल करके खेती म्रितक हो जाती है। तां ते सरीर के निरवाहु निमित अलपमात्र ही अहार सुखदाइक होता है। -- इतना ही अहार प्रमांन है। जो जिस विखै जल अरु सुआस अरु भजन का अवकासु रोकिआ न जावे' (महांपुरुष)

(ख) 'जब तुम अपणे सरीर कउं भूखा अरु नगन राखोगे तब निरसंदेह भगवंत के दरसन कउं प्रापति होवहुगे' (मिहतर ईसा')।

इनके अतिरिक्त 'शिबली' 'जुनैद' और 'यूसुफ' जैसे कितने ही विद्वान् साधकों के वचन उद्धृत करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है :- 'आतमरज इह जो सरब संत जनहु ने बारबार करके देखिआ है। अरु इही निसचा कीआ है। जो इस लोक अरु परलोक विखै संजम के समान सुखदाइक पदारथ कोई नहीं। अरु अहार की अधिकता जैसा दुख देणेहारा भी कोई नहीं'।

इस निष्कर्ष के उपरान्त 'संजम' के 10 लाभ 'प्रगट' किए गए हैं। इन में से कुछ ये हैं :-

1. आहार संयम से 'नवतन' (नूतन) विचार और अनुभव की 'जुगति खुलती है' (शिबली)

2. 'अति अहार के कारण अंटे हुए उदर से भजन और 'अरदास' (प्रार्थना) का रस नहीं लिया जा सकता। इस लिए अहार-संयम आवश्यक है' (जुनैद)

3. 'अनियत कालिक आहार से व्यक्ति सहनशील बनता है और आहार-प्राप्ति पर 'भगवंत' का शुक्र करता है' (महांपुरुष)

4. 'उदर पूर्ण होने पर भूखे लोगों का ध्यान नहीं आता। इसलिए संयम और भूख को अंगीकार करना चाहिए'। (यूसुफ)

5. अन्तिम लाभ यह है कि संयमी पुरुष का हृदय उदार होता है। हज़रत मुहम्मद ने एक मोटे को देख कर कहा था, 'जेता कछु तैने अपने उदर विषै डारिआ है। सो जब एता तूं भगवंत अरथ देता तउ भला था'

'अहार के संजम की जुगति' बताते हुए कहा गया है, 'जैसे अहार की अधिकता निंद है। तैसे ही अलपता भी निंद है। तां ते चाहीए जो सनै सनै करके अहार कउं घटावैं'।

अल्पता और अधिकता का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है, 'अहार की अधिकता अरु अल्पता भी भिंन भिंन सरीरहु अरु समे अरु क्रिया अनुसार भिंन भिंन अधिकार होता है'।

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति समय और अपने व्यवसाय (कार्य) के अनुरूप अपने लिए आहार तथा उसकी मात्रा का विधान कर सकता है।

सात्विक भोजन :- मिहतर मूसा, ईसा तथा देवताओं (फरिश्तों) के आदर्श पर यह व्यवस्था की गई है, 'अधिक चिकने अरु मीठे अहार अरु मांसादिक तउ अंगीकार न करें। मांसादिक अहारहु करके रिदा कठोर ही जाता है। - - - ऐसी क्षुधिआ भी न राखें जिस करके अनाज की ओर सुरति खींची रहे। अरु भजन ते विहीनता होवे। अरु ऐसा पुस्ट भी न होवे जिस करके आलस अरु अचेतनता वृद्धि जावे'।

सात्त्विक भोजन की यह व्यवस्था गीता के 'युक्ताहार' के समकक्ष है।

(3) 'धन-निषेध'

'इह्या' में तीसरे 'रुब' की छठी 'बुक' का शीर्षक 'वेल्थ एंड रवैरिस' है। पारसभाग में तीसरे प्रकरण के छठे 'सरग' में 'धन की निषेध' का वर्णन हुआ है।

धन को 'माइआ रूपी बिृछ' की एक 'साखा' बताया गया है और माया की अन्य शाखाओं -' मान' बड़ाई आदि - की अपेक्षा यह शाखा साधक के लिए अधिक हानिकारक है, इस भूमिका के साथ धन से उत्पन्न होने वाले अनेक विघ्नों और दुःखों का वर्णन किया गया है।

इस प्रसंग में महाराज (भगवंत) महापुरुष, मिहतर ईसा तथा कितने ही अन्य इस्लामी साधकों के विचार इस प्रकार संकलित किए गए हैं :-

1. 'इस धन रूपी घाटी ते उतरना कठिन है। काहे ते जो सरीर के बिवहार साथ भी इसका सनबंध है। अरु इह धन ही परलोक के मारग का तोसा (तोशह : फारसी। सफर खर्च) होता है। अरु इह जो अहार अरु वसत्र अरु असथान की प्रापति भी इस ही करि होती है। जब धन की प्रापति

भी इस ही करि होती है। जब धन की प्राप्ति होती है तब नाना प्रकार के भोगहु विषै असक्त (आसक्त) हो जाते हैं। तो इह भी अनेक पापहु का बीज है"

अर्थात् धन का आवश्यकतानुसार संचय करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। क्योंकि धर्म-कार्य धन के बिना सम्पन्न नहीं हो सकते।

2. "जैसे जल करके सीघ्र ही सबजी होती है। तैसे ही धन अरु मांन की प्रीति करके बेग ही रिदै विषै कपट उपज आवता है"

3. "जिस पुरुष ने रूपे अरु सुवरन कउं अधिक प्रीतम कीआ है। सो तिस कउं परलोक विषै भगवंत लजामान करता है" (स्यान बसरी)

4. "इह रूपा अरु स्वरन बिछूअहु की निआईं है। तां ते जब लग इसका मंत्र न जाणहु तब लग इसका सपरस न करहु। तब निसंदेह इनकी विख करके म्रित होवहुगे" (याहिया माईं लीक)

धन रूपी बिच्छू का मंत्र धन का धर्म-कार्यों में विनियोग बताया गया है। इसी प्रसंग में धन को 'सरप' की निआईं भी कहा गया है :-

"विखु अरु तरीआक सरप ही ते उपजते हैं। तैसे ही धन विषै भी गुण अरु दोष पाए जाते हैं। सो जब लग विखु अरु अम्रित भिंन न करीए। तब लग बचन का तातपरज प्रसिध नहीं होता"।

'तरीआक' शब्द अस्पष्ट है। पारसभाग (नागरी संस्करण) में 'तरीआक' के स्थान पर 'मणि' शब्द रखा गया है।

धन के इस 'निषेध' के बाद 'महांपुरुष' के बचनों का आधार लेकर आवश्यकता अनुरूप सात्विक धन के उपार्जन का विधान करते हुए बताया गया है कि निर्धनता के कारण व्यक्ति 'भगवंत' से विमुख हो जाता है और

'भगवंत' पर कई प्रकार के आक्षेप लगाता है :-

<u>भगवंत से विमुखता</u> :- 'इह धनु भी उत्तम पदारथ है परु बुधवान अरु धरमातमा पुरष कउ। - - - जब इह मानुष अति अंतिका निरधन होता है। तब महाराज ते बेमुख हो जाता है'।

<u>भगवंत: अप्रीति</u> :-' जब अपणे संनबधी अरु अरु आप कउं भूख संजुगत देखता है। तब ऐसे जाणता है जो भगवंत ने इह कीी अनीत रची है। जो पापी मानुखहु कउं ऐसा धन दीआ है। अरु सातकी मानुष ऐसे दुखत कीए है जो उन कउं एक दाम भी हाथ नहीं आवता। जिस करके भुख का निवारन करहिं'।

'बुद्धि ऐसा अनुमान करता है। जो जब भगवंत मेरे दुख कउं नहीं जानता। तब अंतरजामी किउं करि हुआ। अरु जब दुखि जाणा करि दे नहीं सकता। तब पूरन समरथ किउं करि हुआ। अरु जब समरथ हो करि नहीं देता। तब दइआ अरु उदारता ते हीण जाणिआ जाता है। अरु जब इस नमित नहीं देता। जो परलोक विखे सुखी करेंगा। तब ऐसे जाणिआ जाता है। जो दुख दीए बिना सुख देणे को समरथु नहीं हो सकता। तांते प्रसिध है जो निरधन पुरष क्रोधवान होइ करि ऐसे कहने लागता है'।

इस प्रसंग के अंत में अतिवादिता से बचते हुए यह निश्चित किया गया है कि जहां धन की बहुलता व्यक्ति को धर्म से भ्रष्ट करती है वहां निर्धनता भी व्यक्ति को बहुधा पथ-भ्रष्ट करती है।

<u>(4) रसना</u>

साधना के मार्ग में रसना भी बहुत से विघ्नों का कारण बनती है, इस अनुभव-सिद्ध सत्य की प्रतिष्ठा करने से पूर्व 'रसना' की उपयोगिता तथा उसकी अनन्त क्षमताओं का विशद विवरण इस प्रकार दिया गया है :-

'बुधि का मंत्री' :- 'इह रसना भी भगवंत ने असबरज रूप बनाई है। काहे ते जो देखणे विखे तो मांस का टुकड़ा है। पर जो कछु धरती अरु अकास विखे ब्रिस्टि है। सो तिनहु सभनहु विखे रसना का प्रवेसु होता है। अरु जेते पदारथ अरूप है। तिनका भी बरनन करती है। तां ते इह रसना बुधि का मंत्री कही गई है। अरथ इह जो जैसे कोई पदारथ बुधि की पहाणि ते बाहज नहीं। तैसे ही रसना भी सरब पदारथहु कउं बरनन करती है'।

रसना : इन्द्रिय-वैशिष्ट्य :- शेष इन्द्रियों में रसना की विशेषता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार रसना सब इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों को वाणी प्रदान करती है उस प्रकार दूसरी कोई इन्द्रिय अन्य इन्द्रियों से प्राप्त अनुभव को ग्रहण नहीं कर पाती :- 'जैसे नेत्र केवल अकार ही कउं देख सकते है। अरु स्रवन केवल सब्द ही सुनणे कउं समरथ हो सकते हैं। तैसे ही अउर इंद्रीआं भी एक एक कारज कउं ग्रहण करतीआं है'।

'पर इह रसना ऐसी है जो नेत्रहु अरु स्रवनहु अरु सरब अंगहु के भेद कउं बरनन करती है। जैसे जीव की चेतंनता सरब अंगहु विखे पसरि रही है। तैसे ही रसना भी जीव के सरब संकल्पहु कउं प्रगट करती है'

उच्चारण शक्ति :- रसना की उच्चारण-शक्ति को जीव की 'चेतंन' शक्ति के संदर्भ में रख कर रसना-विशेषत: रसना द्वारा उच्चरित शब्दों को साधना के मार्ग में इस प्रकार सहायक बताया गया है :- 'जैसे बचन का उचार रसना करती है। तैसा ही प्रवेस रिदे कउं भी पहुचता है। जब अधीनता अर बिओग का बचन उचारती है। तब रिदा कोमल हो जाता है अरु नेत्रहु के मारग ते आंसू चलणे लागतीआं है। अरु जब प्रसंनता अरु किसी की उसतति बरनन करती है तब सुभावक ही उसकी अभिलाखा उपज आवती है।

'जब रसना विखे कुल अरु मलीन अखरहु का उचार होता है तब रिदा भी मलीन हो जाता है। जब सुभ बचनहु का उचार करने लगती है तब

रिदा भी सांतक भाव कउं प्रापत होता है ।

रसना: संयम :- रसना द्वारा शब्दों का उच्चारण मात्र एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। क्योंकि प्रत्येक उच्चरित शब्द अन्ततः हृदय-प्रदेश को प्रभावित करता है। अतः रसना विशेषतः इसके द्वारा उच्चरित शब्दों पर साधक को संयम का अंकुश लगाना पड़ता है और इसी लिए रसना संयम अथवा मौन की एक विशेष विधि साधक के लिए अनिवार्य हो जाती है।

यदि इन्द्रिय-संयम साधना का प्रथम सोपान है तो रसना-संयम इन्द्रिय-संयम की पृष्ठभूमि है। इसलिए संतजन, `महाराज` और `महापुरुष` ने रसना संयम को इतना महत्व प्रदान किया है :-

1. `जिनका अहार अरु निद्रा अरु बचन संयम सहित होता है। तो निरसंदेह सिध पदवी कउं पावते हैं`। (संतजन)

2. `अधिक बोलणे विषे कदाचित् भलाई नहीं होती । तां ते जब किसी के उपकार अरु देणे अरु विरोध निवरत करणे के निमित ही बचन करे तो भला है`। (`महाराज`)

3. `जिन कउं रसना अरु उदर अरु कांम इंद्री की उपाधि ते भगवंत ने राखिआ है सो मुकति रूप हैं`। (महापुरुष)

रसना-संयम के संबंध में एक साधक का अनुभव बताते हुए कहा गया है : `जब झूठ कहउं तब भगवंत ते डरता हों। अरु जब साचु कहउं तब तुम ते भैमान होता हों। -- बोलणे करके अनेक पाप उपजते हैं। अरु इह रसना सरबदा बिअरथ बकनहु विषे आसकत रहती है`।
तुलनीय: `सांचे कै तो जग नहीं, झूठे मिलै न रामु` (कबीर)

रसना-संयम संबंधी इस विवेचन का निष्कर्ष इस प्रकार दिया है :

`मौन करके सरब कलेसहु ते मुकति रहता है। पुरषारथ अरु इकाग्रता भी बढ़ती है। अरु भजन विषै सुगम ही इसथित होता है`

`भला पुरष उस कउं कहीता है जो धन की गांठि कउं खोले। अरु रसना कउं बंधन विषै राखै`   (महांपुरष)

रसना: `विघन` :- वाणी के 15 विघन (दोष) बताए गए हैं और इनका विवरण बहुत रोचक है। इन विघ्नों में ये उल्लेखनीय हैं :-

1. `विअरथ` वार्तालाप :- वाणी के विघ्नों में पहला स्थान `विअरथ` वार्तालाप को दिया गया है: `जिस (बचन) विषै विवहार अरु परमारथ की सिधता कछु न होवै। सो उस बोलणे विषै सतोगुणी सोभा नस्ट हो जाती है`।

इसी संदर्भ में व्यर्थता का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया गया है: `विअरथ उस कउं कहीता है। जिस विषै अउगुण कछु न होवै। परु कारज भी कछु न होवै`।

हकीम लुकमान और संत दाउद के जीवन तथा व्यवहार को इस संबंध में आदर्श मान कर प्रस्तुत किया गया है।

2. मिथ्या: कपट: भाषण :- `मिथ्या अरु पाप संजुगत बचन बोलणा`।

3. खंडन-मंडन :- `जब कोई पुरष बचन कहै तब उसके बचन कउं विपरजे करि देणा`।

इस पर `महांपुरष` की यह साखी मननीय है :- `जब इह पुरष मतहु अरु पंथहु के झगड़े विषै द्रिढ होता है। सो सीघ्र ही आतम धरम ते भ्रस्ट होता है`।

इस वचन का स्पष्टीकरण :' ऐसे पुरुष - - - अपणी मान के निमित एक दूसरे के पंथ का निषेध करते हैं अरु कहते हैं जो इह भी धरम की निंदता है। सो इह भी बड़ी मूरखता है' ।

4. व्यवहार (मुकदमा) :- 'धन के निमित किसी के साथ झगड़ा करणा। अरु राजिअहु के दर परि जाइ पुकार करनी' ।
स्पष्टीकरण :' झगड़े का कठोर वचन अरु वैरभाव बिना निरवाह नहीं होता। तां ते जगिआसी जन ऐसे विवहार का मूल ते ही तिआग करते हैं' ।

5. धिक्कारना :- बोधकार करि देखीए तउ अपकारी जहु कउं धिकार करने ते भगवंत का नाम लेणा बतेश है' ।

6. 'हांसी' : पारसभाग में स्थान स्थान पर 'हंसणी-बोलणी' का निषेध पाया जाता है।' हदीसों' के आधार पर कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद के पूरे जीवन में 'जीवहु की प्रसंनता के निमित कछु अल्प ही हासी की वारता वरनन हुई है' ।

'हांसी' से तमोगुण की वृद्धि और हृदय की अंधता का उल्लेख करते हुए भी उपयुक्त अवसरों पर 'हांसी' का विधान इस प्रकार किया गया है :- 'पर जब अकसमात किसी कउं प्रसन करणे के निमित हासी का वचन कहे। तउ निंद भी नहीं' । अर्थात् किसी उदास व्यक्ति को सामान्य भाव से - बिना किसी प्रयोजन विशेष के - हंसा कर प्रसन्न करना उचित है।

(7) मिथ्या भाषण :- रसना-दोषों में 11वां दोष, 'झूठ बोलणा, झूठी दुहाई करणी' है और इसे 'परम पाप' बताया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि 'झूठ बोलणे करि रिदा अंध हो जाता है' । मिथ्या-भाषण साधक के पतन का कारण बनता है। इस तथ्य की पुष्टि 'महां-पुरुष' तथा दूसरे साधकों के विभिन्न 'बचनों' से की गई है। इस संबंध में 'महांपुरुष' के ये वचन उल्लेखनीय है :-

3- क- 'झूठ करि इस मानुष की प्राल्ब्ध क्षीण हो जाती है' ।
ख- 'सउदागरी विषे झूठ बोलणा अरु झूठी दुहाई करणी महांनीचता है । अरु इस ही पाप करके सउदागर भी नरकगामी होवहिंगे' ।
ग- ' झूठा मानुष बिभचारी ते भी बुरा है । काहे ते बिभचार तउ अकसमात्र छल करि होइ जाता है । परु झूठ बोलणा मन की मलीनता कर होता है' ।

अपवाद :- मिथ्या भाषण प्रायः सभी धर्मों में 'परम पाप' ही माना गया है । परन्तु यह 'परमपाप' करने की छूट भी कई बार दी जाती रही है । पारसभाग के अनुसार यह छूट इन अवसरों पर दी जा सकती है :-

1. 'जब झूठ की मनसा न होवे । अरु किसी की भलाई अरु रछिआ के निमित झूठ बोलता है । तब रिदा अंध नहीं होता' ।

गोया 'रिदा अंध होना' झूठ के झूठ होने की शर्त है ।

2. 'जदपि झूठ कहणा अजोग है । तउ भी बीचार की मिरजादा विषे देखो । जो जब झूठ कहणे करके किसी की रछिआ होती है । अथवा बडा विघन दूर होता है । तब झूठ कहने करि दोष कछु नहीं होता' ।

अर्थात् सत्य-भाषण 'विचार' और 'मर्यादा' द्वारा शासित होता है ।

इन अपवादों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है : 'जउ सरबदा ऐसे (झूठ बोलणा) ही सुभाव पकरि लेवे । तउ अजोग है । - - अवरहु कउं धोखा डारना परवांन नहीं'

(4) निंदा : 'निंदा के संबंध में एक विशद चर्चा पारसभाग में मिलती है । निंदा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है :- 'जदपि तूं सांच ही कहे । परु जिस बचन कउं सुन कर किसी का रिदा दुखवांन होता है । तब उस ही

कउं निंदा कहते हैं ।

यह निंदा रसना के अतिरिक्त नेत्र हाथ तथा अन्य अंगों के इशारे से भी की जा सकती है और इसलिए निंदा का दायरा बहुत विशाल है ।

एक बार 'आयशा' ने किसी स्त्री को 'मधरी' (मधोले कद की) कहा । तब 'महांपुरुष' ने कहा,' जो तैने उसकी निंदा करी है । तां ते थूक डारि । - - जब थूक डारी तब मेरे (आयशा) के मुख ते रुधर निकसिआ' ।

कारण :- निंदा के मूल में आन कारण रहते हैं । इन कारणों में मुख्य ये हैं :- (1) क्रोध (2) ईर्ष्या (3) 'हांसी' (4) छिद्रान्वेषी वृत्ति (5) निंदकों की संगति ।

अपवाद :- निंदा को 'झूठ' के समान 'महापाप' बताते हुए भी इसके ये अपवाद निर्धारित किए गए हैं :-

1. आततायी को दण्ड दिलाते समय आततायी की निंदा करना 'परवान' है ।

2. पाप-वृत्ति के प्रसार को रोकने के लिए पापी की निंदा 'अजोग' नहीं ।

3. दम्भी (डंभ भगतीए') तथा कुख्यात लोगों की निंदा की जा सकती है ।

इन अपवादों को 'महांपुरुष' ने इस प्रकार सूत्र रूप में अभिव्यक्त किया है : 'तीन प्रकार के मानुखहु की निंदा करनी पाप नहीं' :- (1)'अनिआई राजा' (2)'संतजनहु की म्रिजादा ते विप्रीति' (3) प्रसिध दुराचारी' । 'इनकी क्रिआ कछु गुह्यु नहीं होती । तां ते इनकी वारता प्रसिध करणी निंदा नहीं होती' ।

निंदा के संबंध में 'महांपुरुष' का यह वचन संभवत: इस पूरे विवेचन का फलितार्थ है :- 'जैसे सूके त्रिणहु कउं अगन भसम करि डारती है । तैसे ही

निंदा करके शुभ गुण शीघ्र ही नस्ट हो जाते हैं।

रचना और उसके व्यापार पर इतनी प्रामाणिक और गंभीर चर्चा हिन्दी में प्रस्तुत करने का श्रेय केवल पारसनाथ को ही दिया जा सकता है।

(क) पारसभाग : भाषा

पारसभाग की भाषा का भाषाशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने से पूर्व `साहित्यिक भाषा` की कसौटी पर पारसभाग की भाषा का संक्षिप्त सा अध्ययन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :-

1. प्रवाह : - पारसभाग में प्रयुक्त भाषा की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है उसकी प्रवाहमयता । पारसभाग की भाषा में पंजाब के उन पांचों दरियाओं की रवानी है जिन दरियाओं के परिवेश में पारसभाग की रचना हुई । इन्हीं दरियाओं के किनारे किनारे रहने वाले लोगों की आध्यात्मिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति पारसभाग करता रहा है ।

असमस्त पदावलि के लगातार प्रयोग एक ही क्रिया पर आश्रित छोटे छोटे वाक्यों और गंभीर से गंभीर अर्थ को सरल तथा सहज शब्दों के द्वारा स्पष्ट करती हुई पारसभाग की भाषा मन्दगति से आगे बढ़ती हुई एक सरिता की भांति पाठक के अन्तस्तल को बड़ी सहजता से आप्लावित कर जाती है ।

भाषा की इस प्रवाहमयता और सहजता को पारसभाग में कहीं भी देखा जा सकता है । परन्तु इस प्रवाहमयता और सहजता को शब्दों में बांध पाना संभव नहीं ।

2. सुबोधता :- `अपने `कथ्य` को बोधगम्य बनाए रखने के लिए पारसभाग का लेखक प्रतिश्रुत जान पड़ता है । सरल से सरल और कभी कभी घरेलू शब्दावलि के माध्यम से पारसभाग के लेखक ने अपने `कथ्य` को जन-मानस में प्रतिष्ठित किया है ।

यथावसर पंजाबी तथा पंजाबी की बोलियों से उपयुक्त शब्दावलि

का चुनाव करते हुए साहित्यिक ब्रज-भाषा के मुहावरों और सुबोध शब्दों को प्रयुक्त करते हुए तथा अरबी-फारसी का `सब्र` और `शुक्र` जैसी शब्दावलि - जिसका सही सही अनुवाद कर पाना संभव न था और जो शब्दावलि उस समय तक पर्याप्त प्रचलित हो चुकी था - को यथावसर अपनाते हुए पारसभाग के लेखक ने सुबोधता को अपने लेखन का आदर्श मान लिया जान पड़ता है ।

3. बिंबमयता :- अल-गज़ाली का लेखन अपनी बिंबमयता के लिए बहुत प्रसिद्ध है । अल-गज़ाली (कीमिया) के इस अज्ञात नामा अनुवादक ने पारसभाग की भाषा में मूल बिंबों को न केवल सुरक्षित ही रखा है बल्कि उन्हें एक परिवेश से दूसरे तथा सर्वथा भिन्न भाषाई परिवेश में सफलता पूर्वक स्थानांतरित करने में भी सफलता प्राप्त की है । इस अपूर्व बिंबविधान के थोड़े से उदाहरण ये हैं :-

(क) `अरथ रूपी कमलहु पर मन रूपी भंवरा होवै` (परम) अर्थ के प्रति उत्कट अभिलाषा को `कमल भ्रमर` के बिंब से सुन्दर अभिव्यक्ति दी गई है । `कमल` और `भ्रमर` भारतीय परिवेश से लिए गए हैं ।

(ख) `ऐसे मानुष हैं - - जो कागत की निआई हैं`। `कोरे कागज़` का बिंब मनुष्य के संदर्भ में मौलिक है ।

(ग) `दइआ-दान रूपी अवखध ( औषधि) जो कृपणता रूपी रोग कउं नास करणे हारे हैं` आयुर्वेद के क्षेत्र से अल-गज़ाली ने अनेक बिंब ग्रहण किए हैं । इन बिंबों में रोग और औषध के ये अमूर्त बिंब महत्वपूर्ण हैं ।

(घ) `बैराग ते रहित पंडितहु कउं गरधभ की निआई कहा है । - - - जदप (यद्यपि) पुसतकहु का भार अपणी पीठ पर लिए फिरता है पर उसके तातपरज ते अचेत है` ।

घोर मूर्खता को रूपायित करने वाला यह बिंबविधान बहुत सार्थक है ।

(ङ•) 'जगिआसी ने संकल्प रूपी कंटकहु ते रिदै रूपी धरती कउं सुध कीआ। नाम-रूपी बीज कउं इस विखे बीजिआ' ।

सुरती के स्तर का यह परम्परित रूपक विशुद्ध बिंब विधान की दृष्टि से बहुत सफल है ।

4. तार्किकता :- पारसभाग की भाषा पर प्राय: सर्वत्र अल-गज़ाली के तर्क प्रधान मस्तिष्क की छाप विद्यमान है । अल-गज़ाली ने इस्लामी-दर्शन विशेषत: तर्क शास्त्र ('इल्म-उल-मंतीक') के क्षेत्र में अप्रतिम ख्याति अर्जित की है । फलत: तर्क और प्रमाण की सहायता से उसने अपने कथ्य को अधिक से अधिक प्रामाणिक और संगत बनाया है । परिणाम स्वरूप पारसभाग की अधिकांश मान्यताओं से चाहे हम सहमत न हों नहीं । परन्तु इन मान्यताओं को जिन तर्कों के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, वे तर्क निश्चय ही अकाट्य कहे जा सकते हैं । इस तार्किकता के ये थोड़े से उदाहरण मननीय हैं :-

(क) साधक अपने मन को संबोधित करते हुए कहता है :-

'रे मन, तूं जो सरब पाप करमहु विखे आसकति रहता है । सो जब तूं भगवंत कउं अंतरिजामी नहीं जाणता तब तउ निरसंदेह तूं मनमुख है । अरु जब उस कउं अंतरिजामी जाणि करि बहुड़ि पापु कीआ चाहता है । तब महां ढीठु और निलजु हैं' ।

अर्थात् 'भगवंत' पर आस्था और पापकर्म ये दोनों साथ साथ नहीं चल सकते । तर्क की महीन धार पर यह तथ्य उभार कर प्रस्तुत किया गया है ।

(ख) मधपान और व्यभिचार के आपेक्षिक तारतम्य को इस तार्किक प्रणाली से स्पष्ट किया गया है :-

'जैसे कोई दुराचार का तिआगु करे । अरु मदि (मध) का तिआगु न करि सके । तब उस कउं तिआगी किउं करि कहीऐ' ।

`पर मेरे कि विणे ख्वा उत्तर इस प्रकार मावता है। जो जिसने दुराचार कउं मद के पीवणे ते अधिक बुरा जाणिला है अथवा ऐसे समझिला है जो मदपान करिके दुराचार भी होता है। तां ते मद का पीवणा ही अधिक निंद है। तो जिसने अधिक बुराई का तिआगु कीआ। तब उसका तिआगु परवांनु होता है।

इसी मान्यता की पुष्टि प्रकारांतर से इस प्रकार की गई है :-

`पर इउं भी परवांन नहीं। जा जब एक पाप करम का तिआगु न करि सके। परु जिसका तिआगु न करे`।

(ग) वैराग्य भाव का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि `भाखआ` के प्रत्येक पदार्थ के प्रति रागहीनता वैराग्य है। इतना ही नहीं `राग` तो वैराग्य के प्रति भी अवांछनीय है :-

`तां ते चाहिए जो वैराग ते भी वैरागी होवे। अरथु इहु जो अपणे वैराग कउं वसेखा जाणि करि अपमांनी न होवै`। तर्क की निर्ममता इस अवतरण में द्रष्टव्य है।

(घ) आशा दो प्रकार की बताई गई है, शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध-आशा सत्प्रयत्न मूलक है और `भगवंत` की आशा इसका संबल है। इसके विपरीत अशुद्ध आशा को तर्क और काव्य का यह संदर्भ दिया गया है :-

`जब धरती कोमल ही न करे। अथवा बीजु ही भला न होवै। अथवा समे अनुसार जल ही न देवै। अरु खेती के बिरध ( वृद्ध: बढना) होणे की आसा राखै। तब इसका नाम केवल मूरखता है। अरु कछु है`।

(ङ.) धर्म-पुस्तकों का यंत्रवत्-बिना अर्थ समझे-पाठ करना अधिक लाभ-दायक नहीं है। इस मान्यता का समर्थन इस तर्क प्रणाली से किया गया है :-

`जैसे कोई पुरष ऐसे जाणे जो `अगनि` का अरथ `आइड़ा` (`अकार`) अरु `गगा` (`ग`) अरु `नना` (`न`) है। अरु ऐसे न जाणे जो अगनि तउ

कागति कउं जलावणो हारा है। जब पाठ करणेहारा ककहु के अरथ कउं न जाणै। तब उस कउं पाठ का गुण कहु अल्प ही होता है।

अतिवादी प्रवृत्तियों से बचते हुए इस प्रकार की तर्क संगत मान्यताएं पारसभाग की भाषा में कहीं भी पाई जा सकती हैं।

(5) सहज स्निग्धता :- पारसभाग की भाषा का सहजस्निग्ध रूप पाठक को प्राय: अभिभूत कर लेता है। तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग एवं यत्र तत्र सरल तत्सम शब्दावलि का रुचिर विन्यास पारसभाग की भाषा को एक अभिराम सहजता प्रदान करता है।

संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशों से ऐतिहासिक दाय के रूप में प्राप्त शब्द संपदा तो अपने ऐतिहासिक विकास के अनुरूप तद्भव रूप में रखी ही गई है, अरबी फारसी से - कभी कभी संभवत: विवशतापूर्वक ली गई - - शब्दावलि भी पारसभाग में अपनी भाषा की प्रकृति के अनुरूप तद्भव रूप में ही ढली मिलती है। 'सबरु' (सब्र), 'सुकरु' (शुक्र), 'हवालु' (अह्वाल), 'सोरु' ('शोरु') जैसे शब्द ध्वनि और वर्तनी से लेकर 'उकार बहुलत्व' तक पारसभाग की भाषा के अपने सांचे में ढले शब्द हैं।

यह सहज शब्दावलि अपने अंतराल में मानवीय भावनाओं की उदात्त स्निग्धता संजोए हुए है। धर्म-मत-सम्प्रदाय के प्रपंच से ऊपर उठ कर विश्व-मानवता के प्रति समर्पित इस कृति (पारसभाग) की स्निग्धता किसी बिना तराशे रत्न की आभा के समान अपने शांत-स्निग्ध प्रकाश से हमारे साहित्य का मानों अभिषेक कर रही है।

(ख) पारसभाग : भाषा शास्त्रीय सर्वेक्षण

भाषाई परिपार्श्व :- अनुमानत: पारसभाग की रचना 19वीं शती के प्रारम्भिक दशकों में हुई। फलत: यह मान लेना युक्तिसंगत होगा कि पारसभाग की भाषा पर अपनी पूर्ववर्ती कृतियों का प्रभाव अवश्य रहा है। इन कृतियों

में उल्लेखनीय कृतियां (उपलब्धियां) ये हैं :-

1. 'मीणा' साहित्य : । मिहरिवानु कृत 'पोथी सचुखंडु' (16वीं शती), हरि जी कृत 'गोसटि गुरु मिहरिवानु (17वीं शती), प्रभृति उत्कृष्ट गद्य-कृतियां पारसभाग के रचयिता के सामने संभवत: आदर्श कृतियां रही हैं ।

2. योगवासिष्ठ भाषा :- पंजाब की यह महिमामयी कृति पारसभाग के लेखक (अनुवादक) के सामने आदर्श कृति रही होगी । न केवल इसलिए कि योग वासिष्ठ पारसभाग से पूर्ववर्ती है बल्कि इसलिए भी कि यह कृति सेवापंथी केन्द्रों में एक 'धर्म-पुस्तक' के रूप में प्रतिष्ठित थी ।

3. पंचासत उपनिषद भाषा : (रचनाकाल 1719 ई०) :- दाराशिकुह कृत उपनिषदों के फारसी अनुवाद का यह 'हिन्दवी' अनुवाद भी संभवत: पारसभाग के रचयिता को प्रेरणा प्रदान करता रहा है । फारसी से अनूदित होना इन दोनों रचनाओं की समानधर्मिता तो है ही, साथ ही अध्यात्म चर्चा के बिन्दु पर भी इन दोनों कृतियों में एक व्यापक एवं गहरी समानता विद्यमान है ।

इस प्रकार की अनेक साहित्यिक कृतियां पारसभाग से पूर्व पंजाब में लिखी जा चुकी थीं और इनकी भाषा, इनकी शैली तथा इनका प्रतिपाद्य पारसभाग के लेखक (अनुवादक) के सामने एक प्रेरणाप्रद आदर्श रहा होगा । पारसभाग की भाषा तथा शैली अपनी पूर्ववर्ती कृतियों के पूर्णत: अनुरूप हैं और इसी परम्परा के विशिष्ट संदर्भ में पारसभाग की भाषा का अध्ययन किया जा सकता है ।

भाषा स्तर :- पारसभाग से उपलब्ध 'पाठ' का पारायण करने से पता चलता है कि पारसभाग में भाषा के तीन स्तर विद्यमान हैं । इन तीनों स्तरों पर वर्तनी, शब्द-रूप तथा वाक्य-रचना का प्रकार भेद इस प्रकार लक्षित किया जा सकता है :-

1. मूल रचयिता का भाषा-स्तर :- पारसभाग की भाषा पर परम्परा प्राप्त भाषाई सामग्री का प्रभाव व्यापक और गंभीर होना ही चाहिए। फलतः पारसभाग की भाषा का मूल रूप अपभ्रंश (अवहट्ट) के ध्वनि-रूपों तथा रूप के प्राचीन प्रकारों से अभिन्न होना चाहिए।

परन्तु भाषा तथा ध्वनि-संबंधी यह प्राचीन सम्पत्ति उत्तरवर्ती लिपिकों के लिए दुर्बोध बनती चली गई और इसका स्थान अपेक्षाकृत नए ध्वनि रूप तथा 'रूप' के नवीन प्रकार लेते चले गए। पारसभाग की प्रायः प्रत्येक प्रतिलिपि के साथ मूल 'पाठ' का आधुनिकीकरण इस प्रकार होता रहा। फिर भी यत्र तत्र शब्द-रूपों के प्राचीन प्रयोग तथा प्राचीन ध्वनि रूप पारसभाग की भाषा में यथाव‍् मिल जाते हैं। पारसभाग की भाषा का यह मूल स्तर कहा जा सकता है।

2. लिपिकों का भाषा-स्तर :- पंजाब में पारसभाग को एक लोकप्रिय कृति होने का सम्मान मिला। फलस्वरूप अनेक लिपिकों ने इसकी अनेक प्रतिलिपियां तैयार कीं।

परन्तु मूल रचना की प्रतिलिपि तैयार करते समय 'लिपिकों' की असावधानी तथा कई बार बेसमझी से पाठ का रूप विकृत होता चला गया। प्राचीन ध्वनि-रूपों तथा प्राचीन शब्द-रूपों, विभक्तियों तथा प्रत्ययों के स्थान पर नवीन 'रूप' लिपिक स्थान स्थान पर रखते रहे। प्राचीन तथा नवीन सामग्री का यह घाल मेल इन रचनाओं में कहीं भी देखा जा सकता है।

पारसभाग के लिपिकों द्वारा 'संशोधित' भाषा का यह दूसरा स्तर कहा जा सकता है।

3. सम्पादकों(प्रकाशकों) का भाषा स्तर :- पारसभाग की 'लीथो' प्रति 1870 ई॰ में प्रकाशित हुई। संभवतः पारसभाग की यह प्राचीनतम प्रकाशित प्रति है। तब से लेकर आज तक (विगत 98 वर्षों में) पारसभाग के कितने ही

संस्करण प्रकाशित हुए ।

परन्तु पारसभाग के प्रत्येक संपादक या प्रकाशक ने पारसभाग की भाषा को ध्वनि तथा शब्द-रूपों के स्तर पर अनधिकृत रूप से विकृत किया । पाठ-विकृति के साथ साथ मूल पाठ में अप्रत्याशित रूप से अनेक प्रक्षिप्त अंश भी इन `महापुरुषों` ने ठूंस दिए ।

इस आधुनिकीकरण के अतिरिक्त पारसभाग के प्राचीन `भाषा` रूप पर आधुनिक पंजाबी का मुलम्मा चढ़ाने का भी प्रयास पारसभाग के पंजाबी संपादकों ने किया है । पारसभाग के प्राय: सभी पंजाबी संस्कर्ता-संपादक इस पूर्वाग्रह के साथ चले हैं कि पारसभाग पंजाबी की रचना है । इस पूर्वाग्रह के कारण पारसभाग का `पाठ` शतधा क्षत-विक्षत हुआ है ।

उधर पारसभाग के एक मात्र नागरी संस्करण में तो न केवल पारसभाग की भाषा को ही आधुनिक युग की भाषा का बेढंगा चोला पहना दिया गया है, बल्कि पारसभाग की मौलिक मान्यताओं के साथ भी निर्मम खिलवाड़ किया गया है । `भगवंत` के स्थान पर `रघुनाथ जी` आदि `वैष्णव` शब्द `अ-वैष्णव` दृष्टि से रख दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त पारसभाग के पूरे अ-सांप्रदायिक वातावरण को साम्प्रदायिक (`अयोध्यावासी वैष्णव`) वर्ग का रूप भी अप्रत्याशित ढंग से दिया गया है । पारसभाग की भाषा के सही `रूप` की समस्या पारसभाग के इन संस्करणों के साथ विकट से विकटतर होती गई है ।

फलत: संपादकों और प्रकाशकों के सम्मिलित प्रयासों से `संशोधित` पारसभाग की भाषा का यह तीसरा स्तर कहा जा सकता है ।

इस प्रकार विगत दो-अढ़ाई सौ वर्षों से पारसभाग की भाषा का रूप लगातार `संशोधित` तथा पारसभाग का पाठ अनवरत रूप से `परिवर्तित -

परिवर्धित होता आ रहा है।

फलतः पारसभाग की भाषा के संबंध में अन्तिम निर्णय उस समय तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि पारसभाग का 'पाठ' विभिन्न प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद निश्चित न किया जा सके।

पारसभाग का जो 'पाठ' हमारी आधार प्रति (हस्तलिखित) में उपलब्ध है, उस 'पाठ' को पारसभाग की पूर्ववर्ती कृतियों की भाषा के विशिष्ट संदर्भ में रख कर देखने से ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

एक

(क) ध्वनि-परिवर्तन : (स्वर)

अ

इ:	मिरजादा (मिरजादा) प्रिथम(प्रथम) प्रसिंनु-परसिंनु (प्रसन्न)। तुलना: पंडिप (पोथी सकुण्डु) उचिम (पदमावत: 146।6)
अं:	अंनुपात (अनुपात)
ह:	'ह श्रुति', हब्बा (अब्बा), हट्ट (अट्ट। 'हाट')

आ

अ:	असवरजु (आसवरज) असंका (अशंका), अगीरवादु, अनंदु, अरंभु, समग्री। मलूम (मालूम) तुलना: अंब (आम्र) तंब (ताम्र), धन्न (धन्या): प्राकृत-अपभ्रंश।
आई:	रजाई (रज़ा) सजाई (सज़ा), अंबीआई।
इआ:	निंदिआ (निंदा), आगिआ(आज्ञा), भिखिआ (भिक्षा)

इकार: अंगिआर (अंगार) तुलना: विंगिआड़ा ('कंगारा')

इ
-

अ: भगत (भक्ति), संगत (संगति) जुगत (युक्ति)
भभूत ('विभूति' : अर्थपरिवर्तन: राख)।
'इ' प्राय: अनुच्चरित तथा अनुल्लिखित ।

इं: निंद्रा (निद्रा: 'निंदर' पंजाबी)

ई: वीवाहु (विवाह) वीचारु (विचार) जूनी
(योनि) जती यति)

ए: भेमुण (विमुख), हेत (हित), नेमु (नियम)
तुलना: निमेक (निमिष: पोथी सचुखंडु)

उ
-

अ: ममोण (मुकुर), साध(साधु), गुर (गुरु),
रेण (रेणु 'रेणका': रेणुका)
'उ' प्राय: अनुच्चरित एवं अनुल्लिखित ।

इ: बाइ (वायु तुलना: परिसुधम (पुरुषोत्तम),
पुरिसाइअ(पुरुषायित): प्राकृत)

ई: रेणी (रेणु)

ओ: ममोण (मुकुर) विरल प्रयोग ।

ऊ
--

अउ: नउतन (नूतन)

ओ: तंबोल (ताम्बूल)। तुलना: तमोली ।

ए
--

इ: मिहर (मेहर)

ऐ
-

इ: पइसा (पैसा, वइस (वैश्य) वइरी (वैरी)

ई: ईस्वरज (ऐश्वर्य), सदीव (सदैव)

औ

उ: विउग (वियोग । 'विओग' रूपांतर),

ऊ? जूनी (योनि)

औ

अउ: सउच (शौच), दउड (दौड़), मउत (मौत),सउदा (सौदा), चउड़े सउंप

उ: कुपीन (कौपीन)

ऋ

इ: त्रिसना (तृष्णा)

इउ: घिउ(घृत)

इर परकिरति (प्रकृति) किरसाणु, (कृषक) मिरति (मृत्यु), म्रित, निरति (नृत्य)

ई: ~~संगी~~ सीगारु (शृंगार)

र: अम्रत (अमृत)

रि: रितु, रुत, (ऋतु)

अः

रह: सुरह (स्वतः)

ह: अंतहकरण

(ख) ध्वनि-परिवर्तन (व्यंजन)

क

ख:(ख): मोखा(मोक्ष), मयोख (मुकुट) वाखु (वक्र) मुलख (मुल्क) मिलख (मिल्क: जायदाद)

ग: सोग (शोक) सगल (सकल) संगरांद (संक्रान्ति) प्रगट (प्रकट) जुगत (युक्ति)

ख (ध्वनि चिन्ह `ष`)

	क:	सुक (सुक्खा) तुलना: तकत(तख्त) कीर्तिलता : 4। 110
ग	क:	पैकंबर (पैगंबर) तुलना: `पीर पकंबर`: पंजाबी
ज		
	द:	हादनु (हाजनु) नदर (नजर) गुदारा (गुजारह: तुलसी)
	च:	मुंच (मुज : मुंज) तुलना: कुंवर (कुंजर)
ट		
	ठ:	ऊठ (ऊंट)
	ड:	जड़िआ (जटित) कुड़म (कुटुम्ब) तुलना: कडि(कटि) प्राकृत-अपभ्रंश ।
ठ		
	ढ:	मढ़ी (मठ + ई)
ड़		
	र:	लरता, परते (पड़ते) विरल प्रयोग । ब्रज-प्रभाव जान पड़ता है ।
	ल(ल्ह)	चाल्है (चढ़े) तुलना: चाल्हीते (चढ़े हुए: पंजाबी) सोल्हां (षोडश)। `लिक्वड` उच्चारण।
ढ		
	ड:	हाड़ (आषाढ)
ण		
	न:	निवारनु, पूरनु । पंजाबी में `णत्व-विधि के लिए देखिए : `सिलेबिक स्ट्रक्चर आफ हिन्दी एंड पंजाबी`: डा० देवीदत्त शर्मा (7। 3)
त		
	थ:	महाभारथ, चिथा (चिता)

त: संगरांद (संक्रान्ति), निचिंदु (निश्चिंत)।

थ

त: असत (अस्त: अस्थि) बानपरसत। तुलना: सपत (शपथ: पदमावत)

ठ: गंठि (ग्रंथि) `गंढ`: पंजाबी

द

त: पातिसाहि। तुलना: मदति (मदद: पदमावत)

ड: डंभी (दंभी) डेरा (देहरा, देहुरा, देवगृह)

ज: खिजमत (ख़िदमत)

ध

द: अउषाद

झ: बूझ (`बुध्`) बांझ (वन्ध्या)

न

ण: गुण, हांण (हानि) पराण, थाणी, लाण आदि शब्दों में `णत्व बहुलता` लक्षणीय है।

ब

प: पातिसाहि। कीर्तिलता, पुरातन प्रबंध संग्रह आदि ग्रंथों अनेकश: प्रयुक्त।`पातिसाहि` (आइन-ए-अकबरी), `पादशाह` (तुजुक-ए-जहांगीरी)

भ

प: गरधप (गर्दभ)

म

व: नांव (नाउ : नाम) परवांन (प्रमाण)

म्व: दम्वड़ी। `दुलंत ध्वनि`। तुलना: भंवर, नांव, गांव।

य

इ: निति (नित्य) नाराइण, इह (यह) बिभचारी, बिवहार।

इअ: बिखिआ (बिषय) कलिआण (कल्याण) बिआपी (ब्यापी) नइआ (नया) माइआ (माया) कृपा: दइआ (दया)। फाइदा।

ऐ: मै, सैन (शयन) निरभै, भैआनक, बिखै (विषय) समै (समय)

ज: बिपरजै (विपर्यय) गुह्ज (गुह्य) जुगी, तातपरज।

लुप: सुंन (शून्य), पुंन (पुण्य)

व

उ: तुवा (त्वचा) सुवेत (श्वेत) सुभाउ (स्वभाव), सुरग (स्वर्ग) डंडउत (दंडवत) पउण (पवन)

भ: भेख (वेश)

श

स: सोभा (शोभा), सुधि (शुद्ध), सकु (शक), इस्कु (इश्क), पातिसाह।

ह: निहचिंत (निश्चित), निहसंक (निशंक)

स

र: निरसंदेह

क्ष

ख: खत्री (क्षत्री), खीण, खिउ (क्षय) प्रतख (प्रत्यक्ष) सूखम (सूक्ष्म) लखण (लक्षण) तीखण (तीक्ष्ण)

छ: छिमा (क्षमा) लछण, छुधा (क्षुधा) अपेछा (अपेक्षा)

ज्ञ

ग: गिआन (ज्ञान) अगिआ (अज्ञा) आगिआ (आज्ञा)

(ग) संयुक्त (द्वित्त) ध्वनि: परिवर्तन । 'स्वर भक्ति' तथा 'स्वरागम' की सहायता से संयुक्त (द्वित्त) ध्वनि गुच्छों का सरलीकरण प्राय: हुआ है । गुरुमुखी लिपि की सीमाएं भी इसके लिए उत्तरदायी मानी जा सकती हैं ।

क्त

क्त: संसकति (संसक्ति) आसकति (आसक्ति)

गत: संजुगति (संयुक्त) मौगता (मौक्ता) जुगतु (युक्त)

क्य

किअ: किआ (क्या)

ख्य

खिअ: विआखिआ(व्याख्या) संखिआ (संख्या)

त्म

तम: आतमा(आत्मा) अधिआतम (अध्यात्म)

त्य

इ: तिआग, किरति (कृत्य)

थ्य

इ: पथि (पथ्य)

द्ध

ध्ध: सुध्ध (शुद्ध) उध्धार(उद्धार) बुध्धी (बुद्धि)

द्य

अ: उद्दमु,

इ: उदित

इअ: विदिआ (विद्या)

द्व

दु(अ): दुतीआ (द्वितीया), दुआदसी

ध्य

ह: मधिध्यम (मध्यम)

हब: धिआन, संधिआ, मधिआह्न

प्त

त: परापति (प्राप्ति) तपत(तप्त)

(घ) आगम (स्वर) : इसत्री, आनेह(स्नेह) इसनानु (स्नान) उसतत, उसतुति (स्तुति)

आगम: (व्यंजन) रहस(रस), सहकाम(सकाम) प्राप।

लोप: (स्वर)। के (अके) साढ़ (आषाढ़)

लोप(व्यंजन)। रिदा, रिदै (हृदय)

(ङ) अकारण: अनुनासिकता। दुरलंभ (दुर्लभ) सरबंस (सर्वस्व) सांतिक(सात्विक)

नासिक्य वर्ण : अनुनासिकता: । महां (महान) कांम, भिंन, चेतंन, सेंना, प्रांण, प्रांनि परवांन ।

दो

(क) 'रूप' विवेचन । पारसभाग में भाषा का रूप प्राय: निर्विभक्तिक है। विभक्तियों के स्थान पर विभिन्न कारकों में परसर्गों का प्रयोग हुआ है। इन परसर्गों में प्रमुख ये है :-

1, कर्ता : शून्य रूप

2, कर्म : सम्प्रदान कउं

3, करण : 'ने' । विरल प्रयोग ।'महां पुरुष कहा', किसी नहीं कही, आदि प्रयोग पारसभाग की प्रकृति के अनुकूल हैं। प्राय: कर्ता कारक के 'उकार' से ही करण की भी सूचना दी गई है।

4. अपादान: ते । 'से' का पूर्ववर्ती रूप । सिउं, सों, सौं ।

5. सम्बन्ध: का, के की ।

6. अधिकरण: विषै, पारि, । 'इ' के साथ बने कुछ अधिकरण रूप भी मिलते हैं । 'अंतरि, भीतर (में)

उकार: बहुलत्व । इन परसर्गों के अतिरिक्त पारसभाग की भाषा में 'उकार बहुलत्व' भी लक्षणीय है । कर्ता कारक एकवचन के रूप 'उ' के साथ बनाए गए हैं । परवाणु, सुगमु, जोगु, बहु, कुरूप, जैसी 'उकार बहुलता' पारसभाग में कहीं भी देखी जा सकती है।

(ख) बहुवचन: रूप । संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप दो प्रकार से बनाए गए हैं । एक प्रकार अपभ्रंश-व्याकरण से संबंधित है तो दूसरा प्रकार पंजाबी की प्रकृति के अनुकूल है ।

अपभ्रंश परम्परा में (1) हु, (2) अहु (3) ह से बहुवचन रूप बनाए गए हैं । (हु) लोकहु, सभनहु, गुनावहु, (अहु) अंगुला अहु, इंद्री अहु, अंगुलि अहु (अन्यों) देवति अहु, पाषंडी अहु ।(ह) प्रकारि, तीरथि, जैसे प्रयोग इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं ।

पंजाबी-परम्परा से (1) 'आं' (2) 'ईआं' (3)'ए' ले कर बहुवचन रूप बनाए गए हैं (आं) राता, उनां । (ईआं) इंद्रीआं, पिआरीआं (ए)बहुते, धनवंते ।

तीन

सर्वनाम । पारसभाग में प्रयुक्त प्रमुख सर्वनाम ये हैं :-

1. पुरुष वाचक : हउं, हौं, मुझ (उत्तम पुरुष) तूं, तुम, तुझ (मध्यम पुरुष) सो, तिस (अन्य पुरुष)

2. निश्चय वाचक: इस, इन, एह, इह, उन, उनि, तिस तिन ।

3. सम्बन्ध वाचक : जो, सो ।

4. प्रश्न वाचक: किआ, कउणु, कउन (कवण)

5. अनिश्चय वाचक: कोई, केई, कितने, किछु ।

6. निज वाचक : अपणा, आपणा ।

चार (विशेषण)

(क) - मान, वान, वंत वंद । त्रासमान, अनंदमानु, दिसटिमानु, सुभाइमान, मैमांन । मेवांनु बुधिवानु, भागवान । विदिआवंतु, दरदवंदु ।

(ख) हार, आर, वाल । पूजनहार, संवणेहारे, समझणेहारिअहु, पछानणेहारी । सचिआर (सत्य + कार: सत्य आचरण वाला) देवणवालिआं ।

(ग) महां । महांपापित, महांअउधूत ।

(घ) वि: वे । विअंतु (वे अंत) वेप्रीत ।

पांच(भाव वाचक)

(क) ता । भागहीणता, प्रबलता, सचता (सत्य + ता) अमधुरता, ऊचता ।

तु । (< 'त्व') दूसरतु (द्वैत)

आई । भलाई (भलिआई) सीतलाई, सुंदरताई समथाई (सामर्थ्य) ।

तण । सूरमतण । 'कडतण' (पंजाबी: कटुता) 'त्वन्' (वैदिक) से सम्बद्ध।

कृत(क्रिया)

(क) कृदन्त : प्राकृत-अपभ्रंश युग से ही क्रिया पदों के स्थान पर कृदन्त प्रत्यय प्रयुक्त होने लगे थे। इन प्रत्ययों में 'क्त' से विकसित 'अ' और आ तथा 'आ' के स्त्रीलिंगी 'ई' रूप प्रमुख हैं।

आ,ई,ए । आइआ, (आगत) पछाणिआ, कीआ । हुई, हुए(बहुवचन)

ना, णा: । फाड़ना, पालना। होवणा, कहणा, पछानणा ।

(ख) भविष्यत्: उंगा, ऐगा । उत्तम पुरुष: जाऊंगा, जाऊंगा, आवाउंगा, होवउंगा, सकउंगा । प्रथम पुरुष : जावेगा, करेगा, पछाणिगा । जावैगी, होवैगी ।

(ग) विधि : संभावना : 'इ, हि, हु' 'उ' युक्त रूप । पछाणहि, होवहि, करहि, करु, करहु, जाण ।

(घ) कर्म वाची : ई : आव । बाहीता, सकीता, पावीता भुंचावता ।

(ङ) संयुक्त क्रियाएं । पछाणिआ चाहता है। देखा सकीता है।

फारसी: प्रभाव । पारसभाग की भाषा का एक उल्लेखनीय विशेषता है तद्भव प्रधानता । संस्कृत तथा संस्कृत-मूलक शब्दावलि भी प्रायः तद्भव रूप में रखी गई है। इन शब्दों में यही प्रवृत्ति विद्यमान है :- वसीकार (वशीकरण), रखा (रस), कुटवाल (कोटवाल),नतकार (निषेध, नकारना), आरजा (आयुबल), त्रिसटांतमात्र, अवकास, अरपि ।

इसी प्रकार से अव्यय शब्द भी इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं :- अवसमेव, बहुडि, अरु , तउ, तउ, तां (पंजाबी। 'तो') अके, के, इतर (दूसरा) ।'सुखेन'(सुखपूर्वक) 'वारावार' आदि कुछ अव्यय इस प्रवृत्ति के अपवाद कहे जा सकते हैं।

तद्भव शब्दों की छटा पारसभाग में कहीं भी देखी जा सकती है। कुछ उदाहरण :- करणीव (करणीय) सदीव (सदैव) अवसमेव, कांध (स्कन्ध।कंधा) उदै अधमोतक, अनंधा, आंख, इकव, अमका(अमुक), दीरघ, विसमरन, अकुल।

`जंगाल` (जंग, मोर्चा) `पिंनू` (किन्नू पगाड़ी: कन्दुक) तथा `डिगणा` (गिरना) आदि पंजाबी शब्दों के सार्थक प्रयोग से पारसभाग की भाषा आंचलिक आभा से भी दीप्तिमान हुई है।

गुरुमुखी लिपि की अपनी सीमाएं भी इस तद्भव प्रधानता के लिए उत्तरदायी हैं। संयुक्त-द्वित ध्वनियों को अंकित करने की कोई समुचित एवं सर्व सम्मत व्यवस्था गुरुमुखी लिपि में नहीं है। इसलिए विशुद्ध तत्सम शब्द भी तद्भव-रूप में ही पारसभाग में प्रयुक्त मिलता है।

पारसभाग चूंकि कीमिया-ए-सआदत का भाषा-रूपांतर है, इसलिए इसकी भाषा पर फारसी का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। इस प्रभाव को कुछ विशिष्ट शब्दों के प्रयोग तथा वाक्य-विन्यास की एक विशिष्ट (फारसी नुमा) पद्धति में देखा जा सकता है।

<u>अरबी।फारसी : शब्दावलि</u>। अरबी।फारसी के कुछ शब्द अपनी प्रकृति खो कर तथा पारसभाग की भाषाई प्रकृति और प्रवृत्ति के साथ घुलमिल कर प्रयुक्त हुए हैं :- `ख्यालु` (`ख्याल` का बहुवचन `अख्याल` और `अख्याल` का संक्षिप्त रूप ख्याल। तुलना: `तिनको कौन ख्याल` कबीर) सोरु (शोर), सकरु (शुक्र), सुकरु (शुक्र) आदि शब्द इसी कोटि के हैं।

इसके अतिरिक्त, `कुरबान` को `कुरबांन` और `अमानत` को `अमांणि` तथा `मुबारिक` को `मुबारखि` रूप दिया गया है। तोशह (सफर-खर्च) को `तोसा` यह रूप इसी परम्परा में मिला है।

फ़ारसीनुमा वाक्य : । पारसभाग की भाषा में वाक्य-विन्यास का सरल रूप कहीं भी देखा जा सकता है। एक क्रिया पर आश्रित छोटे छोटे वाक्य पारसभाग की वाक्य-योजना को सुन्दर, सुघड़ और सुबोध बनाते हैं। उदाहरण के लिए इन वाक्यों की योजना दर्शनीय है :-

1. 'इह सब ही मानुष मूढ़ता की नींद विषै सोए हुए हैं'।
2. 'इस धन-रूपी घाटी ते उतरना कठन है'।
3. 'जब उदर पुस्ट होता है। तब कांम की अभिलाषा उत्पति होती है। अरु कांम की अभिलाषा तब पूरन होती है। जब धन का संग्रह होता है'।

यह वाक्य-योजना पारसभाग की अपनी वाक्य-योजना कही जा सकती है। इन कर्तृवाची प्रयोगों की अपेक्षा ये कर्मवाची प्रयोग जटिल कहे जा सकते हैं :-

1. 'यह वारता भी प्रतीत-आवती है'।
2. 'कुतां भी बहुत बाहीतीआं है'।
3. 'पाइ कछु नहीं सकीती'।

इस वाक्य-योजना के विपरीत फ़ारसीनुमा वाक्य-विन्यास के ये उदाहरण बहुत रोचक है :-

1. 'रिदे के सुभावहु की बुराई करके कहा है कुरूप उस कउं'।
2. 'भजन माई का मेरे नेत्रहु कीआं पुतलीआं है'।
3. 'हे दुसमन आपणीआं' (हे अपनी जान की दुश्मन स्त्रियो।)
4. 'विशेषता सबर की इसी वास्ते है'।
5. हे दुरम पुत्र हमन के' (हे हमन के पुत्र दुरम)।
6. 'अब प्रगट करणा इसका जो सिवाय सरब मानुषहु कउं सरब समै विषै परवानु है'।
7. 'अब प्रगट करणी निषेध अहंकार की अरु प्रतिध चिहन दिखावणी उसके'।

इस विजातीय प्रवृत्ति के कारण पारसभाग के कुछ जटिल वाक्य बहुत गड़बड़ा गए हैं :-

1. 'उससे सुमति मती अरु बीचार अरु संकल्प शुभ अरु शुभ उत्तम इह गुणा उत्पति होते हैं'

2. 'अनुभव जो आगे कहि है' ।

(लिंग- व्यत्यय)

3. 'आंसु जो चलणे लागतीआं हैं' ।

(लिंग -वचन-व्यत्यय)

इस नगण्य से विजातीय स्फुट प्रभाव के अतिरिक्त पारसभाग की भाषा का सामान्य रूप पंजाब के महान् साहित्य की परम्परा के अनुरूप कहा जा सकता है ।

cccccc
ccc
c

उपसंहार

पारसभाग संबंधी इस अध्ययन का समापन करते हुए ये विचार-बिन्दु उभरते हैं :-

1. सेवापंथ: इतिहास: साहित्य

उत्तरी भारत की सन्त परम्परा में `सेवापंथ` लगभग एक अपरिचित नाम है। इस पंथ का यथासंभव ऐतिहासिक विवरण तथा इसके विपुल साहित्य का संक्षिप्त सा परिचय इस शोध-प्रबन्ध में पहली बार ही प्रस्तुत किया गया है। `अज्ञात-ज्ञापन` की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध की यह एक उपलब्धि कही जा सकती है।

2. अनूदित रचनाएं :

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में फारसी से `भाषा` में अनूदित तथा आज तक अज्ञात कितनी ही कृतियों का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण उन अनेक साहित्यिक कृतियों के संदर्भ में किया गया है जिन कृतियों की `नियति` अभी तक हस्त-लिखित ग्रंथागारों की कारा में ही बंद है और जिनके `आवेष्टन` तक अभी खुलने की प्रतीक्षा में हैं।

इन कृतियों - विशेषतः पारसभाग जैसी महनीय विद्वत्कृतियों - के प्रकाश में आने से हिन्दी भाषा और उसके साहित्य को एक नया आयाम मिल सकेगा। लगभग चार सौ वर्षों से पंजाब में प्रचलित एक समृद्ध साहित्यिक परम्परा से हिन्दी के इतिहास को जोड़ने का प्रयास इस शोध प्रबन्ध में किया गया है।

3. इस्लामी चिन्तन :

हिन्दी में इस्लामी चिन्तन और इस्लामी साधना-चर्या का विवरण

प्राय: उपलब्ध नहीं है। इस अभाव की यथासंभव पूर्ति इस शोध-प्रबन्ध की एक 'आनुषांगिक' उपलब्धि कही जा सकती है।' अल-ग़ज़ाली' के व्यक्तित्व और उसके चिन्तन का संधान करते करते जो कुछ इस्लामी सामग्री विभिन्न प्रामाणिक स्रोतों से जुटाई जा सकी वह पर्याप्त तटस्थता तथा उदारता के साथ यथास्थान संजोई गई है।

इसी संदर्भ में प्रसंगत 'सूफी' विचारधारा के उद्भव और विकास पर भी नए सिरे से विचार किया गया है।

4, अल-ग़ज़ाली :

अल-ग़ज़ाली के चिन्तन-विशेषत: उसके बहु-आयामीय व्यक्तित्व-की खोज इस शोध प्रबन्ध का उल्लेखनीय उपलब्धि है। 'सुन्नी' विचारधारा के इस पुरातन पंथी विचारक ने इस्लाम के सीमित दृष्टिकोण को भरसक उदार बनाने का प्रयास किया। दर्शन के क्षेत्र में अपनी अद्भुत सूझ बूझ, पैनी दृष्टि और सब से बढ़ कर अनुपम तार्किकता के सहारे अल-ग़ज़ाली ने इस्लामी दर्शन को समस्त विश्व के दर्शन-शास्त्र के मानचित्र पर प्रतिष्ठित किया।

एक तपस्वी साधक के रूप में अल-ग़ज़ाली ने साधना के क्षेत्र में आध्यात्मिक और भौतिक स्तर पर जो कुछ अनुभव किया और जो कुछ भोगा उसका लेखा जोखा बड़ी ही सरल-सरस शैली तथा अत्यन्त विश्वसनीय वाणी में उसने प्रस्तुत किया है। फलत: पारसभाग की प्रत्येक पंक्ति पर अल-ग़ज़ाली के प्रामाणिक चिन्तन और उसकी कठोर तपश्चर्या की छाप विद्यमान है और इस 'छाप' का अनुसन्धान इस शोध-प्रबंध की एक विशेषता कही जा सकती है।

5, पारसभाग :

पारसभाग और उसके चिन्तन को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत करने के उद्देश्य से इस शोध कार्य का आयोजन किया गया था। ज्यों ज्यों

शोध कार्य आगे बढ़ता गया त्यों त्यों पारसभाग के चिन्तन की गहनता उसकी व्यापकता तथा सबसे बढ़ कर यथार्थ जीवन की कसौटी पर खरी उतरी हुई अल-ग़ज़ाली की वाणी जैसी विभूतियों का क्रमिक रूप से साक्षात्कार हुआ ।

पारसभाग का यह समृद्ध चिन्तन, अल-ग़ज़ाली के साधना के क्षणों का यह जीवंत चित्रण और सबसे बढ़ कर अल-ग़ज़ाली द्वारा भोगे हुए यथार्थ की कटुता को रूपायित करती हुई पारसभाग की अनुपम चित्रोपमता अविस्मरणीय है।

विशुद्ध भाषा की दृष्टि से पारसभाग हिन्दी, पंजाबी, राजस्थान आदि पश्चिमी भाषाओं की प्राचीन ध्वनि-सामग्री तथा इसी कोटि की दूसरी भाषाई सम्पत्ति का एक महत्वपूर्ण कोश है। इस कोश में संकलित और संचित शब्द-सम्पत्ति अपार संभावनाएं लिए - इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से- हिन्दी के राजद्वार पर पहली बार उपस्थित हुई है ।

(क) हस्तलिखित ग्रंथ (गुरमुखी लिपि)

कृति	रचयिता	विवरण
1- गिआन कसौटी	साधु सदानंद	आर्काइव्स: पटियाला
2- टीका विचार माला	साधु सदानंद	सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी अमृतसर
3- टीका विवेक सार	साधु सदानंद	सेवापंथी डेरा: अमृतसर
4- परची भाई अड्डणशी	भाई सहजराम	आर्काइव्स:पटियाला
5- परची मनसूर जी की	अज्ञात	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी: पटियाला
6- परचीआं भाई कन्हईआ	अज्ञात	सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी अमृतसर
7- परचीआं भाई सेवाराम	अज्ञात	आर्काइव्स, पटियाला
8- परची राइया जी	अज्ञात	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला
9- पारसभाग	अड्डणशाह	लाइब्रेरी पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (विभिन्न प्रतियां)
10-पोथी आसावरीआं	अज्ञात	आर्काइव्स, पटियाला
11-मैत्री उपनिषद भाषा	साधु सदानंद	सेंट्रल लाइब्रेरी: पटियाला
12- प्रेम प्रकाश	संतराम सिंह	भाई मोहन सिंह वैद तरनतारन(अमृतसर)
13- मसनवी भाषा	अज्ञात	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला
14-योग वाशिसट भाषा	अज्ञात	सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी: अमृतसर

कृति	रचयिता	विवरण
15- वक्त गोबिंद लोकां दे	अज्ञात	सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर
16- वक्त साई लोकां दे	अज्ञात	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी: पटियाला
17- वसिसट (चौपाइयों में)	साधु सदानंद	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी: पटियाला
18- विवेकज्ञान अरक टीका (जपु जी)	साधु सदानंद	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी: पटियाला ।
19- विविदषा निध	साधु सदानंद	मूल प्रति उपलब्ध नहीं हुई ।
20- सिद्धान्त रहस्य	साधु सदानंद	सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला
21- सुखनि फकीरां		सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी: पटियाला

(ख) पंजाबी पुस्तकें

कृति	रचयिता	विवरण
1- अड्डणशाह दीआं साखीआं	अज्ञात	संपादक: गोबिंद सिंह लांबा
2- आदिग्रंथ	विभिन्न 'गुरु' व्यक्ति	संस्करण: श्री गुरु द्वारा प्रबन्धक कमेटी: अमृतसर (गुरुमुखी: नागरी)

कृति	रचयिता	विवरण
3- पंजाबी अदब दी मुख्तसर तवारीख	डा० मोहन सिंह दीवान	(195[illegible])
4- पारसभाग	अड्डणशाह	संपादक: प्रो० प्रीतमसिंह (195[illegible])
5- पोथी सचुखंड	मिहरिवानु	संपादक: प्रो० कृपाल सिंह (196[illegible] ई०)
6- प्रसंग भाई घनैया	अज्ञात	पाँच भाग नं० 774-78 खालसा ट्रैक्ट सोसयटी अमृतसर
7- बचन महांपुरखां दे	अज्ञात	संपादक: गोबिंद सिंह लांबा प्रथम संस्करण (1973 ई०)
8- भारत-मत-दरपन	महंत गणेशा सिंह	अमृतसर(19[illegible]6 ई०)
9- गुरु शब्द रत्नाकर (महानकोश)	भाई कान्हसिंह	संस्करण: दूसरा। भाषा विभाग,पटियाला(1960ई०)
10- वड्डा सूचीपत्र	सरदार रणधीर सिंह	प्रकाशक: सिक्ख रैफरेन्स लाइब्रेरी (स्वर्ण मन्दिर) अमृतसर
11- संतरतनमाल	संत लाल चंद	तीसरा संस्करण (1963 ई०)
12- साखीआं अड्डण जी	अज्ञात	तीसरा संस्करण रावल पिंडी (संवत् 1969। 1912ई०)
13- सुखमनी	पंचम गुरु	आदिग्रंथ की एक मूर्धन्य वाणी
14- श्री गुरु पंथ प्रकाश	गिआनी गिआन सिंह	मतबा-ए-चश्मा-ए-नूर अमृतसर(188[illegible] ई०)

15- श्री चरण हरि विसथार	डा. कश्मीर सिंह	खालसा समाचार अमृतसर
16- हथ लिखतां दी सूची	-	भाषा विभाग, पटियाला

(ग) हिन्दी पुस्तकें

1. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन	डा. वीरेन्द्र श्रीवास्तव	दिल्ली (1965 ई.)
2. कीर्तिलता	विद्यापति	संपादक: डा. वासुदेव शरण अग्रवाल
3. कुरान में हिन्दी	चन्द्रबली पाण्डेय	(200? वि.)
4. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य	डा. गोविंदनाथ राजगुरु	राजकमल प्रकाशन: (1960 ई.)
5. तसव्वुफ और सूफीमत	पं. रामपूजन तिवारी	-
6. दर्शन-दिग्दर्शन	राहुल सांकृत्यायन	(1947 ई.)
7. देशी नाम माला	हेमचन्द्र	-
8. पदमावत	जायसी	संपादक: डा. वासुदेव शरण अग्रवाल
9. परिचयी साहित्य	त्रिलोकी नारायण दीक्षित	लखनऊ (1957 ई.)
10. पारसभाग	'सीकर' युगलानंद-शरण (अयोध्यावासी)	मुंशी नवल किशोर प्रेस
11. पुरातन प्रबन्ध संग्रह	-	संपादक: मुनि जिनविजय: सिंघी जैन सिरीज़
12. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	रिचर्ड पिशल	अनुवादक: डा. हेमचन्द्र जोशी पटना (1958 ई.)

कृति	रचयिता	विवरण
13. मिरगावती	कुतबन	संपादक: डा० परमेश्वरी लाल(1967 ई०)
14. हिन्दी के आदि ग्रंथ	कृष्णाचार्य	कलकत्ता (1965 ई०)
15. हिन्दी शब्दानुशासन	किशोरीदास वाजपेयी	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

(घ) अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. अरेबिक थाट्स एंड इट्स प्लेस इन हिस्ट्री	ओ लिबरी	
2. आइन-ए-अकबरी	अबुल फज़ल अल्लामी	संपादक: जदुनाथ सरकार (1948 ई०)
3. आदि ग्रंथ	अर्नेस्ट ट्रम्प	अंग्रेजी अनुवाद(1877 ई०)
4. ओरिजिन एंड डेवलमेंट आफ बंगाली लैंग्वेज	डा० चैटर्जी	कलकत्ता(1926 ई०)
5. आलकेमी आफ हेप्पीनेस	सी० फील्ड	
6. इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम		
7. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स		
8. ए कंपैरेटिव एंड इटिमोलाजिकल डिक्शनरी आफ नेपाली	डा० टर्नर	
9. ए निश फार लाइट्स	अनुवादक गैर्डनर	लाहौर(1934 ई०)
10. एक लिटरेरी हिस्ट्री आफ अरब्स	निकल्सन	(1923 ई०)

कृति	रचयिता	विवरण
11, ए वोकेबुलरी इन पंजाबी आफ डिफिकल्ट वर्ड्स अकरिंग इन सिक्ख ग्रंथ	बिशनदास उदासी	अमृतसर(1893 ई0)
12, ऐन इन्ट्रोडक्शन टू पंजाबी लिटरेचर	डा0 मोहन सिंह दीवाना	
13, कंपेरेटिव डिक्शनरी आफ इंडो आर्यन लैंग्वेजेज	डा0 टर्नर	लंदन, 1962
14, काउंसेल फार किंग्स	एफ0आर0सी0 बागले	अल-गज़ाली कृत 'नहीहात-अल-मुलूक' का अंग्रेज़ी अनुवाद(1964 ई0)
15, क्लासिकल इस्लाम	जी0ई0वी0 ग्रुनेबाम	जर्मन से अनूदित अनुवादिका: केथेराइन वाटसन: लंदन:(1970ई0)
16, डिक्शनरी आफ इस्लाम	हूज़	
17, तहाफुत-अल-फलसफा	अल-गज़ाली	अंग्रेजी अनुवाद एस0ए0कमाली
18, दारा शिकुह: लाइफ:वर्क्स	डा0 हसरत	(1953)
19, दी एथिकल फिलासाफी आफ अल-गज़ाली	उमरूद्दीन	(अलीगढ़ 1949 ई0)
20, दी लीगेसी आफ ज्यूज़	आई0 अब्राहम	(1927 ई0)
21, दी रिकन्स्ट्रक्शन आफ रिलीजिअस थाट्स इन इस्लाम	डा0 इकबाल	

कृति	रचयिता	विवरण
22- दी रिलीजन आफ इस्लाम	मौलाना मुहम्मद अली	
23. राबिया दी मिस्टिक एंड हर फेलो सैंट्स इन इस्लाम।	मार्गरेट स्मिथ	
24. लिंग्विस्टिक पेक्युलिरिटीज़ आफ ज्ञानेश्वरी	पाण्डे, एम०जी०	पूना: (1953 ई०)
25. लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया	ई०जी० ब्राउन	
26. सिलेबिक स्ट्रक्चर आफ हिन्दी एण्ड पंजाबी	डा० देवीदत्त शर्मा	पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन
27. सूफीज़्म	ए०जे०आरबेरी	
28. सूफी आर्डर्स इन इस्लाम	जे०एस०ट्रिमिंघम	
29. हिस्ट्री आफ इंडीजीनस सिस्टम आफ एजुकेशन इन दी पंजाब: सिन्स एनेक्सेशन एंड इन 1882	डा० लाइटनर	कलकत्ता (1882)
30. हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर	डा० मोहन सिंह दीवाना	

(ङ) अरबी। फारसी पुस्तकें

1. अल-कुरान	अल-बकीलानी	अंग्रेजी अनुवाद: ई०वी०जी० गुसटेव: (1950 ई०)

कृति	रचयिता	विवरण
2. अल-मुस्तास अल-मुस्तकिम	अल-गज़ाली	
3. अल-मुस्तफा-मिन इल्म-अल-उसूल	अल-गज़ाली	
4. किताब-अल-वजीज	अल-गज़ाली	
5. तिब्र-मसबूक	अल-गज़ाली	
6. नसीहात-अल-मुलूक	अल-गज़ाली	
7. मकासिद-अल फलसफा	अल-गज़ाली	
8. मिश्कात-अल अनवार	अल-गज़ाली	
9. मीजान-अल अमल	अल-गज़ाली	
10. मीयार-अल-इल्म	अल-गज़ाली	
11. मुनकिद-मिन अल-जलाल	अल-गज़ाली	
12. रिसाला-अल कुदसिया	अल-गज़ाली	

फारसी : हस्तलिखित

कृति	रचयिता	विवरण
1. कीमिया-ए-सआदत-	अल-गज़ाली	लाइब्रेरी, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (दो प्रतियां)
2. सिर्र-उल-असरार	दारा शिकुह	52 उपनिषदों का फारसी अनुवाद

(ब) पत्रिकाएं : अंग्रेज़ी

1. इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली
2. जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी
3. बुलेटिन आफ दी स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज़: लंदन
4. मैगज़ीन आफ अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी
5. मेडिवल इंडिया क्वार्टरली: अलीगढ़
6. हिस्टोरिकल जर्नल आफ दी पंजाब युनावर्सिटी

पत्रिकाएं: पंजाबी

1. पंज दरिया
2. पंजाबी साहित्य: लाहौर

254102